ज्वर तिमिर भास्कर: of कायस्थ चण्ड - Edited with commentary शब्दार्थ बोधिनी in Hindi by श्री नानकचन्द्र वैद्य - first page of inner title and photograph of the commentator and the last page of Errata having pinholes damaging one or two letters and neatly repaired. Lahore, 1993 Vikram era.

~~30~~

Bill No. 3/07-08

140

2008-0305

1327

ज्योतिर्भास्करः

७८

कायस्थ चण्ड

1327

कायस्थ चण्डकृतो

ज्वरतिमिरभास्करः

पूज्यपाद न्यायरत्न पण्डितवर्य श्रीपहाड़चन्द्र वैद्यमार्त्तण्डात्मज
श्रीपण्डितराज धनीराम शास्त्रिसुनुना, आयुर्वेदाचार्य,
कविराज, आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेदधुरीण भू. पू.
भारद्वाजआयुर्वेदमहाविद्यालयस्यप्रधाना
ध्यापकेन, प्राप्तस्वर्ण रजत पदकेन
श्रीनानकचन्द्र वैद्य शास्त्रिणा
शब्दार्थ बोधिनी भाषा
टीकया समलङ्कृतः

सा च

लवपुरीयपञ्जाबसंस्कृतपुस्तकालयाध्यक्षवर्यैः

मोतीलाल बनारसीदास

इत्येतैः स्वीये "मुम्बई संस्कृत" इत्याख्ये मुद्रणालये
सम्मुद्रय प्रकाशिता

संवत् १९९३

प्रथमावृत्ति ५००

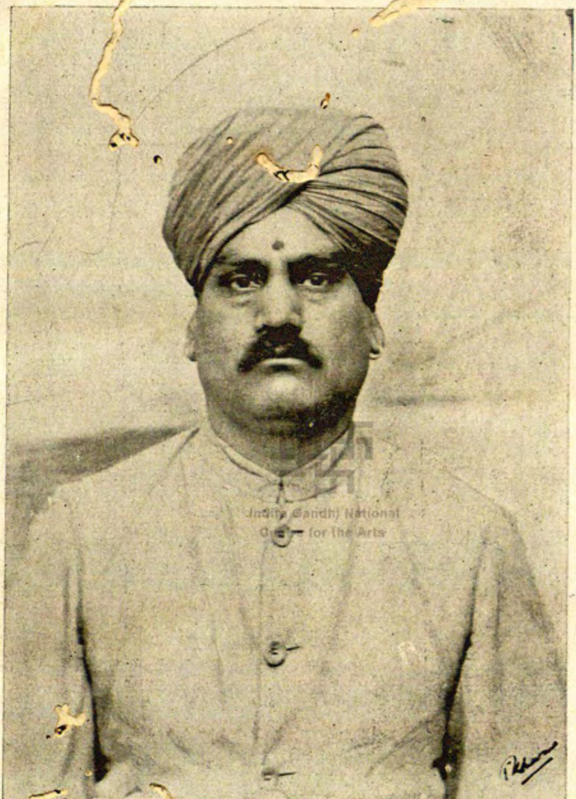
मूल्यं ।।)

1327

प्रकाशक—
सुन्दरलाल जैन
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय
सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर

1936

मुद्रक—
शान्तिलाल जैन
मैनेजर 'बम्बई संस्कृत प्रेस'
सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर



आयुर्वेदाचार्य पं० नानकचन्द्र
क० रा०, आ० वे० र०, आ० वे० धु०, वैद्य शास्त्री

भूमिका

अयि प्राणाचार्य्य प्रवराः !

विदितमेवैतत्सर्वेषां यच्चतुर्विध पुरुषार्थैकसाधनं शरीरं तद्धि नानामय संकुलैश्च निधनमुपयाति यद्यपि रोगा-सर्व एव शरीरेन्द्रियमनस्तापकराः अपि च प्राणहराः तथापि न ते तथा यथा च ज्वरः प्राधान्यं च तस्य कायिक रोगेषु प्रथमोत्पन्नत्वाद्-अतिशयसंतापकरत्वाद् सकलव्यापकत्वाद् बलवत्वाच्च-यदुक्तं चरके—

देहेन्द्रिय मनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली

ज्वरः प्रधानो रोगाणां मुक्तो भगवता पुरा ।

एतदेवज्वर विज्ञानस्य महतीमुपयोगितां निरीक्ष्य पूर्वविद्वद्वररचिततन्त्रसारं संगृह्य चतुर्शतवर्षपूर्वं कायस्थोपाह्वे भिषग् वरै श्चण्डाभिधै ज्वर मूलकोऽयं ज्वरतिमिरभास्करो नामा ग्रन्थो निबद्धः ।

यद्यपि सुरभारती वैद्य विद्यासु आयुर्वेद गौरवकराणि सुबहूनि नानाभिधानानि तन्त्राणि लभ्यन्ते । तथापि विस्तीर्णतया तत्र न सर्वेषां बुद्धिप्रवेशाभाव एव भवति । अयं च अल्पबुद्धिनामल्पेनापि श्रमेण ज्वर विज्ञान संपादन विधा वद्द्वितीयो वरिवर्ति

अपि च सकलज्वररोगाणां–निदानानि–लक्षणानि–चिकित्सा–क्वाथ–चूर्ण–गुटिका–अवलेह–रस–तैल–घृतादिकानि च स्पष्टतया यथार्थ संगृहीतानि यानमंत्रोषधिभिश्चानुभूताः ज्वरमोचनोपायाः दर्शिताः ।

ज्वरविज्ञान जिज्ञासुना मतीवोपयुक्तोऽयं ग्रन्थः । प्रमादतः यत्र क्वचन स्खलनं स्याच्चेत्तर्हि कृपया संशोध्य सूचनीयं यतः द्वितीयावृत्तौ संशोधयिष्यते ।

नानकचन्द्र वैद्यशर्मा, लाहौर ।

अथ विषयानुक्रमणिका

श्रीः ।

ॐ नमो ब्रह्मदक्षाश्विबलभिद्धन्वन्तरिप्रभृतिभ्यः ॥

स्फुरत्त्रिपुर सुन्दरी चरणयुग्ममाराधयन् ।
प्रणम्य च सतां[1] पदं प्रथमं वैद्यमम्भोधिजम् ।
विलोक्य विविधागमान् करणवीर कुम्भात्मजः
चिकित्सितमतिं निजां प्रथयतीह स चण्डाभिधः ॥१॥

प्रकाशमान श्री आद्या त्रिपुरसुन्दरी के दोनों चरणों का आराधन करता हुआ तथा सत्पुरुषों के चरणों में प्रणाम करके सर्व प्रथम समुद्र से उत्पन्न श्री धन्वन्तरिजी को प्रणाम करके, करणवीर कुम्भ का पुत्र चण्ड नामवाला नाना आयुर्वेद के शास्त्रों को दृष्टि गोचर कर यहां अपनी चिकित्सा युक्त बुद्धि को प्रसिद्ध करता हूँ अर्थात् प्रकट करता हूं ॥ १ ॥

कारणमण्डलविततं लक्ष्माथ भेषज द्योतम् ।
ज्वरतिमिरभास्कराह्वं ग्रन्थं तनुते स रोगिणां त्रातुम्[2] ॥२॥

"कारण"-निदान अर्थात् मिथ्याहार विहारादि, उनके समूह से युक्त और जो "लक्ष्म"-लक्षण, तथा औषध आदि का प्रकाशक "ज्वरतिमिर भास्कर नामवाला ग्रन्थ रोगियों की रक्षा के लिये चण्डाख्य ने रचा ॥२॥

सन्ति यद्यपि तन्त्राणि सुविस्तीर्णान्यनेकशः ।
तथापि बालबोधाय सारमुदधृत्य लिख्यते ॥ ३ ॥

यद्यपि बड़े विस्तारयुक्त अनेक आयुर्वेद के ग्रन्थ विद्यमान हैं तथापि बालक अर्थात् अल्पमतिवाले वैद्यों के लिये विस्तृत ग्रंथों से सार निकाल कर लिखते हैं ॥ ३ ॥

---

१ रुजांरिपुमितिवापाठः ख पुस्तके। २ यद्यपि ग्रन्थान्तरेषुयत्र कुत्रापि मूलपाठे रोगिणामितिषष्ठयेवोपलभ्यते तथापि तुमुन्प्रत्ययस्य कर्मण्युपयोगाद्-'रोगिणस्त्रातुम्' इति पाठः साधीयान् ।

अथ चिकित्साक्रममाह—

ज्वरःप्रधानो रोगाणां दुश्चिकित्स्यतमोमतः ।
तस्मात्तद्रूपनामादि चिकित्साक्रम उच्यते ॥ ४ ॥

ज्वर सर्व रोगों में प्रधान होता है और अत्यन्त कठिनता से चिकित्सा इसकी होती है । इसलिए उसके रूप अर्थात् लक्षण और नाम (आदि पद से उपद्रव तथा अरिष्ट) और चिकित्सा क्रम को कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ ज्वरोत्पत्तिमाह—

दक्षापमान संक्रुद्ध रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ।
आसीद्दक्षाध्वरध्वंसी वीरभद्राभिधोगणः ॥ ५ ॥

दक्ष प्रजापति के अपमान से क्रुद्ध रुद्र के ऊर्ध्व नेत्र से उत्पन्न दक्ष के यज्ञ को नष्ट करने वाला वीरभद्रादियों का गण हुआ ॥ ५ ॥

ज्वरस्वरूपं यथा—

त्रिमौली पिंगनयनो ज्वाला सदृश मूर्धजः ।
त्रिपाद् भस्मप्रहरणः षड्भुजो नवलोचनः ॥ ६ ॥
व्याघ्रचर्मपरीधानो ह्रस्वजंघो महोदरः ।
हविर्जीर्णीकृतं येन तेनज्वर इति स्मृतः ॥ ७ ॥

तीन शिरोंवाला, पीतनेत्र, अग्नि के समान मस्तकवाला तीन पैर और भस्म से लिप्त देह, छः भुजा तथा नौ नेत्र युक्त व्याघ्र चर्म धारण किए हुए, छोटी जंघा, बड़े उदर वाला तथा यज्ञ के हवि को (चरु) जीर्ण करने से ज्वर कहा गया है ॥ ७ ॥

ज्वरनामानि यथा—

ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजो[1] यमोपमः ।
क्रोधाद्दक्षाध्वरध्वंसी सर्वभूत प्रतापनः ॥ ८ ॥
सनानानामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्तते ।

ज्वर (सन्ताप करने वाला) रोगों का स्वामि पाप से उत्पन्न मृत्युओं का राजा यम के समान क्रोध से दक्ष के यज्ञ का नाशक सब भूतों का तपाने वाला, वह ज्वर नाना नामों से नाना योनियों

---

१ रोगोंशनोन्तक इतिवा पाठः ।

में अर्थात् पशुपक्षि आदि में होता है ॥ ८ ॥

ज्वरस्य नानायोनि गामित्वमाह—

ज्वरं विद्यान्मनुष्येषु कुञ्जरेषु च पाकलम्[1] ॥ ९ ॥
महिषेषु च हारिद्रं कुरङ्गेष्वलसं तथा ।
तुरङ्गमेषु तापाख्यं जानीयाद् गोषुचेश्वरम् ॥ १० ॥
खरेषु खोरकं सर्वं मत्स्येष्विन्द्रमदं तथा ।
पक्षपातं विहङ्गेषु प्रलापकं[2] मजाविषु ॥ ११ ॥
मेषेषु भूतवेगं वा श्रमं पञ्चाननेषु वा ।
शिखाभेदं मयूरेषु मृगेष्वेवं मृगामयम् ॥ १२ ॥
अलर्कं सारमेयेषु हिक्का श्वासं शुकेषु च ।
निर्मोकपदं सर्पेषु तूष्णीषं चापि निर्दिशेत् ॥ १३ ॥
पिकेषु नेत्ररोगं तु तद्वृक्षे च कोटरम् ।
पद्मोत्पलेषु ऋषभं तद्वदन्नेषु चूर्णकम् ॥ १४ ॥
गोधूमे कुंकुमाख्यं च नीलिका सलिलेषु च ।
सर्वौषधीषु ज्योतिष्कं लतासुग्रन्थिकं तथा ॥ १५ ॥
ऊषरं क्षेत्रभूमिषु पर्वतेषु शिलाजतुः ।
पर्वसंज्ञं प्रसूनेषु शाके विद्यान्मधूपकम् ॥ १६ ॥

मनुष्यों में ज्वर, हाथियों में पाकल जानो । महिषों में हरिद्र और कुरङ्गों में अलस । तुरङ्गों (घोड़ों) में ताप संज्ञक, गौओं में ईश्वर जानो । गधों में खोरक, तथा मछलियों में इन्द्रमद जानो । विहंगों (पक्षियों) में पक्षपात, तथा भेड़ों में प्रलापक, और मेंढ़ों में भूतवेग, तथा पञ्चाननों (शेरों) में श्रमसंज्ञक जानना । मयूरों में शिखाभेद, तथा हरिणों में मृगामय जानो । सारमेयों (कुत्तों) में अलर्क तथा शुकों (तोता) में हिक्काश्वास जानना । सर्पों में केञ्चली त्याग, तथा उष्णीष जानो । पिकों में नेत्ररोग तथा वृक्षों में कोटर (खोल) कमलों में ऋषभ, वैसेही अन्नों में चूर्ण संज्ञक जानना । गोधूम में (कनक) कुंकुमाख्य, और जलों में नीलिका, तथा सर्व औषधियों में ज्योतिष्क, तथा लताओं में ग्रन्थिक जानना । क्षेत्रभूमि में उषर,

---

१ पालक मितिवा २ प्रलेपक इति वा ।

और पर्वतों में शिलाजीत, तथा पुष्पों में पर्वसंज्ञक, और शाकों में मधूपक जानना । ६—१६ ॥

ज्वर प्रकृतिमाह—

तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषैः शारीरमानसैः ।
शरीरं नहि निर्दोषं ज्वरः समुपसेवते ॥ १७ ॥

उस ज्वर की प्रकृति शारीरिक तथा मानसिक दोषों से कही हैं । दोष रहित शरीर को ज्वर नहीं व्याप्त होता अर्थात् जिस देह में किसी प्रकार का दोष नहीं होता उसमें ज्वर कभी नहीं व्याप्त होता ॥ १७ ॥

प्रभावमाह—

जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनः ।
सन्तापं सारुचिं तृष्णामङ्गमर्दं मुरो व्यथाम् ॥ १८ ॥
स करोति स्वसामर्थ्यात् रोगराट् तेन कथ्यते ।
ऋते देवमनुष्येभ्यो नान्योविसहते ज्वरम् ॥ १६ ॥

जन्मकाल में तथा मृत्यु के समय प्रायः शरीरियों में प्रवेश करता है । सन्ताप (देह का गरम होना) अरुचि, तृष्णा, अङ्गों का टूटना छाती में दर्द इन लक्षणों को ज्वर अपनी शक्ति से करता है इसलिये रोगों का राजा कहाता है । यह ज्वर का प्रभाव जानना चाहिये । विना देवता तथा मनुष्यों के इसे कोई नहीं सहन कर सकता ॥ १८—१६ ॥

ज्वरस्य संख्यासम्प्राप्ति—

सभवेदष्टधा दोषैः पृथङ्‌ मिश्रैः समाहितैः ।
आगन्तुश्च मलास्तत्र स्वैः स्वैर्दुष्टाः प्रदूषणैः ॥ २० ॥

वह ज्वर आठ प्रकार का भिन्न २ अर्थात् वात पित्त कफ दोषों से मिश्रैः अर्थात् वातपित्त, पित्तकफ, तथा वातकफ, और समहितैः अर्थात् तीनों दोषों के मिलने से और आगन्तुज अर्थात् चोट आदि लगने से, अपने २ कारणों से दुष्ट होकर मल अर्थात् दोषों करके ज्वर होता है ॥ २० ॥

सम्प्राप्तिमाह—

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।

बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदास्यु रसानुगाः ॥ २१ ॥
नाभिस्तनान्तरे जन्तोरामाशय इति स्मृतः ।

मिथ्याआहार मिथ्याविहार करने से आमाशय में रहनेवाले दोष कोष्ठाग्नि को बाहिर निकाल कर रसके अनुगत, अर्थात् आवश्यक अन्नरस को दूषित करके ज्वर को कर देते हैं। यहां आहार का मिथ्यात्व प्रकृति आदियों के आहारोपयोगी हेतु के विरुद्ध होने से स्वीकार किया गया है जैसे चरक में कहा है "प्रकृति, करण, संयोग, राशि, देश, काल, उपयोग, संस्था, तथा उपयोक्ता आदि आठ हेतुओं से माना है। संक्षेप से वर्णन करते हैं, यहां "प्रकृति" १ द्रव्यों का स्वाभाविक गुरु लघु आदि का गुणयोग होना; जैसे माष गुरु, मुंगी लघु। "करणं" अर्थात् संस्कार, जैसे व्रीहि गुरु होते हैं। उनको यदि भूनकर लाजा बनाई जावें तो लघु हो जाती है। "संयोगः संहतिभावः" अर्थात् मिलाना। जैसे दूध और मछली आदि को मिलाकर सेवन करना। "राशि" अर्थात् द्रव अद्रव आहार के अवयव से अथवा परिमाण से जानना।

"देश" अर्थात् जिस स्थान पर द्रव्य की उत्पत्ति हुई हो। "काल" 'नित्यगश्चावस्थिकश्च' अर्थात् नित्य चलने वाला तथा स्थायी काल जानना "उपयोग संस्था" उपयोगनियमः अर्थात् अन्न के जीर्ण होने पर ही भोजन का नियम है। "उपयोक्ता" स्वयं निरूपितात्म प्रकृत्यादिकः पुरुषः, अर्थात् अपने आप निरूपण किया आत्मप्रकृतिक पुरुष जानना; इन सब प्रकृत्यादि के जो विरुद्ध आहार हो उसे मिथ्या आहार कहते हैं। "विहार का मिथ्या होना जैसे अपने से बलवान् के साथ युद्ध करना अथवा इसी प्रकार के अन्य कार्य करना।

'आमाशयाश्रया" इससे बिना आमाशय में प्राप्त दोषों के ज्वर नहीं होता। 'आमाशय' का स्थान चरक ने ऐसा वर्णन किया है यथा "नाभि औरस्तनों के अन्दर मनुष्यों का आमाशय होता है। यह सम्प्राप्ति केवल शारीरिक रोगों की ही है आगन्तुजों की नहीं है; क्योंकि उसमें सर्व प्रथम व्यथा होती है, पीछे दोषों का सम्बन्ध होता है इसलिये सुश्रुत ने आगन्तुजज्वरों की सम्प्राप्ति भिन्न ही कही है यथा—"श्रमक्षताभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽ-

निलः। पूरयित्वाऽखिलं देहं ज्वरमापादयेद्भृशम्" इति। अर्थात् थकावट से क्षत होने से तथा चोट आदि के लगने से कुपित हुआ वायु देहियों के सारे देह को व्याप्त कर ज्वर का कर देता है ॥२१॥

सह तेनाभि सर्पन्त स्तपन्तः सकलं वपु।
कुर्वतोगात्रमत्युष्णं ज्वरं निवर्तयन्तिते ॥
स्रोतोविबंधात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते ॥ २२ ॥

अर्थात् पाचकाग्नि के साथ मिलकर सारे शरीर में फिरते हुए दोष सम्पूर्ण देह को गर्म करके ज्वरको उत्पन्न कर देते हैं इसी हेतु से स्रोतों के मार्ग रुक जाने से प्रायः स्वेद की प्रवृति नहीं होती ॥२२॥

अन्यच्च—

दुष्टाः स्वहेतुभिर्दोषाः प्राप्यामाशय मूष्मणा।
सहिताश्च समागत्य रसस्वेदप्रवाहिणाम् ॥ २३ ॥
स्रोतसां मार्गमावृत्य मन्दीकृत्य हुताशनम्।
निरस्य वहिरूष्माणं पक्तिस्थानाच्च केवलम् ॥ २४ ॥
शरीरं समभिव्याप्य स्वकालेषु ज्वरागमम्।
जनयन्त्यथ वृद्धिश्च स्ववर्णश्चत्वगादिषु ॥ २५ ॥

अपने कारणों से दुष्ट हुए दोष आमाशय में प्राप्त होकर ऊष्मा के साथ आकर रस तथा स्वेद वहन करने वाले स्रोतों के मार्गों को रोककर अग्नि को मन्द कर ऊष्मा को पंक्ति स्थान से बाहिर निकाल कर सारे देह में व्याप्त होकर अपने समय में अर्थात् जिस दोष का वह समय है (वात का सायंकाल, पित का मध्याह्न, कफ का प्रातःकाल इसी प्रकार रात्रि में आदि मध्य तथा अन्त के क्रम से कफ पित्त वात का समय है) उस काल में ज्वर की वृद्धि होती है तथा त्वचा नेत्र इनमें अपने वर्ण को पैदा करते हैं ॥२३—२५॥

'निदाने कारणान्यष्टौ यान्युक्तानि महर्षिभिः।
स्वे स्वे स्थाने प्रयुक्तानि यास्यन्ति विकृतिमिह ॥ २६ ॥

निदान में जो आठ कारण रोगोत्पति के महर्षियों ने वर्णन किये हैं वह अपने २ स्थान में प्रयोग किये हुए यहां विकृति को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

ज्वरनिदानमाह—

मिथ्याभियुक्तैरपि च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम् ॥ २७ ॥
विविधादभिघाताच्च रोगोत्थानात्प्रपाकतः ।
अपक्रमणेन्द्रियाणां स्यात् स्वव्यापारसमर्थतः ॥ २८ ॥
श्रमात्क्षयादजीर्णाच्च विषात्सात्म्यर्त्तुपर्य्ययात् ॥ २९ ॥
औषधि पुष्पगन्धाच्च शोकान्नक्षत्र पीडया ।
अभिचाराभिशापाभ्यां मनोभूताभिशंकया ॥ ३० ॥
स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ।
स्तन्यावतरणे चैव ज्वरोदोषैः प्रवर्तते ॥ ३१ ॥

स्नेहादि कर्मों के मिथ्या योग से अर्थात् स्नेह स्वेद वमन विरेचन आदि कर्मों के बिना विधि के प्रयोग करने से अथवा इन के अति योग से ज्वर मनुष्यों को हो जाता है और अनेक प्रकार के अभिघात से (शस्त्र लोष्ठादि के लगने से) रोगों के विपरीत चिकित्सा करने से। अपने व्यापार की समर्थ से इन्द्रियां उलटी हो जाती हैं। श्रम से क्षय से (धातु क्षीण से) अजीर्ण से, विष आदि सेवन से ऋतु की विपरीतता से, विषैली औषधि तथा पुष्प आदिओं के गन्ध से, शोक से, नक्षत्रों की पीड़ा से (जन्म नक्षत्रों के क्रूर स्थान पर होने से अथवा दृष्टि पात से) अभिचार से अर्थात् विरुद्ध मन्त्रादि के प्रयोग से, अभिशाप से अर्थात् द्विज गुरु सिद्धादिओं के शाप से, उन से मन में भूतादिओं की शंका से, अर्थात् मानसिक दोष काम क्रोध लोभ मोह आदि से तथा भूतादि के आवेश से, स्त्रियों के विरुद्ध प्रसव होने से तथा प्रसूत स्त्रियों के अहित सेवन करने से, स्तन्य अर्थात् दुग्ध के निकलने से उक्त दोषों कर के मनुष्यों को ज्वर उत्पन्न होता है ॥ २७—३१ ॥

तैर्वेगवाद्भिर्बहुधा समुद्भ्रांतैर्विमार्गगैः ।
विक्षिप्यमानोऽन्तराग्निर्भवत्याशु वहिश्चरः ॥ ३२ ॥
रुणद्धिश्चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।
भवत्यत्युष्ण गात्रश्च नचस्विद्यति सर्वशः ॥ ३३ ॥

---

१ कोपादिति पाठः ।

तैरिति—उन वेग वाले फैलने का स्वभाव है जिनका तथा इधर उधर विक्षिप्त होते हुए तिर्यग्गत दोषों करके फैली हुई भीतर की अग्नि रोम कूपों से बाहिर हो जाती है। "अपरंधातु" अर्थात् स्वेद को रोककर ज्वरातुर पुरुष के सर्व गात्रों को उष्ण कर देते हैं इसलिये उसे ज्वरी कहते हैं और उसे पसीना नहीं आता॥

ज्वरस्य पूर्वरूपमाह—

श्रमोऽरतिविवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषौमुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ३४ ॥
जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।
अप्रहर्षश्च शीतश्च भवत्युत्पत्स्यतिज्वरे ॥ ३५ ॥

ज्वर से पूर्व होनेवाले लक्षणों को पूर्वरूप कहते हैं। विना व्यायाम कर्म के थकावट हो, मन का न लगना, मुख नेत्र आदि का वर्ण बदलना, मुख का स्वाद बदलना, नेत्रों से जल का गिरना, शीत वात तथा आतप (धूप) इनकी पुनः इच्छा होना, पुनः द्वेष होना, जृम्भा (उवासी) का होना; अंगों का टूटना और भारी होना, रोमहर्ष होना, अरुचि, अन्धकार प्रवेश होना अप्रसन्नता, शीत का लगना, यह लक्षण होने वाले ज्वर में होते हैं ॥३४-३५॥

तस्यैवान्तर्भेदाश्च मुक्तिकालोऽथ तस्य हि।
लक्षणं ज्वरमुक्तस्य क्रमशोऽत्र निगद्यते ॥ ३६ ॥

उस ज्वर के अन्य भेद तथा मुक्तिकाल और ज्वर मुक्त के लक्षण क्रम से यहां कहते हैं ॥ ३६ ॥

ज्वरभेदानाह—

शारीरोमानसः सौम्यस्तीक्ष्णः प्राकृतवैकृतौ।
वाह्यान्तर्वेगकौ तद्वद्दोषधातुविपाकिनौ ॥ ३७ ॥
साध्यासाध्यौ तथा सामः पच्यमानो निरामकः।

ज्वर के भेदों को कहते हैं—शारीरिक, मानसिक, सौम्य, उष्ण प्राकृत, वैकृत, वाह्यवेग तथा अन्तर्वेग वैसे ही दोषपाकी, धातुपाकी तथा साध्य, असाध्य, और आमयुक्त, पच्यमान तथा आम रहित ये सब ज्वर के भेद हैं ॥ ३७ ॥

शारीरे वपुस्तापो मानसे तप्यते मनः ॥ ३८ ॥
मृदुर्ल्युपद्रवः सौम्यस्तीक्ष्णः स्याद्विपर्ययात् ।
वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ॥ ३९ ॥
वैकृतोऽन्यः सदुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ।
बहिर्वेगस्य चिह्नानि सन्तापो ह्यधिको बहिः ॥ ४० ॥
मार्दवं च तृडादीनां सुखसाध्यत्वमेव च ।

शारीरिक ज्वर में देह में ताप होता है और मानसिक में मन में दुःख होता है । जिस ज्वर में अल्प उपद्रव हों वह " सौम्य कहाता है। इस से विपरीत अर्थात् अधिक लक्षणों (उपद्रवों) वाला ज्वर तीक्ष्ण होता है ।

वर्षा ऋतु में वात का शरद् में पित का वसन्त में कफज्वर क्रम से प्राकृत होते हैं इस से विपरीत अर्थात् वर्षा में पित्त या कफ का, शरद् में वायु या कफ का, वसन्त में पित्त या वात का ज्वर वैकृत कहाता है और दुःख से सिद्ध होने वाला होता है तथा वात का प्राकृत भी दुःसाध्य जानना चाहिये ।

देह के ऊपर जिस ज्वर में अत्यधिक ताप है तृष्णा, भ्रम श्वास प्रलापादि जिस में अल्प हों वह बहिर्वेगज्वर सुखसाध्य होता है । ॥ ३८-४० ॥

अन्तर्वेगोऽतिदाहोऽन्तः प्रलापश्वासतृड्भ्रमाः ॥ ४१ ॥
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चो विनिग्रहः ।
हृदि नाभौ च गात्रेषु व्यथयेद्वस्ति पीडनात् ॥ ४२ ॥

अन्तर्वेग ज्वर में भीतर दाह अधिक होता है प्रलाप, श्वास, तृष्णा, और भ्रम इन उपद्रवों का होना, सन्धियों तथा अस्थियों में शूल का होना, पसीना न आना, दोष तथा मल रुक जाये, हृदय, नाभि और गात्रों में पीडा का होना तथा वस्ति (मूत्राशय) में पीड़ा हो यह अन्तर्वेग ज्वर के लक्षण हैं ॥ ४१-४२ ॥

दोषपाके तृडादीनां प्रशमो मृदुताज्वरे ।
हृन्नाभ्योर्वेदनाऽभावो ज्वरातिसार एव च ॥ ४३ ॥
इन्द्रियाणां तथाग्निश्च मृदुता सुखसाध्यता ।

दोष पाकी ज्वर में तृष्णादियों की शान्ति हो जाती है ज्वर भी

हलका होता है, हृदय नाभि में भी पीडा का अभाव ही होता है और ज्वरातिसार होता है इन्द्रिय तथा अग्नि मृदु होती है और यह ज्वर सुखसाध्य होता है ॥ ४३ ॥

धातुपाकज्वरे श्वासो हृन्नाभ्योर्वेदनाऽरतिः ॥ ४४ ॥
तीव्रज्वरोऽतिसारः स्यात्तृड्भ्रमारोचकावपि ।

धातुपाकी ज्वर में श्वास हृदय तथा नाभि में पीडा, मन का न लगना, ज्वर तथा अतिसार तीव्र हो, प्यास, भ्रम तथा अरुचि हो।

सामज्वरे तु ग्लानिःस्याज्ज्वरोपद्रवतीच्णता ॥ ४५ ॥
हृल्लासो बहुमूत्रत्वं न प्रवृत्तिर्विशोऽरुचिः ।

आमयुक्त ज्वर में ग्लानि होती है ज्वर के उपद्रव अधिकता से होते हैं, उबकाई आती हैं, मूत्र अधिक आते हैं, मल नहीं आता और अरुचि होती है ॥ ४५ ॥

पच्यमाने ज्वरे चिह्नं ज्वरवेगोऽधिकस्तृषा ।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः प्रलापः श्वसनं भ्रमः ॥ ४६ ॥

ज्वर का वेग अधिक हो, तृष्णा हो, मल निकलने लगे, उत्क्लेश हो अर्थात् ऊपर को आया हुआ अन्न बाहिर न निकले तथा थूक अधिक आवें और हृदय में पीड़ा हो उसे उत्क्लेश कहते हैं।

प्रलाप, श्वास, भ्रम आदि लक्षण हों उसे पच्यमान कहते हैं ४६॥

निरामे तु ज्वरे गात्रे लघुता ज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहोत्क्षुत्क्षामत्वं च जायते ॥ ४७ ॥

जिस ज्वर में गात्र हलके हो जायें ज्वर हलका हो, दोषों की प्रवृत्ति हो, आठ दिन में दोष अर्थात् मल पाचन हो जाये, भूख लगे, तथा क्षीणता हो जाये उसे निराम ज्वर कहते हैं ॥ ४७ ॥

साध्योऽनुपद्रवोदोषपाकी स्यादल्पलिङ्गकैः ।
असाध्यो धातुपाकी चेद्भूर्य्युपद्रव संयुतः ॥ ४८ ॥

---

१ यदुक्तं ग्रन्थान्तरे—"निद्रानाशो हृदिस्तम्भो विष्टम्भो गौरवारुची । अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ।" अन्यथा च मलपाकः—दोषप्रकृति वैचित्र्यं लघुता ज्वरदेहयोः । इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् । इति ।

२ यदाह हरिश्चन्द्रः—"सप्ताहे नैव पच्यन्ते सप्तधातुगतामलाः ।
निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ इति ।

उपद्रवों से रहित, अल्प लक्षणों वाला दोष पाकी साध्य होता है। अधिक उपद्रवों युक्त धातुपाकी असाध्य होता है ॥ ४८ ॥

ज्वरमुक्तिमाह—

ज्वरस्यमोक्षकालेतु श्वासो विड्भेद कूजनम् ।
स्वेदो विसंज्ञिता कम्पो वैगन्ध्यश्चाति तृड्भ्रमः ॥ ४६ ॥

ज्वर के मोक्ष में श्वास, मल का फटना कपोत के कूजनवत शब्दयुक्त, पसीना आना, संज्ञारहित, कम्प का होना, दुर्गन्धी तथा अतिप्यास और भ्रम होता है ॥ ४६ ॥

त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुजे ।
म्रियमाण श्वेचेत चान्यस्मिन्स्वेद दर्शनम् ॥ ५० ॥
नाशकाले दर्शयति दोषक्षीणोपि विक्रमम् ।
निर्वाणकाले दीपस्य प्रज्वलत्यधिकं शिखा ॥ ५१ ॥

त्रिदोषजनित ज्वर में तथा अन्तर्वेग ज्वर में और धातुगत ज्वर में म्रियमाण (मले हुए की तरह) देखता है और स्वेददर्शन होता है । दोषों के क्षीण होने पर वे अपना प्रभाव दिखाते हैं। जैसे—दीप के शान्त होने पर उसकी शिखा अधिक प्रज्वलित होती है ॥ ५०—५१ ॥

ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्—

ज्वरमुक्तेङ्गितं ज्ञेयं प्रस्वेदोमुखपाकतः ।
अन्नाकाङ्क्षा शिरः कण्डूः क्षवथुर्गात्र लाघवः ॥ ५२ ॥

ज्वर के छोड़ जाने पर स्वेद का आना, मुख का पकना, अन्न में इच्छा, शिर में कण्डू, छींक का आना, गात्रों का हलकापन जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ ज्वरारिष्टानि—

ज्वरो निहन्ति बलवान् गम्भीरो दैर्घ्यरात्रिकः ।
सप्रलापभ्रमश्वास क्षीणं शूनं हताऽनलम् ॥ ५३ ॥

बलवान् तथा गम्भीर ज्वर और चिरकाल का ज्वर अथवा मरण रूप रात्रि वाला ज्वर, प्रलाप भ्रम श्वास युक्त ज्वर, क्षीण व्यक्ति का शोथयुक्त ज्वर तथा अग्नि नाशक ज्वर मार देता है॥५३॥

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ।

शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ५४ ॥
यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि सङ्घात शूलवान् ।
वक्त्रेण चैवोच्छ्वासिति तं ज्वरो हन्तिमानवम् ॥ ५५ ॥
केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनिते भ्रवौ ।
लुनन्ति चाक्षि पक्ष्माणि सोऽचिराद्याति मृत्यवे ॥५६॥
हिक्का श्वास तृषा युक्तं मूढं विभ्रान्त लोचनं ।
सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ५७ ॥
प्रारम्भाद्विषमो यस्तु शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ।
हत प्रभं तीक्ष्णवेगो ज्वरो मारयते नरम् ॥ ५८ ॥

संज्ञारहित होकर जो मोह को प्राप्त हो जाय, जो सोता हुआ पुरुष उठने की सामर्थ न हो, शीत से पीड़ित हो, भीतर अधिक उष्णता हो वह ज्वर से मर जाता है ॥ ५४ ॥

जिस व्यक्ति को रोमाञ्च हों तथा लाल नेत्र हों और जो संघात रूप वस्तु अर्थात् अष्टीलिकादि से आक्रान्त की तरह हृदय में शूल माने मुख से जो श्वास ले, उस मनुष्य को ज्वर मार देता है ॥ ५५ ॥

जिस पुरुष के केशों में अकस्मात् सीमन्त अर्थात् कंघी फेरने से जैसे रेखा पड़ जाती हैं, और भ्रू जिसके ढीले पड़ जायें और टेढे हों और नेत्रों के बाल गिरने लगे वह पुरुष शीघ्र यम सदन को जाता है ॥ ५६ ॥

हिचकी, श्वास, तृष्णा से युक्त, मोहयुक्त, नेत्र जिसके भ्रान्त हों निरन्तर जिसका श्वास चले तथा जो क्षीण हो उस व्यक्ति को ज्वर मार देता है ॥ ५७ ॥

आरम्भ से ही जिस को विषम ज्वर हो जाय, शीघ्र ही जो ज्वर इन्द्रियनाशक हो अर्थात् एक दो दिन के ज्वर होने पर जिस पुरुष की आंख, कान, जिह्वा आदि नाश हो जाय, तथा कान्ति जिस की नाश हो जाये ज्वर तीक्ष्ण वेग हो, उस पुरुष को ज्वर मार देता है ॥ ५८ ॥

अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूलाङ्गभेदनम् ।
कासिनः श्वासिनश्चापि यस्य तं क्षीण मादिशेत् ॥५९॥
सहसाज्वर सन्ताप तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः ।

विश्लेषणं च सन्धीनां वेगार्त्तं च परित्यजेत् ॥ ६० ॥

अतिसार, ज्वर, हिक्का, छर्दि, शूल, अंगों का टूटना कास और श्वास आदि उपद्रव जिस पुरुष को हों उसे क्षीण जानो ॥५६॥

सहसा ज्वर का वेग हो जाये, तृष्णा, मूर्च्छा और बलनाश हो जाये, सन्धियें ढीली पड़ जायें, ऐसे वेग से पीड़ित रोगी को वैद्य छोड़ दे ॥ ६० ॥

नेत्रे नीलारुणे पीते कण्ठो वैघ्घुर्घुरायते ।
नजीवतिज्वरार्तोऽसौ यस्य लक्षणमीदृशम् ॥ ६१ ॥

जिस पुरुष को ज्वर आ जाने से नेत्र नीले, लाल, वा पीले वर्ण के हो जायें, निश्चय से जिस के कण्ठ में घुर् घुर् शब्द हो, जिस के ऐसे लक्षण हों वह ज्वर से पीड़ित नहीं जीता ॥ ६१ ॥

प्रेतैः सह पिबेन्मद्यं स्वप्ने यः कृष्यते शुना ।
सघोरं ज्वरमासाद्य नजीवमपसृज्यते ॥ ६२ ॥

स्वप्न में जो पुरुष प्रेतों के साथ मद्य को पीवे अथवा कुत्तों से स्वप्न में खींचा जाये, वह पुरुष घोर ज्वर से आक्रान्त हो कर जीवन को छोड़ता है ॥ ६२ ॥

बहुमूत्री बहुश्वासी क्षामोऽरोचक पीडितः ।
हतेन्द्रियो मनुष्यो यः स शीघ्रं विजहत्यसून् ॥ ६३ ॥

जिस पुरुष को ज्वर होने पर अधिक मूत्र तथा श्वास होने लगे क्षीण तथा अरुची से पीड़ित हो इन्द्रियें जिस की हत हों अर्थात् कर्महीन हो जायें वह पुरुष शीघ्र प्राणों को छोड़ता है ॥६३॥

ज्वरः पूर्वान्हिकोयस्य शुष्क कासश्च दारुणः ।
बलमांस विहीनश्च यथाप्रेतस्तथैव सः ॥ ६४ ॥

जिस पुरुष को प्रातः काल ज्वर हो जाये तथा सूखी खांसी भयंकर हो, और बलमांस जिसका क्षीण हो गया हो वह पुरुष प्रेत के समान जानना ॥ ६४ ॥

अपूर्णे दिवसे नारी ज्वरार्त्ता पुष्पमाप्नुयात् ।
सानजीवेत् महाप्राज्ञ ! तस्या हि मरणं भवेत् ॥ ६५ ॥

गोसर्गे वेदना यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।
लेपज्वरोपसृष्टश्च दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥ ६६ ॥

जिस स्त्री को बिना ऋतुकाल के ज्वरवेग से ऋतुदर्शन हो जाये वह नहीं जी सकती उसका अवश्य मरण हो जाता है।

गोसर्ग अर्थात् गौ छोड़ने के समय प्रातःकाल जिसे पीड़ा हो तथा स्वेद अधिक हो, और लिप्त देहयुक्त ज्वर हो उस पुरुष का जीवन दुर्लभ जानना ॥ ६५—६६ ॥

स्वेदोललाटे हिमवान्नरस्य, शीतार्दितस्याति सुपिच्छिलश्च ।
कण्ठस्थितो यस्य न याति वक्षो, नूनं यमस्यैति गृहं स मर्त्यः॥

जिस पुरुष के मस्तक पर हिम के समान शीत स्वेद हो, और वह शीत से तथा पिच्छिलता से पीडित हो; जिसका श्वास कण्ठ में स्थित होकर वक्षःस्थल तक न जाये, वह मनुष्य निश्चय से यम के गृह को चला जाता है ॥ ६७ ॥

स्रुतस्वेदोललाटाढ्यः श्लथसन्धानवन्धनः ।
मुह्येदुत्थाप्यमानस्तु सस्थूलोऽपि न जीवति ॥ ६८ ॥

जिस पुरुष का मस्तक स्वेदयुक्त हो और सन्धियों के वन्धन ढीले पड़ गये हों, तथा उठने पर जो मोह को प्राप्त हो जाय वह स्थूल भी नहीं जीता ॥ ६८ ॥

यस्य स्वेदोऽति बहुलः पिच्छिलो याति सर्वतः ।
रोगिणः शीतगात्रस्य तदा मरणमादिशेत् ॥ ६९ ॥

जिस पुरुष को अति गाढ़ा स्वेद आवे, तथा पिच्छिलता सारे देह में व्याप्त हो जाये, और गात्र ठण्डे हो जायें उस का मरण जानना ॥ ६९ ॥

दाहक्लमाङ्ग सदनं जड़ताति वेगो
मूर्च्छारुचिर्वदननिश्वसनं वमिश्च[1]।
हिक्काऽरतिर्न च निशा शयनं ज्वरे स्यात्
एते त्रयोदश ज्वराः किल मृत्यु द्वाराः ॥ ७० ॥

---

१ गण्डान्तिके मुखाद्यस्य इति वा पाठः । ज्वरो दहनरूपेण च तुनाडिकादिकादिनि । कफेनाक्रान्तहृदयो मन्यते प्रेतएव सः । तस्यपश्चाभवेच्छ्लेष्मा कासश्वासश्चदारुणः । बलमांसाविहीनस्य यथाप्रेतस्तथैवसः इत्यधिकम् ।

दाह, बिना श्रम के थकावट, अंगों में पीड़ा, जड़भाव, ज्वर का अतिवेग, मूर्च्छा, अरुचि, मुख से श्वास का निकलना, वमन का होना, हिचकी, मन का न लगना, रात्रि को नींद न आवे, इस प्रकार के लक्षण जिन तेरह प्रकार के ज्वरों में हो वह निश्चय से मृत्यु का द्वार जानना ॥ ७० ॥

सम्यक् चिकित्स्य मानस्य विकारो योऽभिवर्धते ।
प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद् गतायुषः ॥ ७१ ॥

भली प्रकार चिकित्सा करने पर जिसका रोग बढ़ता जाये तथा रोगी का बल मांस क्षीण हो वह गत आयु वाला जानना ७१

प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ।
मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पन्ति मानवम् ॥ ७२ ॥
तानि भैषज्य वीर्य्याणि प्रतिघ्नन्ति जिघांसया ।
तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवन्त्येव गतायुषः ॥७४॥

स्वप्न में प्रेत भूत पिशाच और राक्षस अनेक भान्ति के मरने वाले के सम्मुख नित्य आते हैं ।

वह प्रेतादि मारने की इच्छा से औषधी आदि के वीर्य को नष्ट कर देते हैं इस लिये जितनी चिकित्सा की जाती है वह मरने वाले की सब निष्फल होती है ॥ ७२–७३ ॥

गर्गोऽप्येवं ब्रवीत्येव श्वासान्तां कारयेत् क्रियाम् ।
कदाचिद्दैव योगेन दृष्टारिष्टोऽपिजीवति ॥ ७४ ॥

गर्ग मुनि ऐसा कहते हैं कि रोगी की चिकित्सा जब तक श्वासों का अन्त न हो तब तक करनी चाहिये, क्योंकि कभी जिसके अरिष्ट अर्थात् मरण सूचक चिन्ह दिखाई देते हैं भाग्यवश वह भी रोगी जी सकता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीकायस्थ चण्डकृते ज्वरतिमिरभास्करे ज्वर-
प्रभेदोनाम प्रथमोऽध्यायः ।

अथ नाडी परीक्षा आदि नाम द्वितीयोऽध्यायः।

दण्डवत् सरलं हस्तं कृत्वा नाडीं परीक्षयेत्।
करस्थां गुष्ठ मूले या धमनी जीवसाक्षिणी॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः॥ १॥

दण्ड की तरह हाथ सरल करके नाड़ी की परीक्षा करे, यहां दण्डवत् शब्द से यह प्रयोजन है कि हाथ को कोहनी से थोड़ा सा निवाकर परीक्षा करे यथा चोक्तं ग्रन्थान्तरे "ईषद्विनम्रकृतकर्पूरभागभाजा इति"। हाथ के अंगूठे के मूल में जो धमनी जीव की साक्षिणी अर्थात् जीवन का होना दर्शाती है, उसकी चेष्टा अर्थात् गति से शरीर का सुख तथा रोग पण्डितों करके जानना चाहिये।

वहते प्राङ्मध्यमान्ते पित्तश्लेष्मानिलैः क्रमात्।
शीघ्र मन्दगतिर्वक्रा क्रमात् त्र्यंगुलि पीडिता॥ २॥

पहिले पित्त मध्य में श्लेष्मा अन्त में वायु क्रम से चलते हैं तथा पित्त की गति शीघ्र कफ की गति मन्द तथा वात की गति वक्र होती है यह गतियें तीन अंगुलियों के पीड़न से जाननी चाहिये।

मिश्रा सा द्वन्दजा ज्ञेया सन्निपातेषु सर्वशः।
नराणां दक्षिणे हस्ते स्त्रीणां वामे विलोकयेत्॥ ३॥

दो दोषों के मिलने से द्वन्द्वज तथा तीनों के मिलने से सान्निपातिक जानना। मनुष्यों के दाहिने हाथ में और स्त्रियों के वाम हाथ में नाड़ी की गतियों को देखे॥ ३॥

उद्वेग कामक्रोधेषु भयचिन्तोदये तथा।
उष्णा शीघ्र गतिर्नाडी भवत्येवनसंशयः॥ ४॥

---

१ इति तु न सम्यक्;—सर्वेष्वेव तन्त्रेषु वातस्य प्राधान्यात्—"आदौ च वहते वातः मध्ये पित्तं तथैव च। अन्ते तु श्लेष्मा विज्ञेयः सर्वशास्त्रविशारदैः" इति संग्रहेऽपि—"वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषाः समासतः।" इति। अतो वायोराशुकारित्वात्, शरीरव्याधिकरत्वात्, एवं द्रव्य समूहानां समुत्पत्ति स्थिति संहृति कारित्वाच्चादावेवास्याभिधानम्। युक्तम्—नेतरस्य तथा च वायुना विना नहि कस्यापि दोषस्य स्वतन्त्राक्रिया दृश्यते, अतस्तथैव प्राधान्यत्वात्प्रथमं तत्पठनं मुचितमिदं। तथा चानुभवेनापि नित्यशो वायोर्गतिः प्रागेव दृश्यते इति।

उद्वेगेति—उद्वेग, काम, तथा क्रोध में और भय चिन्ता के होने पर गरम तथा शीघ्र गति वाली नाड़ी होती है इस में सन्देह नहीं ४

अतिक्षीणा च या नाड़ी अति शीता च या भवेत् ।
न सा नाड़ी भवेच्छुद्धा मृत्युकृत्कथिताबुधैः ॥

जो नाड़ी अति क्षीण तथा जो अति शीत होती है वह शुद्ध नहीं होती वह मृत्यु के करने वाली जानना ॥ ५ ॥

मूलसंस्थानचलिता यावद्बाहुकलम्बिका ।
तदूर्ध्वं यदि सा याति नाडी मृत्युभयंकरी ॥ ६ ॥

जो नाड़ी मूल स्थान से बाहु तक पहुंच कर पुनः ऊपर को यदि जाये तो वह मृत्यु के भय करने वाली जाननी ॥ ६ ॥

पाश्चात्य मतानुसारेण नाड़ी परीक्षामाह—

परिव्याप्या खिलं कायं धमन्यो हृदयाश्रयाः ।
वहन्त्यः शोणितस्रोतः शरीरं पोषयन्ति ताः ॥ ७ ॥
हृदया कुञ्चनाद्रक्तं कियदुत्प्लुत्य धामनीम् ।
तत्साश्रितं तदुत्थश्च प्रविश्य चापरास्वपि ॥ ८ ॥
व्रजित्वा निखिलं देहं ततो विशति फुप्फुसम् ।
फुप्फुसात्तद्धृदयं याति क्रियैवं स्यात्पुनः पुनः ॥ ९ ॥
शोणितोत्प्लववेगेन धमनी स्पन्दते मुहुः ।
उत्प्लव प्रकृतेर्भेदाद्भेदः स्यात्स्पन्दनस्य च ॥ १० ॥

हृदय के आश्रित रहने वाली धमनियें सर्वशरीर में फैल कर देह के भीतर (तथा बाहिर वह) रक्तवाही स्रोत (प्रवाह) को बहाती हुई शरीर का पोषण करती हैं ॥ ७ ॥

हृदय की आकुञ्चनादि क्रिया से थोड़ा सा रक्त उछल कर रक्तवाही धमनी में प्राप्त होता है उस से निकला हुआ तथा साश्रित रक्त अन्य धमनियों में पहुंचता है सर्वदेह में जाकर पीछे फुप्फुस में प्रवेश करता है, पुनः फुप्फुस से हृदय में जाता है इस प्रकार पुनः२ क्रिया होती है, रक्त के उत्प्लव वेग से अर्थात् उछलने के वेग से फिर २ धमनी स्पन्दन (फड़कना) करती है, उत्प्लव की प्रकृति के भेद से स्पन्दन में भेद होता है ॥ ८—१० ॥

नाड़ी स्पन्दन संख्यामाह—

षष्ठ्या स्पन्दास्तु मात्राभिः षट्पञ्चाशत् भवन्ति हि।
शिशोः सद्यः प्रसूतस्य पञ्चाशत्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥
चत्वारिंशत्ततः स्पन्दाः षट्त्रिंशद् यौवने ततः।
प्रौढस्यैकोनत्रिंशत्स्युर्वार्द्धकेऽष्टौ च विंशतिः ॥ १२ ॥
पुंसोऽति स्थविरस्य स्युरेकत्रिंशदतः परम्।
योषितां पुरुषाणाञ्च स्पन्दास्तुल्याः प्रकीर्तिताः ॥ १३ ॥
प्रौढ़ानां रमणीनान्तु ह्यधिकाः सम्मता बुधैः ॥ १४ ॥

साठ मात्रा से अर्थात् एक दीर्घ अक्षर उच्चारण करने में जितना काल लगता है उतने समय में अर्थात् १ पल में तत्काल प्रसूत बालक की नाडी की गति संख्या ५६ होती है। इस के अनन्तर आयु के बढ़ने पर ५० तथा ४० बार स्पन्दन होता है। युवावस्था में ३६ बार होती है तथा ४० वर्ष से ६० वर्ष तक २६ बार स्पन्दन की मात्रा होती है। तथा इस से ऊपर वृद्धावस्था में २८ बार स्पन्दन होता है। यह अवस्था ६० वर्ष से ७५ वर्ष तक रहती है इस से ऊपर अर्थात् ७५ वर्ष से ऊपर नाडी संख्या पुनः वृद्धि को प्राप्त होकर ३१ बार तक स्पन्दन होती है।

पुरुष तथा स्त्रियों के स्पन्दन तुल्य होते हैं। परञ्च प्रौढ़ावस्था में स्त्रियों की स्पन्दन संख्या पुरुषों से दो बार नाडी अधिक फडकती है ॥ ११—१४ ॥

दण्डादिमानमाह—

दशगुर्वक्षरोच्चार कालः प्राणः षडात्मकैः।
तैः पलं स्याच्च तत् षष्ठ्या दण्ड इत्यभिधीयते ॥ १५ ॥

दशगुरु अक्षर उच्चारण में जितना समय लगता है उस को प्राण कहते हैं जिन ६ प्राणों का एक पल होता है तथा ६० पल का १ दण्ड होता है। इसलिए एक पल के ६० भाग हुए उसमें १ भाग को विपल कहते हैं उसी का नाम मात्रा है ॥ १५ ॥

अथ मूत्रपरीक्षामाह—

रोगिणां कारयेत्स्रावं प्रातस्तन्मध्यमानयेत्।
श्वेतकाचमये पात्रे परीक्षेताथ पण्डितः ॥ १६ ॥

प्रातःकाल रोगी को काच के पात्र में प्रथम धार को छोड़कर मध्य की धारा को लेकर वैद्य उस की परीक्षा करे ॥ १६ ॥

वाते नीलारुणं रूक्षं पित्ते पीतोष्म लोहितं ।
स्निग्धं शीतं घनं शुभ्रं मूत्रं श्लेष्म प्रकोपतः ॥ १७ ॥
मिश्रितं द्वन्द्वजं ज्ञेयं कृष्णं स्यात्सान्निपातिकं ।
याम्यदिक्कोणतोन्यत्र शुभदं तैल सर्पणात् ॥ १८ ॥

वात के कुपित होने पर मूत्र का वर्ण नील, अरुण, तथा रूक्ष होता है पित्त के कोप से पीत, उष्ण, तथा रक्त वर्ण होता है। श्लेष्मा के कोप से स्निग्ध शीत गाढ़ा तथा श्वेत वर्ण का मूत्र होता है। मिले दो २ लक्षणों से द्वन्द्वज और सन्निपात से कृष्ण वर्ण होता है दक्षिण दिशा से भिन्न तैल का फैलाव होने से शुभ जानना १७-१८

कुलभूतप्रेतरक्षा देवाद्विड्यक्ष मातृजा ।
पूर्वादिषु क्रमाद्दोषास्तैलबिन्दुविसर्पणात् ॥ १९ ॥
चालिनी दृश्यते प्रेतात् त्रिकोणे शाकिनी मता ।
काल[1]दिव्यानराकारी केवले मण्डपे शुभम् ॥ २० ॥

पूर्व आदि दिशाओं में क्रम से कुल, भूत, प्रेत, राक्षस, असुर, यक्ष तथा मातृजादि दोष मूत्र पर तैल विन्दु फैलने से दिखाई देते हैं। प्रेत से तैल बिन्दु चालिनी अर्थात् चलनी के सदृश हो जाता है। तैलविन्दु यदि त्रिकोण हो तो शाकिनी दोष कहा है। नर के आकार के तुल्य यदि तैलविन्दु हो जाय तो कालदिव्या जाननी। केवल यदि मण्डप के तुल्य हो तो शुभ जानना ॥ १९—२० ॥

अजीर्णान्मलवन्धाच्च तैलं तिष्ठति बिन्दुवत् ।
निमज्जति यदा मूत्रं भ्रमद्वान्नैव सर्पति ॥ २१ ॥
तदारिष्टं रोगिणे तु जानीयान्नात्र संशयः ।
प्रासाद चामर छत्र पताका हंस हस्तिनाम् ॥ २२ ॥
वृष वाजि सरोजानामाकारः शुभसूचकः ।

अजीर्ण से मल के रुकने से तैल विन्दुवत् ठहरता है। जब मूत्र में तैलबिन्दु डूब जाये अथवा घूमता हुआ फैले नहीं, तब रोगी को असाध्य जानना इस में सन्देह नहीं है।

---

1 कुलदेव्यानराकारे इति वा पाठः।

महल, चामर, छत्र, पताका, हंस हाथी, बैल, घोड़ा, कमलों के सदृश आकार हो जाये तो रोगी के लिये शुभ जानना चाहिये ॥

श्रृगाल हल कूर्मा हि लुलाप खर द्रंष्ट्रिणां ।
काकोष्ट्रकृकलासानामाकाराः मृत्युसूचकाः ॥ २३ ॥
एकादिमार्गेनानास्रं इति वा विशिरस्कोनरोऽथवा ।
दृश्यते चात्रलीयेत तैलं तं परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

श्रृगाल, हल, कछुआ, सर्प, महिष, गधा, चीता, काक, उष्ट्र, किरला, आदियों का आकार तैल में यदि दृष्टिगोचर हो तो वह मृत्यु सूचक होता है ॥

एकादि मार्ग से हीन चिह्न जो मूत्र में दिखाई दे अथवा मूत्र में तैल डालने से बिना शिर के चिह्न दिखाई देता हुआ लीन हो जाये तो वह तैल त्याज्य जानना ॥ २३—२४ ॥

धारा श्वेता शुभा ज्ञेया पीता धारा तदा ज्वरः ।
दीर्घ रोगप्रदा रक्ता कृष्णा मृत्युभयंकरी ॥ २५ ॥
अहो रात्रेण विसृजेत् स्वस्थो मूत्रमनाविलम् ।
आपाण्डुरश्च तरलं पलानामष्टसम्मितम् ॥ २६ ॥

मूत्र की धारा श्वेत शुभ जानना, पीत वर्ण की धारा ज्वर की जानना, दीर्घ रोग युक्त रोगी के मूत्र की धारा लालवर्ण, तथा कृष्ण वर्ण की धारा मृत्यु करने वाली होती है ।

दिन रात में स्वस्थ पुरुष का मूत्र मलिनता रहित पाण्डुवर्ण तथा तरल होता है और आठ पल तोल में होता है ॥ २५—२६ ॥

इति मूत्र परीक्षा ॥

अथ हृदयपरीक्षामाह—

हृदयपरीक्षाशब्देनात्र फुप्फुसोहृदयश्चेत्युभयोरेव शोणितयन्त्रयोरुरःस्थितयोः परीक्षणमवगन्तव्यम् । पवनः प्रतिनियतं प्रविश्य फुप्फुसं तत्रस्थं शोणितं विशोधयति अयमेव वायुः प्राणनाम्ना व्याख्यातः। ततस्तस्माद्विषां शमाकृष्य वहिर्निस्सरत्युदानः । असौश्वासक्रिया । एकस्मिन् श्वासक्रिया काले नाड़ीनां चत्वारि स्पन्दनानि भवन्ति । जाग्रतः स्वपतस्तिष्टतश्चासी-

नस्यासीनाच्छयानस्योपलभ्यते संख्याह्रासः श्वासस्य ॥ २७ ॥

मूत्र परीक्षा के अनन्तर हृदय परीक्षा कहते हैं—"हृदय परीक्षा शब्द से यहां फुप्फुस तथा हृदय इन दोनों का अर्थात् शोणित वह यन्त्रों का जो छाती में स्थित हैं उन की ही परीक्षा जाननी चाहिये। वायु अपने नियत मार्ग से फुप्फुस में प्रवेश करके वहां रहने वाले शोणित का शोधन करता है यह ही 'वायु' प्राण वायु के नाम से कहा गया है। तब उस रक्त से विष भाग को खेंच कर उदान नामक वायु बाहिर निकालता है। इस कर्म को श्वास क्रिया कहते हैं। एक श्वास जितने समय में लिया जाता है उतने में नाड़ी का स्पन्दन चार बार होता है। जागने, सोने, बैठने, तथा ठहरने बैठ कर सोने वाले पुरुष के श्वास का ह्रास दिखाई देता है ॥ २७ ॥

अतः परमभिघात परीक्षाविधिः कथ्यते। तद्यथा फुप्फुसमभितो वक्षसि वामहस्तस्य प्रदेशिनी मध्यमां वा स्थापयित्वेतर करांगुल्यग्रैरेकत्र योजितैरभिहत्याभिघातशब्देनजानीयादुरोऽभ्यन्तरावस्थां विशेषेणावधानपरः। नच सकृदेव परीक्षयामीमांस्यं किञ्चित् पुनः पुनरेव तु परीक्षा कर्त्तव्या। असंन्यस्ताङ्गुलिकं केवलमेवोरोऽप्यभिहत्यपरीक्ष्यते। आमपरिरहितात् फुप्फुसादुद्भवति शब्दोऽतिस्फुटोऽभिघाताच्छून्यगर्भपात्रादिवेति, वेद्यम्। दृढीभूते वायुपरिशून्ये वा फुप्फुसस्य क्वचिदंशे तत्राभिघाताज्जड़ो मन्दोऽतीक्ष्णश्चोद्भवति शब्दोविवृद्धहृदयेऽभिघाताच्च। क्षयकासादिविंकृतिमापन्नसम्यङमन्दीभवति सः ॥ २८ ॥

इस के अनन्तर चोट लगा कर परीक्षा करने की विधि कहते हैं। वक्षस्थल में फुप्फुस के चारों ओर बांये हाथ की अंगुठे के साथ की प्रदेशनी अंगुली अथवा मध्यमा अंगुलि को रख कर दूसरे हाथ अंगुलियों से जिनका अग्रभाग इकट्ठा किया है उन से चोट लगायें तब चोट के शब्द से छाती के भीतर की अवस्था (हालत) को जाने, विशेष ध्यान लगा कर। एक ही बार परीक्षा करने से मत विचार करो अर्थात् पुनः २ अभिघात के शब्द की परीक्षा करनी चाहिये। भिन्न २ अंगुलियों को रख कर केवल चोट लगा कर छाती की परीक्षा करनी योग्य है। रोग रहित फुप्फुस से

अतिस्फुट शब्द पैदा होता है। चोट लगाने से खाली बर्तन की तरह शब्द होता है। कठिन तथा वायु से शून्य होने पर फुप्फुस के किसी अंश में वहां चोट लगाने से जड़, मन्द (हलका) तीक्ष्णता रहित शब्द होता है और बढ़े हुए हृदय में अभिघात करने से जड़, मन्दादि शब्द का ज्ञान होता है।

क्षय तथा कास आदि से पीड़ित होने पर वह शब्द भली प्रकार मन्द होता है ॥ २८ ॥

अभिघाते नेव वक्षसि केवल कर्ण संयोगे नापि निरन्तरं प्रकृत्यै वोत्पद्यमान शोणित यन्त्राभ्यन्तरीण विविध शब्दोपलब्ध्या तद्यन्त्रयोरवस्था विशेषः प्रतीयते ॥ २९ ॥

चोट लगाने की तरह वक्षःस्थल में केवल कान के लगाने से भी निरन्तर स्वभाव से ही उत्पन्न शोणित यन्त्र के अन्दर से अनेक प्रकार के शब्द की प्राप्ति होने से उस यन्त्र की हालत का विशेष ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

स्वस्थानां पञ्जरे प्रहिते कर्णे फुप्फुसे वायोः प्रवेशात् ततो वहिर्निःसरणाच्च निरन्तरं श्रूयते शब्द विशेषः । स एवापि लभ्यते गम्भीर तरश्चोग्रतरश्च कण्ठे। विक्रियां याते फुप्फुसे सर्प श्वास वद्वंशी ध्वनिवच्च शब्दःप्रादुर्भवति । श्लेष्मणि शोणिते पूये वा तत्रसञ्चिते पंकमयक्लिन्नोद्भिज्जनिकर पल्वल संघट्ट नाद्बुद्बुदोत्पादशब्द इवोत्पद्यते शब्दः ॥ ३० ॥

स्वस्थ पुरुषों के पञ्जर पर कान लगाने से फुप्फुस में वायु के प्रवेश से तथा बाहिर निकलने से विशेष शब्द सुनाई देता है वह शब्द कण्ठ में गम्भीर तथा उग्र (अधिक) प्रतीत होता है।

रुग्णावस्था में फुप्फुस के बिगड़ जाने पर सर्प के श्वास की तरह या वंशी की ध्वनि की तरह शब्द पैदा होता है।

फुप्फुस में कफ शोणित वा पूय (पीप) के इकट्ठे हो जाने पर कीचड़ से गीले हुए २ उद्भिज्ज अर्थात् औषधि आदियों के समूह से छुप्पड़ के भरे रहने से बुलबुले के शब्द के पैदा होने के समान शब्द होता है अर्थात् भारी तथा मन्द शब्द की प्रतीति होती है ३०

हृदयाकुञ्चन प्रसराभ्यां द्विविधौ प्रादुर्भवतः शब्दौ । वाम-

स्तन वृन्तान्निम्ने वक्षस्या कुञ्चन शब्दो व्यक्ततरः श्रूयते । प्रसारजस्तु तत ऊर्द्ध्वं हृदस्थि सन्निहिते । अयमाद्या तीक्ष्ण तरोऽगम्भीरः स्वल्प कालावस्थायी च । आद्यस्तु दीर्घ तीक्ष्णश्च हृदये विवृद्धिंगते स एव मन्दतरो भवति । नियतस्पन्दन स्थानान्निम्नतरेप्रदेशे स्पन्दनं लक्ष्यते च । उरः क्षताद्यै क्षयरोगै र्हृदय परिपचनात् ततो बुद्धदस्येव जायते शब्दः ॥ ३१ ॥

हृदय के संकुचित तथा फैलाव से दो प्रकार का शब्द पैदा होता है वांये स्तन की चुची से नीचे वक्षःस्थल के संकुचित होने पर स्पष्ट शब्द सुनाई देता है । प्रसार से उत्पन्न शब्द हृदयास्थि के समीप होता है । यह आरम्भ से तीक्ष्णतर तथा ऊंचा (अगम्भीर) और थोड़े समय तक रहता है । आरम्भ में जो लम्बा और तीक्ष्ण-तर होता है वही शब्द हृदय की वृद्धि पर मन्दतर होता है । तथा निश्चित स्पन्दन स्थान से नीचे के स्थान में स्पन्दन दिखाई देता है उरःक्षतादि से क्षयरोग करके हृदय के परिपचन से बुद्बुद के न्याई शब्द होता है ॥ ३१ ॥

शयनार्थं दिगादि निर्देशः—

उदङ्मुखे प्राङ्मुखे वा निर्वात निलये ज्वरे ॥ ३२ ॥
गुरूष्ण चेलैस्तु शय्यां ध्वान्ते प्राक् शिर आश्रयेत् ।

ज्वर से पीड़ित रोगी को उत्तर मुख वा पूर्वमुख वाले मकान में जहां वायु का अधिक प्रवेश न हो, भारी तथा गरम वस्त्रों से वेष्टित कर के पूर्व दिशा की ओर शिर है जिस का ऐसी शय्या पर प्रकाशरहित स्थान में आश्रय दे ॥ ३२ ॥

क्वाथ पान विधि—

नवमृद्भाजने क्वाथ्यं यथा दोषं जलं तथा ।
शीतं कृत्वा तु पेयं स्यादन्यथा शोकदाहदम् ॥ ३३ ॥

नवीन मिट्टी के पात्र में जैसा दोष हो अर्थात् वात पित्त तथा कफादि के विपरीत क्वाथ बनावें, और उसे भली प्रकार ठण्डा कर के पीवे नहीं तो शोक तथा दाह को करने वाला होगा ॥ ३३ ॥

तरुणादिज्वरे मर्यादा—

तरुणं तु ज्वरं प्राहुर्बुधाः सप्तदिनावधिम् ।

मध्यं द्वादश रात्रं तु पुराणं मत उत्तरम् ॥ ३४ ॥

* बुद्धिमान वैद्य सात दिन तक तरुण ज्वर कहते हैं बारह दिन तक मध्यज्वर तथा इसके ऊपर पुराना ज्वर मानते हैं ॥ ३४ ॥

तरुण ज्वरे वर्ज्यं—

तरुणे तु ज्वरे वर्ज्यं क्रोधाद्यं जल शीतलम् ।
परिषेका वगाहाश्च स्नेहाः संशोधनानिच ॥ ३५ ॥

नवीन ज्वर में क्रोध का करना, ठण्डा जल पान, परिसेक करना अर्थात् सेकादि करना तथा स्नान करना, स्नेह सेवन, तथा वमन विरेचन आदि का सेवन करना त्याग दे ॥ ३५ ॥

अन्यच्च—

स्नानाभ्यङ्ग दिवास्वप्न शीत व्यायाम योषितः ।
कषाय गुरु भक्ष्याणि विशेषेण नवान्नकम् ॥ ३६ ॥
अनवस्थित दोषाग्नेरेभिः सन्धुक्षितोज्वरः ।
गम्भीर तीक्ष्ण वेगित्वं यात्यसाध्यत्वमेवच ॥ ३७ ॥

तरुण ज्वर में स्नान, मालिश, दिन का सोना, ठण्डे द्रव्य, कसरत स्त्री सेवा कषाय अर्थात काढ़ा, आदि द्रव्यों का खाना तथा विशेष नवीन अन्नों का सेवन त्याज्य होता है। दोषों के अनवस्थित होने से तथा अग्नि के मन्द होने पर उक्त स्नानादियों के सेवन करने से ज्वर बढ़कर गम्भीर तथा तीक्ष्ण वेग वाला हो जाता है तथा असाध्यता को प्राप्त हो जाता है ॥ ३६—३७ ॥

अन्यच्च—

शोथच्छर्दि मदो मूर्च्छा ज्वरस्तृष्णा तथारुचिः ।
प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् क्रोधादीनां हि सेवनात् ॥ ३८ ॥

क्रोधादिओं के सेवन करने शोथ, छर्दि, मद, मूर्च्छा ज्वर, तृष्णा तथा अरुचि आदि उपद्रव्यों को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

---

१ ग्रन्थान्तरे—त्रिःसप्ताहे व्यतीतस्तु ज्वरोयस्तनुतांगतः ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते सजीर्णज्वर उच्यते ॥ १ ॥

* शरीरेरूपसम्पूर्णे ज्वरमाहुर्मनीषिणः । छर्दि मूर्छां मदं मोहं भ्रमं तृष्णां तथैव च नरः शोधनमात्रेण प्राप्नोति तरुणज्वरे । इत्यधिकं "ख. पुस्तके" ।

लंघननिधानमाह—

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधाययन् ।
विदधाति ज्वरं दोष स्तस्मात्कुर्वीत लंघनम् ॥ ३९ ॥
भक्ष्य भोज्यस्य चोष्यस्य लेह्य पेयस्य वारणं ।
लंघनं प्रोच्यते सद्भिः काय लाघव कारकम् ॥ ४० ॥
औषधाशनं न दद्यात् शोधनं वा नव ज्वरे ।
औषधेनाकुलीभूतो दोषो जेतुं न शक्यते ॥ ४१ ॥
प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ४२ ॥
आमेन भस्मनेवाग्नौ च्छन्नेऽन्नं न विपच्यते ।
तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥ ४३ ॥

आम युक्त दोष आमाशय में स्थित होकर अग्नि को नाश कर मार्गों को रोकते हुए ज्वर को कर देते हैं इसलिये लंघन करना चाहिये ।

अर्थात् भक्ष्य-चावल दालादि, भोज्य-मोदक मण्डादि, चोष्य-आम्र गन्ना आदि, लेह्य रसालादि, पेय-दुग्धादि इन सब पदार्थों को रोक देना अर्थात् खाने को न देना ही बुद्धिमानों ने लंघन कहा है जो देह को हलका कर दे ।

औषध अर्थात् कषायादि तथा खाने को नवीन ज्वर में न देना चाहिये क्युंकि औषधादि से व्याकुल हुए २ दोष जीते नहीं जा सके ॥

ज्वर युक्त पुरुष को प्राणों के अविरोधी अर्थात् ऐसा लंघन करना चाहिये जिससे प्राणों का भय न हो, क्योंकि बल का होना ही आरोग्यता होती है जिसके लिये यह सब चिकित्सा का क्रम है ।

आम दोष से अग्नि के मन्द होने पर अन्न पाक नहीं होता अर्थात् जैसे भस्म से ढ़ाँपी हुई अग्नि का तेज अल्प होता है इसी प्रकार आम से आच्छन्न अग्नि अन्न पकाने में समर्थ नहीं होती इसलिये दोषपाक पर्यन्त ज्वरी का लङ्घन कराये ॥ ३९—४३ ॥

न जीर्णत्यौषधं यस्माज्ज्वरार्त्तस्य विनाऽग्निना ।
तस्मान्न दद्याद्भैषज्यं लङ्घनन्तु प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥

क्योंकि बिना अग्नि के ज्वरी की खाई हुई औषध जीर्ण नहीं होती इसलिये औषध नहीं देना वहां लंघन का ही प्रयोग करना ॥

वयो दोष बलं कालं प्रकृतीः कारणं तथा।
विचार्य्य लङ्घनं कार्य्यं ज्वरितस्य ज्वरापहम् ॥ ४५ ॥
आहारं पचति वह्निर्दोषान्पचति लङ्घनम्।
दोषैर्विहीनो धातूंश्च प्राणां स्तेषां क्षयेन्नृणाम् ॥ ४६॥

आयु, दोष, बल, काल, स्वभाव, तथा कारण आदियों का विचार कर ज्वरी के लिये ज्वर नाशक लंघन कराये ॥ ४५ ॥

आहार को अग्नि पकाता है और दोषों को लंघन पकाता है। लंघन दोषों के पकने पर यदि कराया जाय तो वह धातुओं को पकाता है उनके क्षीण होने पर मनुष्यों के प्राणों को नाश कर देता है ॥ ४६ ॥

लंघनस्य मर्यादा—

एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रामथापि वा।
सप्तरात्रं नवश्यामं निशाह्येकादशापि वा ॥ ४७ ॥
लंघनस्य कृतः कालो दोषरूपानुसारतः ॥ ४८ ॥

एक दिन, तीन दिन अथवा पांचदिन वा सात दिन वा नवरात्र अथवा ग्यारह रात्रि तक काल तथा दोषों के लक्षणों के अनुसार लंघन कराये ॥ ४७–४८ ॥

दोषाणामेव साशक्तिः लंघने या सहिष्णुता।
नतु दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनादिकम् । ४६ ॥
सप्ताहेन तु पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः।
निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ ५० ॥
जीर्णानामविपर्य्यासात्सप्तरात्रं च लंघनात्।
लंघनं मात्रया कार्यं सामे तीव्रे कफज्वरे ॥ ५१ ॥
अतिसारेऽप्यजीर्णे च ज्ञात्वा दोषबलाबलम्।

§ आनद्धैः स्तिमितैर्दोषैर्यावनकालमातुरः। तावत्यशनं कुर्यात्ततः संसर्गमाचरेत् ॥ "इत्याधिकं" ख. पुस्तके ॥

१ नवाह्नमिति वा पाठः।

दोषों की ही शक्ति है जो लंघन का सहन करते हैं, दोषों के क्षीण होने पर लंघन को कोई सहन नहीं कर सकता ॥ ४९ ॥

सात दिन के अन्दर सात धातुओं में गये हुए दोष पाक को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये प्रायः आठवें दिन ज्वर को निराम कहा है॥

सात रात्रि-लंघन कराने से दोषों के क्षीण न होने पर आमयुक्त तीव्र कफ ज्वर में और अतिसार में तथा अजीर्ण में भी दोष तथा बलाबल को देख कर मात्रा से लंघन करना चाहिये। इसीलिये पहिले ग्यारह रात्रि तक लंघन का विधान किया गया है ॥ ५१ ॥

लंघनायोग्यानाह—

न लंघयेन्निरामं च त्रसन्तं शुद्धवातिनम् ॥ ५२ ॥
बालं वृद्धं कृशं क्षीणं तृष्णातुरमतिक्षुधम्।
गर्भिणीं सुकुमारं च भीरु मूर्ध्वानिलं जनम् ॥ ५३ ॥
कामक्रोधभयाघातश्रमात्यध्वभवाज्ज्वरान् ।

आम से रहित रोगी को लंघन नहीं कराना, डरे हुए को शुद्ध वात से पीड़ित को, बालक को, वृद्ध को, कृश को, क्षीण को, प्यास जिसे लगी हो, अतिभूख वाले को, गर्भिणी को, कोमल को और भययुक्त को, ऊर्ध्व वात युक्त को, काम क्रोध तथा भय से युक्त ज्वर वाले को तथा चोट से, थकावट से, मार्ग के चलने से जिसको ज्वर हो गया हो ऐसे व्यक्ति को लंघन करना हित नहीं होता ॥ ५२–५३ ॥

तरुणन्तु ज्वरं पूर्वं लंघनेन क्षयं नयेत् ॥ ५४ ॥
लंघनैः क्षपिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति ।
स्वास्थ्यं क्षुत्तृड्रुचिः पक्तिर्बलमोजश्चजायते ॥ ५५ ॥
सुलंघितं नरं विद्यात्क्षुत्पिपासाऽसहं लघुं ।
सृष्टमारुतविण्मूत्रं क्षामं प्रस्कन्नकेन्द्रियम् ॥ ५६ ॥

नवीन ज्वर को लंघन से पहिले क्षीण करे लंघन से क्षीण होने पर दोषों के, तथा अग्नि के दीप्त होने पर, देह के हलके होने पर आरोग्यता, भूख, प्यास, रुचि, पाचनशक्ति, बल और ओज पैदा होता है। जब भूख, प्यास को नहीं सहता तथा देह हलका हो

---

१ भ्रमार्तं भिता पाठः ।

मल मूत्र आने लगे और देह कृश हो जाय इन्द्रियां प्रसन्न हों तो तब सुलंघित जानें ॥ ५४-५६ ॥

स्यान्मध्यलंघिते बाधा विड्गन्धो रूक्षता रुचिः ।
गतक्लमरुजो ग्लानिर्नेन्द्रियाणां प्रसन्नता ॥ ५७ ॥

जिसकी पीडा अभी शेष हो तथा मल दुर्गन्धि युक्त हो देह रूक्ष हो, रुचि हो क्लम अर्थात् बिना श्रम के थकावट होना, पीड़ा, ग्लानि नष्ट हो गई हो, इन्द्रियां प्रसन्न न हों वह मध्य लंघित जानना ॥ ५६ ॥

अतिलंघिते श्वासाद्याः प्रभवन्त्यप्युपद्रवाः ।
तन्द्रा निद्रा भ्रमग्लानि तृष्णादोष बलक्षयाः ॥ ५८ ॥

अति लंघन करने पर श्वासादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं तथा, तन्द्रा, निद्रा, भ्रम, ग्लानि तृष्णा और दोष तथा बल का नाश होता है । ५७ ॥

इति कायस्थचण्डकृते नाडिकादि -भेदो
नाम द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।
पक्कं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ १ ॥
सप्ताहादौषधं केचित्प्राहुरन्ये दशाहतः ।
केचिल्लध्वन्नभुक्तस्य योज्यमामोल्वने न तु ॥ २ ॥

ज्वर के मृदु होने पर अर्थात् उपद्रव रहित होने पर देह के हलके होने पर मल अर्थात् मल-मूत्र के चलने पर, दोषों को पका हुआ जान कर ज्वर में औषध (अर्थात् मुस्त पर्पटादि) प्रयोग करना चाहिये । कोई आचार्य सात दिन के अनन्तर औषध देना कहते हैं और दूसरे दस दिन के बाद औषध विधान कहते हैं । कोई आचार्य कहते हैं कि हलका अन्न अर्थात् मण्ड पेयादि खाया है जिसने उसको औषध देना, परन्तु आम की वृद्धि में औषध का प्रयोग न करना चाहिये ॥ १-२ ॥

तिक्तः पित्तहरो दोषः कटुकः कफनाशनः ।
पित्तश्लेष्महरोऽप्येवं कषायस्तुवरो रसः ॥ ३ ॥

तिक्त रसवाली औषध (अर्थात् गुडूची आदि) पित्त ज्वर के नाश करने के लिये, और कफ नाश के लिये कटु रस युक्त द्रव्य प्रयोग करना इसी प्रकार पित्त श्लेष्म के हरने के लिये तुवर (अर्थात् कसैला रस) प्रयुक्त करे । परञ्च वाग्भट्टाचार्य इस श्लोक को इस तरह से वर्णन करते हैं यथा—"तिक्तः पित्ते विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे । पित्तश्लेष्म हरत्वेऽपिकषायस्तुन शस्यते" इति । अर्थात् पित्त ज्वर में तिक्त रस युक्त कषाय तथा कफ ज्वर में कटु रस युक्त कषाय प्रयोग करना चाहिये । पित्त श्लेष्म के नाशक होने पर भी कषाय रस से बनाया कषाय (अर्थात् काढ़ा) नहीं प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि वे लिखते हैं, यथा—"नवज्वरे मलस्तम्भाद् कषायोविषमज्वरान् । कुरुतेऽरुचिहृल्लासाहिध्माध्मानादिकानपि" इति । अर्थात् नवीन ज्वर में मल के स्तम्भ होने से काढ़ा विषम ज्वरों को तथा अरुचि आदि उपद्रवों को कर देता है ।

ग्रीष्मे प्रायो मरुत्पित्ते वसन्ते कफमारुते ।
मारुतो योगवाहित्वात् कफपित्ते तु शारदे ॥ ४ ॥

प्रायः ग्रीष्म ऋतु में वात पित्त वसन्त में कफ और वायु के योग होने से शरदृऋतु में कफ पित्त के ज्वर प्राकृत माने हैं ॥४॥

अथ क्वाथभेदानाह—

क्वाथः सप्तविधः प्रोक्तः पाचनःशमनस्तथा ।
दीपनः क्लेदनो भेदी सन्तर्पण विशोषणौ ॥ ५ ॥
पाचनोऽर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः ।
विशोषीषोड़शांशश्च पुनः क्वाथं न शोषयेत् ॥ ६ ॥

क्वाथ सात प्रकार का होता है जैसे, पाचन, शमन, दीपन, क्लेदन, भेदन सन्तर्पण तथा विशोषण । पाचन क्वाथ में जल डाल कर आधा रहने पर पान करना, शोधन क्वाथ में बारहवां भाग, जल शेष रखना चाहिये विशोषी में सोलहवां भाग रखना, तथा फिर क्वाथ को न सुखाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

पाचनः पचते दोषान् दीपनो दीप्यतेऽनलं ।
शोधनो मल शोधीस्याच्छमनः शमयेज्ज्वरम् ॥ ७ ॥

तर्पणस्तर्पयेद्धातून् क्लेदी हृत्क्लेदकारकः ।
विशोषी शोषमाधत्ते ज्ञात्वा कालं नियोजयेत् ॥ ८ ॥

पाचन क्काथ दोषों को पकाता है । दीपन अग्नि को दीप्त कर देता है । शोधन मल का शोधन करता है । शमन ज्वर को शान्त करता है । तर्पण धातुओं को तृप्त (अर्थात् बढ़ाता) है । क्लेदी काथ हृदय को क्लेद करता है । विशोषी कफादियों का शोषण करता है इन सबका काल जानकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

प्रयोग कालमाह—

निशासु पाचनो देयः पूर्वाह्णे शमनस्तथा ।
दीपनश्चापराह्णे तु कल्ये तर्पण भेदनौ ॥ ९ ॥
प्रभाते शोषणं दद्यात्क्लेद कृत्त्वर्धरात्रके ।
तस्मादादौ प्रदेयश्च पाचनस्तु दिनत्रयम् ॥ १० ॥
शमनीयः प्रदेयस्तु पञ्चरात्रं तथोपरि ।
शोधनं दीपनीयञ्च एकरात्रं प्रदापयेत् ॥ ११ ॥

रात्रि में पाचन कषाय देना, प्रातःकाल शमन देना, तथा दीपन तीसरे पहर में देना, तथा प्रथम पहर में तर्पण और भेदन कषाय देना प्रातःकाल शोषण देना और क्लेद करने वाला अर्धरात्रि में दें इसलिये पहिले तीन दिन तक पाचन देना, और शमन कषाय पञ्चरात्र तक देना चाहिये । इसके अनन्तर शोधन तथा दीपन कषाय एक रात्र देना चाहिये ॥ ९-११ ॥

क्काथपाने क्लमो मूर्च्छा वैकल्यं वा प्रदृश्यते ।
वमनं च तदा प्रोक्तं शमनः पथ्यकोऽपि वा ॥ १२ ॥

कषाय पान के अनन्तर यदि क्लम, मूर्च्छा, विकलता दिखाई दे तब वमन करावे शमन अथवा पथ्य प्रयोग कहा है ॥ १२ ॥

कषायपान प्रमाण—

प्रथमस्य[१] पलं मात्रा मध्यमस्य पिचुत्रयम् ।
जघन्यस्य पलार्धं स्यात्स्नेह क्काथविधेषु तु ॥ १३ ॥

स्नेह क्काथ की औषध पान में उत्तम मात्रा एक पल (अर्थात्

१ उत्तमस्य इति क. पाठः ।

४ तोले की) जाननी मध्यम मात्रा ३ तीन तोले की देनी तथा छोटी मात्रा २ तोले की देनी चाहिये ॥ १३ ॥

चतुर्गुणं मृदौ द्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् ।
कठिनात्कठिने द्रव्ये देयं षोड़शकं बुधैः ॥ १४ ॥
अनुक्ते तु प्रमाणस्य मृद्वादि द्रव्य संहतौ ।
जलमष्टगुणं देयमयं· साधारणो विधिः ॥ १५ ॥

मृदु (अर्थात् कोमल) द्रव्यों में चार गुणा जल कषाय पाक के लिये देना, कठिन द्रव्य में आठ गुणा, तथा कठिन से जो अधिक कठिन हो उस में सोलह गुणा जल देकर कषाय पाक करना ॥१४॥

जहां क्वाथ साधन के लिये जल का मान न कहा हो वहां मृदु तथा कठिन द्रव्य मिले हुए हों तो उस में आठ गुणा जल देकर कषाय पाक करना यह एक साधारण विधि है ॥ १५ ॥

क्वाथे लवणादिमानमाह—

लवणं जीरकं चारं गुग्गुलुं च शिलाजतु ।
हिंगु त्रिकटुकं क्वाथे प्रक्षिपेच्छाणमात्रकम् ॥ १६ ॥
घृतं तैलं जलं क्षीरं गुड़ं मूत्रादिकं तथा ।
चूर्णं कल्कादिकं क्वाथे कर्षमात्रं विनिक्षिपेत् ॥ १७ ॥

नमक, जीरा, जौखार या सज्जीखार, गुग्गुलु, और शिलाजीत, हींग, मघां मरिच, शुण्ठी क्वाथ में ४ म.से डालें ॥ १६ ॥

घृत, तैल, जल, दुग्ध, गुड तथा मूत्रादि तथा चूर्ण प्रक्षेप के लिये वा कल्क यदि डालना हो तो १ तोला डालना चाहिये ॥१७॥

चतुर्भागावशिष्टं वा षष्टभागावशिष्टकम्[1] ।
वयो दोषामयाग्न्यादीन्वीक्ष्यमानं प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥
* घृतं तैलं च पानीयं कषायं व्यञ्जनादिकम् ।
पक्वशीतं पुनस्तप्तं सर्वतः स्याद्विषोपमम् ॥ १९ ॥

चार भाग शेष जल अथवा अष्टमांश शेष क्वाथ का वय, दोष, रोग तथा अग्नि आदियों को देख कर मान करना चाहिये ॥ १८ ॥

---

१ अष्टभाग इति वा पाठः ।

* क्वाथ्यद्रव्ये जलं सिक्तं प्रभाते कथितं पिबेत् ।
तत्क्वाथगुणं कुरुज्ञेयो ननिर्यासो गुणावहः ॥ १९ ॥

घी, तैल और पानी तथा कषाय, शाकादि पदार्थ पकाये हुए ठण्डे होने पर फिर गरम किये हुए विष तुल्य हो जाते हैं अतः पुनः गरम नहीं करने चाहिये ॥ १६ ॥

क्वाथविशेषोपदेशमाह—

नोल्लंघयेत्कृतं क्वाथं स्थानान्नान्यत्र चालयेत् ।
न स्थापयेत्कुप्रदेशे न च भूमीगतं नयेत् ॥ २० ॥
विदीर्यत्यथ पतति स्फुटति क्वाथ भाजने ।
तदानिष्टकरं क्वाथं न दोष शमनाय च ॥ २१ ॥

कषाय को बना कर उस पर से लांघना नहीं चाहिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसको नहीं ले जाना, और बुरे स्थान पर भी काथ को नहीं रखे और भूमि पर पड़ जाये तो उसे नहीं ग्रहण करना चाहिये काथ पात्र के फटने पर तथा गिर जाने वा टूट जाने पर वह काथ पीने से—कष्ट देने वाला होता है दोषों को शान्त करने वाला नहीं होता ॥ २१ ॥

क्वाथपानविधिमाह—

तत्रोपविश्य विश्रम्य प्रसन्नवदनेक्षणः ।
क्वाथं तं हेमरजतं मृद्भाजन परिस्थितम् ॥ २२ ॥
पिबेत्पूर्वाननो रोगी विधाय स्वस्तिवाचनम् ।
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्र भूचन्द्रार्कानलानिलाः ॥ २३ ॥
ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसंघास्तु पान्तुते ।
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ॥ २४ ॥
सुधेवोत्तम नागानां भैषज्यमिदमस्तुते ।
धन्वन्तरिं दिवोदासं काशीराजमथाश्विनौ ॥ २५ ॥
अच्युतं चामृतश्चैव स्मरेद्भैषज्यकर्मणि ।
पानपात्र मधः कृत्वा पश्चादुत्तानतां नयेत् ॥ २६ ॥

वहां रोगी भली प्रकार बैठ कर थकावट से रहित हो कर प्रसन्न है मुख तथा नेत्र जिस के वह पुरुष उस पूर्व कल्पित क्वाथ को जो सोने चान्दी वा मिट्टी के पात्र में रखा है, पूर्व की ओर मुख कर के स्वस्तिवाचन बोल कर या ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर काथ को पीवे। और ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, रुद्र,

इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, सप्तर्षि, सहित औषधी ग्राम, भूतों के समूह आदियों को स्मरण करता हुआ जो वह इस की रक्षा करें, ऋषियों के रसायन की तरह अर्थात् रसायन जैसे ऋषियों को, अमृत जैसे देवताओं को, सुधा जैसे नागों को हित कर होती है वैसे ही यह औषध तेरे लिये हितकर हो। धन्वन्तरि दिवोदास, काशीराज तथा अश्विनीकुमार, अच्युत और अमृत आदियों का स्मरण करता हुआ रोगी क्वाथ को पीकर पीने वाले पात्र को औंधा कर के पीछे उसे सीधा कर दे ऐसा करने से सर्वदा वह औषध शीघ्र लाभ करती है ॥ २२—२६ ॥

न पिबेच्च क्षणं वारि ताम्बूलादि तु भक्षयेत् ।
औषध शेषे भुक्तं पीतञ्च तथौषध शेषेऽन्ने ॥ २७ ॥
न करोति गदोपशमं प्रकोपयेत्यन्यरोगांश्च ।

क्वाथ पीने के अनन्तर जलपान न करे परञ्च पान आदि खाये क्वाथ के पचने से शेष रहने पर खाया हुआ अन्न तथा अन्न के पचने से शेष रहने पर पिया हुआ क्वाथ व्याधि को शान्त नहीं करता परञ्च अन्य रोगों को बढ़ा देता है ॥ २७ ॥

शुष्कं नवीनं यद्द्रव्यं योज्यं सकल कर्मसु ॥ २८ ॥
आर्द्रञ्च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ।
औषध्यो लघुपाकाःस्युर्निर्वीर्यावत्सरात्परम् ॥ २९ ॥
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ।
व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपितत्त्यजेत् ॥ ३० ॥
अनुक्तमपि युक्तं यद् योजयेत्सर्वकर्मणि ।

सूखे हुए नवीन द्रव्य सब कामों में लेने चाहिये, गीले जो द्रव्य हों उन्हें द्विगुण प्रयुक्त करें यह सब जगह निश्चय है।

लघुपाक वाली औषध एक वर्ष के अनन्तर हीनवीर्य हो जाती है। आसव, धातु तथा रसादि यह जितने प्राचीन हों उतने अधिक लाभदायक होते हैं। व्याधि के लिये जो प्रयोग में कही हुई औषध लाभदायक न हो उसे निकाल कर व्याधि के नाश करने वाली औषध यदि प्रयोग में नहीं कही गई तो भी उसे मिला लेना चाहिये ऐसा सब कर्मों में विचार के करना चाहिये ॥२८—३०॥

सन्निपातेषु रोगेषु वर्जयेद्विधिममुं भिषक् ॥ ३१ ॥
प्रदीप्ताङ्गारवत् शीघ्रं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।
लंघनेऽपि कृते सम्यग् दृष्टे लंघित लक्षणे ॥ ३२ ॥
ज्वरो यदि न यात्यस्य तं पेयाभिरुपाचरेत् ।
ज्वरे पेयां कषायांश्च सर्पि क्षीरं विरेचनम् ॥ ३३ ॥
षडहं षडहं युञ्ज्यात्कालं वीक्ष्यामयस्य च ।
लंघनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः ॥ ३४ ॥
मलानां पाचनानि स्युः यथावस्थं क्रमेण वा ।

सन्निपात ज्वरों में वैद्य इस उक्त काथादि पान की विधि को छोड़ दे, वह जलता हुआ कोयला जैसा शीघ्रदाहादि कर्म करता है वैसे ही शीघ्रातिशीघ्र चिकित्सा करे क्योंकि वहां चिकित्सा में विलम्ब होने से रोगी के प्राणों का भय रहता है ॥ ३१ ॥

लंघन के करने पर भली प्रकार लंघित के लक्षण जो पीछे कह आये हैं दिखाई देने पर भी यदि रोगी का ज्वर शान्त न हो तो उसे पेया आदि से चिकित्सा करे ॥ ३२ ॥

ज्वर में पेया, कषाय, सर्पि, दुग्ध, तथा विरेचन का छठे दिन के अनन्तर काल और रोग भली प्रकार देख कर प्रयोग करे ॥३३॥

ज्वर में लंघन करना स्वेद देना काल (अर्थात् आठ दिन के अनन्तर) तिक्त रसों का प्रयोग काथादि द्वारा कराना। मलों को (अर्थात् दोषों को) जैसी रोगी की अवस्था हो उसके अनुकूल अथवा क्रम से प्रयोग करने से पाचन करते हैं ॥ ३४ ॥

मुद्गान् मसूरांश्चणकान् कुलत्थान्
मकुष्टकान् पाचनयूषहेतून् ।
हितानिहाहुर्विहिताश्च पेयां
हिता यवागूरपि पाचनैः स्वैः ॥ ३५ ॥

दोषों के पाचन के लिये मूंगी, मसर, चने, कुलत्थी की दाल तथा मोठ हित होते हैं यहां विशेष करके हित जो पेया तथा पाचन द्रव्यों से बनाये हुए यूष भी जो ज्वर में हित होते हैं उनको कहते हैं ॥ ३५ ॥

मण्डमाह—

मण्डश्चतुर्गुणे तोये सिद्धिमायात्य सिक्थकः।
पञ्चकोलकरास्नाभ्यां धान्यकेन च साधितः॥ ३६॥
मण्डास्त्रिदोषशमनः परमं ज्वरपाचनम्।
वाद्यमण्डः कषायश्च विबन्धाध्मानाह शूलनुत्॥ ३७॥
पाचनो दीपनो ग्राही पित्तश्लेष्मनिलापहः।
वाते वा सकफे पित्ते सामे वा तरुणे ज्वरे॥ ३८॥
वाद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम्।
रक्तशाल्युद्भवो मण्डो ग्राही मधुरशीतलः॥ ३९॥
प्रमेहमश्मरीं हन्ति वातलः पित्त वारणः।

मण्ड चार गुण जल में बिना कणों के बनाया जाता है अर्थात् चार पल चावलों में सोलह पल जल देकर पक जाने से जो उसमें से पिच्छसी निकले उसे मण्ड कहते हैं। उसमें पञ्चकोल (अर्थात् पिपली, पिपलीमूल, चव्य, चित्रक तथा सुण्ड) रास्ना धनिया आदि से सिद्ध किया हुआ मण्ड तीनों दोषों को शमन करता है और विशेषकर ज्वर का पाचन करने वाला होता है। वाद्यमण्ड अर्थात् " सुकण्डितै स्तथामृष्टैर्वाद्यमण्डो यवैर्भवेत् " भली प्रकार कूटे हुए तथा भूने हुए यवों से वाद्यमण्ड बनता है," वह वाद्यमण्ड और कषाय मल के बन्ध को अफारे को और शूल को नाश करता है। पाचन, दीपन, मल को रोकने वाला पित्त श्लेष्म तथा वायु का नाशक होता है। वात में अथवा कफ युक्त पित्त में, आम युक्त तरुण ज्वर में वाद्यमण्ड अच्छा होता है। परवल तथा पिपली चूर्ण मिलाने से। लाल चावलों से बनाया हुआ मण्ड ग्राही मधुर तथा शीतल होता है और प्रमेह, पथरी, को नाश करता है तथा वात को बढ़ाने वाला और पित्त को हटाता है॥ ३६—३९॥

पेयामाह—

पेया सिक्थयुता सिद्धा चतुर्दशगुणेऽम्बुनि॥ ४०॥
पेया लघ्वी हिमा ग्लानि पिपासाक्षुद्भ्रमी प्रणुत्।
स्तम्भातिसारदौर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा॥ ४१॥

---

१ " षड्गुणेऽम्भसि संसिद्धा पेया सिक्थ समान्विता " इति वा पाठः।

दीपनी पाचनी दोषमलस्वेदानुलोमनी ।
लाघवात्तण्डुलीया वा लाजपेया विशिष्यते ॥ ४२ ॥

पेया कण युक्त चौदह गुणा जल में सिद्ध की जाती है, यहां कई आचार्य पेया के लक्षण इस प्रकार लिखते हैं यथा—"षड्गुणेऽम्भासि संसिद्धा पेयासिक्थ समन्विता"। अर्थात् छः गुणा जल में सिद्ध की हुई पेया कण युक्त होती है ॥ पेया हलकी ठण्डी होती है और ग्लानि, प्यास, भूख, वमन को दूर करे। स्तम्भ को अतिसार को दुर्बलता को कुक्षिरोग तथा ज्वर को नष्ट करती है। दीपनी पाचनी दोषों को, मल को, पसीने को अनुलोमन करती है चावलों से लाजपेया अधिक हलकी होती है ॥ ४०—४२ ॥

विलेपी—

विलेपी घन सिक्था स्यात्सिद्धा तोये चतुर्गुणे ।
विलेपी दीपनी हृद्या पाचनी क्षुत्तृषापहा ॥ ४३ ॥
लघ्वी स्वादुरसा नित्यं स्नेहनीयोपयोगिनी ।
बल्या संतर्पिणी पथ्या व्रणे शुद्धेऽक्षिरोगिणाम् ॥ ४४ ॥

विलेपी गाढ़े कणों युक्त होती है और चारगुणा जल में सिद्ध की जाती है। विलेपी दीपन हृदय के लिये हित पाचन करने वाली भूख प्यास की नाशक हलकी स्वादिष्ट रस वाली नित्य स्नेह का उपयोग करने वाली बल करने वाली तृप्तिकारक शुद्ध व्रण में तथा चक्षु-रोगियों के लिये हित होती है ॥ ४३-४४ ॥

यवागूमाह—

षड्गुणेऽम्भसि संसिद्धा यवागूर्विरलद्रवा ।
भागैकं च भवेत्तक्रं द्विभागेन जलं क्षिपेत् ॥ ४५ ॥
पञ्चकोलश्च धान्यं च पिष्ट्वा चैतच्च तण्डुलान् ।
संसिद्धा शिथिला किञ्चित्सा यवागूः प्रकीर्तिता ॥ ४६ ॥
यवागूर्ज्वरतृष्णातिसारघ्नी वस्तिशोधनी ।
मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके ॥ ४७ ॥

---

१ "ग्राहिणी" इति वा पाठः ।

ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूरहिताज्वरे ।
तत्र तर्पणमेवाग्रे प्रदेयं लाजसक्तुभिः ॥ ४८ ॥

छः गुणा जल में यवागू सिद्ध होता है जिसमें थोड़ा ही द्रव होता है इस ग्रन्थकार ने एक भाग तक्र दो भाग जल तथा पिपली, पिपलीमूल चव्य चित्रक सुण्ड इनकी मात्रा ४ मासे तथा धनिया इनको मिला कर पीस कर चावलों को मिलाकर थोड़ा शिथिल (ढीला) सिद्ध किया हुआ यवागू कहा है, परंच चरकादि महर्षियों ने यवागू तीन प्रकार का वर्णन किया है; जैसे "यवागूस्त्रिविधा प्रोक्ता मण्ड पेया विलेपीति" इति अर्थात् यवागू तीन प्रकार का को होता है। मण्ड, पेया और विलेपी यवागू ज्वर को प्यास को अतिसार को नष्ट करता है तथा वस्ति का शोधन करता है।

मदात्यय रोग में जो पुरुष नित्य मद्यपान करता हो ग्रीष्म ऋतु में, पित्त कफ की अधिकता में ऊर्ध्वगत रक्त पित्त में यवागू हित नहीं होती। वहां लाजा और सत्तुओं से तर्पण देना हित होता है॥

यूषमाह—

अष्टादश गुणे तोये शृतो यूषश्च शिम्बिजैः ।
दोषदूष्यादि बलतो ज्वरघ्नै क्वाथ साधितः ॥ ४९ ॥
मुद्गाद्यैर्लघवो यूषाः सर्वज्वरहरा मताः ।
यूषो लावणिकः सर्वः साधितो लवणोदकैः ॥ ५० ॥
अम्लेह लवणो यूष उदकमित्यभिधीयते ।
यूषस्तनुरसः स्वल्पमात्रः स्याज्ज्वरनाशनः ॥ ५१ ॥
यूषानामुत्तमो मौद्गो यूषो हृद्योऽग्निदीपनः ।
शीतलो मधुरः पथ्यो बलासेऽपि कृतो हितः ॥ ५२ ॥

अठारह गुणा जल में क्वाथ किया हुआ शिंबिधान्य से दोष और दूष्य आदि (अर्थात् रस रक्तादि के बल को देख ज्वर के हरने वाली औषधियों से सिद्ध किया मूंगी आदि करके हलका यूष सब ज्वरों को हरने वाला कहा है॥ लवण मिश्रित जल से साधित यूष सभी लावणिक होते हैं। बिना घृतादि के लवण युक्त यूष उदक (जल) कहाता है। यूष का पतला रस तथा अल्प मात्रा युक्त देने से वह ज्वरनाशक होता है। यूषों में से उत्तम मूंगी

का यूष हृदय को हितकारक तथा अग्नि को बढ़ाने वाला होता है। और ठण्डा, मीठा पथ्य तथा बनाया हुआ यूष कफ व्याधियों में भी हित है॥ ४६—५२॥

तृड्दाहज्वरसंशुद्धव्रणजत्रूर्ध्वरोगिणां।
लंघिताय हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता॥ ५३॥
पञ्चकोलक संसिद्धा यवागूर्मध्यलंघिते।
तच्चाति लंघितं दृष्ट्वा तस्य सन्तर्पणं हितम्॥ ५४॥

तृष्णादाह, ज्वरी को वा शुद्ध व्रणी को तथा ऊर्ध्व जत्रु वाले रोगी के लिये और लंघन दिया है जिस को ऐसे रोगियों को जैसा दोष हो उस के नाश करने वाली औषधियों से सिद्ध की हुई पेया हित होती है। पिपली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक, सुण्ड आदि से सिद्ध की हुई यवागू मध्य लंघित के लिए हित होती है। यदि रोगी अधिक लंघन लेने से क्षीण हो तो उसे तर्पण करना हित होता है॥ ५३—५४॥

आजं दुग्धं गुड़ोपेतं पानायज्वरशान्तये।
पथ्यं देयं, कवोष्णानि न देयानि मृषाग्नये॥ ५५॥
अरुचौयत्कृतं पथ्यं तत्पथ्यं ज्वरकृद्भवेत्।

बकरी का दुग्ध गुड़ मिला कर ज्वर की शान्ति के लिये पीने को दें। थोड़ा सा गरम देना चाहिये; परञ्च मन्दाग्नि में न देना, क्योंकि अरुचि में जो पथ्य किया जाता है वह पथ्य ज्वर करने वाला होता है॥ ५५॥

सज्वरं ज्वरमुक्तं वा मानवं निरुपद्रवं॥ ५६॥
देशकालोचितं पथ्यं दिनान्ते भोजयेल्लघु।

ज्वर वाले पुरुष को अथवा ज्वर हट गया हो जिस का और उपद्रव कोई न हो ऐसे पुरुष को देश तथा काल के अनुकूल दिन के अन्त में लघु भोजन देना चाहिये॥ ५६॥

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते॥ ५७॥
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि।

बिना औषधि के पथ्य से ही व्याधि शान्त हो जाती है परञ्च पथ्य के बिना सैकड़ों औषधि सेवन से भी व्याधि शान्त नहीं होती॥५७॥

अन्नकाले हितं चास्मै प्रदेयं दन्तधावनम् ॥ ५८ ॥
योऽस्य वक्त्ररसस्तस्माद्विपरीतं प्रयोजयेत् ।

भोजन के समय इस ज्वरमुक्त पुरुष को उपयुक्त दातुन करने के लिये दे जो इस के मुख का रस हो उस से विपरीत रस वाली दातुन देना चाहिये ॥ ५८ ॥

ज्वरे प्रमोहो भवति स्वल्पैरप्यथ चेष्टितैः ॥ ५९ ॥
निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ।

ज्वर में थोड़ी सी भी विरुद्ध चेष्टा करने से मोह हो जाता है इसलिये उसे ऐसे भोजन कराये और मूत्र तथा मल का त्याग कराये जिस में उसे कुछ आयास न करना पड़े ॥ ५९ ॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ६० ॥
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽपि वा ।

ज्वरी को यदि अरुचि भी हो तब भी हित भोजन कराना चाहिये क्योंकि भोजन के समय प्राप्त होने पर न खाने से क्षीण होगा या मर जायगा ॥ ६० ॥

उदीर्ण दोषः स्वल्पाग्निरश्नन गुरुविशेषतः ॥ ६१ ॥
मुच्यते सहसा प्राणैश्चिरं क्लिश्यति वा नरः ।

जिस पुरुष के दोष बढ़े हों और मन्दाग्नि हो यदि वह गुरु भोजन कर ले तो वह सहसा प्राणों से छूट जाता है वा चिरकाल तक दुःख उठाता है ॥ ६१ ॥

शस्तं सुलंघितस्यादौ विधाय कवलग्रहम् ॥ ६२ ॥
लाजसक्तुक पथ्यं स्यात्सैन्धवेन समायुतं ।
तच्चजीर्यत्यविघ्नेन ज्वरे जीवेत्तदाध्रुवम् ॥ ६३ ॥

भली प्रकार लंघन हो जाने पर रोगी को कवलग्रह (अर्थात् मुख में त्रिकटु आदि औषधियों का कल्क धारण करे, वह चार प्रकार का होता है यथा चोक्तं—"स्नेही प्रसादी शोधी रोपणश्चेति" अर्थात् वातहर स्निग्ध उष्ण द्रव्यों से स्नेही, प्रसादी तथा ठण्डे द्रव्यों से पित्तनाशक, शोधी कफ में, कटु अम्ल लवण तथा रूक्ष उष्ण द्रव्यों से; रोपण व्रण में कषाय तिक्त मधुर तथा कटु उष्ण द्रव्यों से । इस कवल ग्रह का गुण जैसे—"कवलः कुरुते काङ्क्षां

भक्ष्येषु हरते कफम् । तृषां तोषञ्च वैरस्यं दन्तचालञ्च नाशयेत्" इति ॥ अर्थात् कवलग्रह रुचि को करता है भोजन में कफ को हरता है प्यास को, मुख की विरसता को, तथा दान्तों के हिलने को, दूर करता है) कराकर लाजा और सत्तू लवण मिला कर देने से पथ्य होते हैं और वह बिना किसी विघ्न के शीघ्र जीर्ण हो जाते हैं और रोगी ज्वर में निश्चय से जीता रहता है ॥ ६२—६३ ॥

सिद्धं दशगुणे तोये तण्डुलेभ्यः परिस्रुतं ।
भुक्तमन्नं क्रूर बन्धोः स्वादु दीपन मोदनम् ॥ ६४ ॥
लाजौदनो लघुः शीतः कफघ्नो दीपनः परं ।
निद्रारुचिकरो वृष्यो मधुरः पित्तनाशनः ॥ ६५ ॥

दशगुणा जल में सिद्ध किये हुए चावलों का पानी छान देने से वह अन्न क्रूर कोष्ठ वालों के लिये स्वादु तथा दीपन होता है। लाजा के चावल बने हुए हल के शीतल विशेष कफनाशक तथा निद्रा, रुचि के करने वाले बल बढ़ाने वाले और पित्तनाशक होते हैं॥६४—६५॥

सूपविधिमाह—

शिम्बिजैर्निस्तुषैरीषद्भृष्टैःसुपचसूपकं[1]ः ।
सूपं युक्तं त्रिदोषघ्नं व्यंजनं चैवसर्पिषा ॥ ६६ ॥
धातुवृद्धिकरं श्रेष्ठं वृहणं बलवर्द्धनम् ।
अप्रस्रुतरसोग्राही मधुरस्तर्पणोगुरुः ॥ ६७ ॥
क्षयरोगहरो वृष्यो वातश्लेश्मविनाशनः ।

शिंबि धान्य (अर्थात् मूंगी माषादिओं) का छिलका उतार कर भली प्रकार पकाने से प्रयोग किया हुआ त्रिदोष नाशक होता है यह दाल घृतयुक्त धातुवृद्धि करने में श्रेष्ठ रक्तादिकों के बढ़ाने वाली और बल बढ़ाने वाली होती है वह दाल यदि रसहीन पकी हुई हो तो ग्राही तृप्तिकारक तथा भारी होती है क्षयरोग को हरने वाली वृष्य, वात श्लेष्म के विकारों को नाश करने वाली होती है ॥

सक्तूनाह—

चूर्णं यवानां भृष्टानां निस्तुषाणां च सक्तवः ॥ ६८ ॥
सक्तवो भेदनारुक्षा वातलाबल्य तर्पणा[3]ः ॥

१ पञ्चक कथ्यते इति वा २ वर्जितं इति वा ३ वर्द्धनाः इति वा

छिलके रहित यवों को भून कर चूर्ण करने से सत्तु बनाये जाते हैं। ये सत्तु भेदन रूक्ष वात के करने वाले बल कारक तथा तृप्ति कारक होते हैं ॥ ६८ ॥

लाजामाह—

भृष्ट शाल्यादिना लाजा धानाभृष्ट यवोद्भवा ॥ ६९ ॥

लाजा कषाय मधुरादीपना लघवो हिताः।

मेदो मेहकफश्वासछर्द्य तिसार नाशनाः ॥ ७० ॥

चावलों को भूनने से लाजा बनती है तथा भूने हुए जौं से धान होते हैं लाजा कसैली मीठी दीपनी हलकी और हित होती हैं। मेदा को प्रमेह रोग को, कफ को, श्वास रोग को, छर्दि तथा अतिसार को नाश करती है ॥ ६९—७० ॥

अंगार मण्डको हृद्यो दीपनो रुचिकारकः।

त्रिदोषघ्नोलघुर्ग्राही ज्वरिणां शस्यते परम् ॥ ७१ ॥

अंगार मण्ड, (अर्थात् कोयलों पर बनाया हुआ मण्ड) हृदय को हितकारक अग्नि बढ़ाने वाला रुचिकारक तीनों दोषों का नाशक हलका ग्राही ज्वर वाले के लिये अत्यन्त हितकारक होता है ॥७१॥

शाकानि यथा—

पटोलोवास्तुको मेथी बिम्बी चशतपुष्पकः।

तण्डुलीयः कर्कटं च शाकार्थं बालमूलकम् ॥ ७२ ॥

कर्कोटं कारवेल्लं च वार्ताकं निम्बपल्लवाः।

पिल्लकं चिल्लका पोई वास्तुकं च पुनर्नवाः ॥ ७३ ॥

कुसुमानि कठिल्लं च शाकार्थ ज्वरिणां हितम्।

परवल, वाथु, मेथी, कन्दुरी, और सोंये, चौलाई, कर्कट, कच्ची मूली, ककोड़ा, करेला, और बैंगन, नींम के पत्ते, पिल्लक, चिल्लक, पोई, वाथू, और इरसिट, फूल, करेला आदि शाक के लिये ज्वरियों को हित होते हैं ॥ ७२—७३ ॥

अथ मांसानि—

लावैः कपिञ्जलैरेणैर्वृषभैः शरभैः शशैः ॥ ७४ ॥

कालपुच्छैः कुरंगैश्चमृगमातृभिरेवच।

१ प्रशस्तैरितिवापाठः। २ मातृभिरितिवापाठः।

अत्यन्त लघुभिर्मांसै जाँगलैश्च हितारसाः ॥ ७५ ॥
पिशितेनसुपिष्टेन कृतो मांसरसो रसः ।
हृद्यो मांसरसो वृष्यः प्राणिनां प्राणवर्द्धनः ॥ ७६ ॥

बटेर, कबूतर, हरिण, बैल, शरभ पशु विशेष, सेहा, काला-चिड़ा, मृगभेद, आदि जीवों के अत्यन्त हलके मांस के और जांगल जीवों के मांसों के रस हित हैं । भली प्रकार पीसे हुए मांस से बनाया हुआ रस मांसरस कहा है वह मांसरस हृद्य होता है बल बढ़ाने वाला मनुष्यों के प्राणों को बढ़ाने वाला है ॥ ७३—७६ ॥

वातजे[1] स्वरहीनानां ज्वरक्षीण क्षतोरसां ।
भग्नविश्लिष्ट सन्धीनां दृष्ट्यायु श्रवणार्थिनाम् ॥ ७७ ॥
आप्यायनः सन्नहनः शुक्रोजोबलबर्द्धनः ।

वात से पैदा हुए स्वरभेद वालों को, ज्वर से क्षीण को, उरः क्षत वाले को, टूट गई है सन्धि जिनकी तथा सन्धि विश्लेष हो गई है जिन की दृष्टि तथा आयु बढ़ाने वाले, कर्ण रोगियों के लिये, वृद्धि करने वाला टूटे हुए को जोड़ने वाला शुक्र तथा ओज और बल को बढ़ाने वाला मांस होता है ॥ ७७ ॥

निषेधमाह—

कुक्कुरांश्च मयूरांश्च तित्तिरि क्रौञ्च वर्तकान् ॥ ७८ ॥
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरेकेचिच्चिकित्सकाः ।

मुर्गा और मोर, तित्तर, क्रौञ्च, बत्तक इन जीवों का मांस गुरु होने से कई वैद्य ज्वर में देना योग्य नहीं कहते ॥ ७८ ॥

लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ॥ ७९ ॥
भिषङ्मांस विकल्पार्थी दद्यात्तदपिकालवित् ।
अनम्लतक्र सिद्धानि रुच्यानि व्यंजनानि च ॥८०॥
कषाय पाने पथ्याद्यैर्दशाह मतिलंघिते ।
सर्पिर्देयं कफेमन्दे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ ८१ ॥

---

१ स्मृतेजे इतिपाठः ।

† वातपित्तश्रमश्वासकासक्षयानिवर्हणः । प्रशस्तो क्षययुक्तानां शुद्धानां शुद्धि काङ्क्षिणां इत्यधिकं, ख-पुस्तके ।

लंघन से यदि वायु का बल अधिक हो जाय तो मांस का प्रयोग कालादि के जानने वाला वैद्य करे।

और बिना अम्ल के तक्र से सिद्ध किये हुए व्यंजन जो रुचि कारक हों उनका प्रयोग करे। अति लंघन किये हुए पुरुष को दशम दिन में कषाय पान में पथ्यादि करके कफ के क्षीण होने पर वात पित्त ज्वर में घृत का प्रयोग करे ॥ ७६—८१ ॥

जीर्णाहारस्य लक्षणमाह—

उद्गार शुद्धिरुत्साहोवेगोत्सर्गो यथोचितः ।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ८२ ॥

डकार का साफ आना इन्द्रियों में उत्साह, मल के वेग का यथोचित त्याग, देह का हलकापन, भूख और प्यास का लगना यह आहार के भली प्रकार पकने के लक्षण होते हैं ॥ ८२ ॥

उष्णाम्बु चानुपानार्थं तृषिताय प्रदापयेत् ।
मद्यं च मद्यसात्म्याय साहाराय यथा बलम् ॥ ८३ ॥
मद्यं पुराणं मन्दाग्नेर्यवान्नोपहितं हितं ।
वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वादुसशर्करम् ॥ ८४ ॥
व्योष क्षार युतं तक्रं कफारोचक पीडितं ।

तृषित पुरुष के पीने के लिये गरम जल दे। जिस को मद्य हित हो उस के बल को देख कर अन्न के साथ मद्य दे।

मन्दाग्नि में जौं आदि से युक्त पुरानी मद्य देना हित होता है वायु में अम्ल तक्र लवण युक्त दें तथा पित्त में मिट्ठा तक्र चीनी मिला कर और कफ तथा अरुचि से पीड़ित ज्वरी को मर्घां मिरचा सुण्ड और यवक्षार मिला कर तक्र देना हित होता है ॥ ८४ ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाच्च पथ्यं द्वेषत्वमागतं ॥ ८५ ॥
कल्पना विधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेद्बुधः ।

निरन्तर एक रस के युक्त पथ्य सेवन करने से, स्वाद के न होने से पथ्य में यदि द्वेष हो जाये तो नाना प्रकार की कल्पना से (अर्थात् भिन्न २ प्रकार के रसों युक्त आहार बना कर) उसे दे जिस से उसे अच्छे लगने लगे ॥ ८५ ॥

दोषधातु मल क्षीणो बलक्षीणो पिवानरः ॥ ८६ ॥

स्वयोनि वर्द्धनो भोक्तुमन्नपानं प्रकाङ्क्षति ।
यद्यदाहारजातं हि क्षीणः प्रार्थयते नरः ॥ ८७ ॥
तस्मै तत्तत्प्रदातव्यं तं तं क्षयमपोहति ।

दोष वात, पित्त, कफ धातु रस रक्त मांसादि, मल (अर्थात् मल मूत्र, स्वेदादि) जिस पुरुष के क्षीण हों अथवा बल क्षीण जो पुरुष हो उसे उसी दोष, धातु या मल के बढ़ाने वाले पदार्थों (अर्थात् अन्नपानादि) के खाने की इच्छा होती है । इसलिये जिस २ आहार की इच्छा क्षीण पुरुष करता है उसी २ आहार के प्रयोग करने से उस २ क्षय का नाश होता है (अर्थात् यदि वात क्षीण पुरुष हो तो वह वात के पैदा करने वाले पदार्थों की इच्छा करता है उसके लिये वात वृद्ध करने वाले द्रव्य देने से उस का क्षय नाश हो जाता है। लिखा भी है यथा—वृद्धिः समानैः सर्वेषां" अर्थात् समान द्रव्यों के उपयोग से सब दोषादियों की वृद्धि होती है) ॥ ८६—८७ ॥

कुक्षौद्वौभोजने नांशौ पाने नैकं प्रपूरयेत् ॥ ८८ ॥
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थ मवशेषयेत् ।

अन्न खाने वाला व्यक्ति अन्न से कुक्षी के दो भाग भर ले तथा एक भाग जल से भरे और चौथा भाग वायु आदियों के रहने के लिये छोड़ दे ॥ ८८ ॥

भोजनान्ते पठनीयाः मन्त्राः ।

दुष्ट दृष्टि विनाशोस्तु पुष्टिरस्तु कलेवरे ॥ ८९ ॥
भुक्तं ते जीर्यतामंगे चिरञ्जीव निरामयः ।
लवणे दह्यमाने तु दह्यतां तवशत्रवः ॥ ९० ॥
अनेन लवणं कृत्वा पथ्यंऽग्नौ तुविनिक्षिपेत् ।
या दृष्टिः सर्वभूतेषु दृष्टियाच स्वभावतः ॥ ९१ ॥
दृष्टि दोष विनाशार्थं संस्मरेन्नारदं मुनिम् ।

§ मातृपितृ सुहृद्वैद्यपाक कृतहंसवर्हिणां । सारसरूप चकोरस्य भोजने दृष्टि रुत्तमा । इत्यधिकं ।

अगस्तं कुम्भकर्णं च समुद्रं वड़वानलम् ॥ ६२ ॥
आहार परिणामार्थं स्मरेद्भीमं च पञ्चमम् ।

उक्त मन्त्रों को स्मरण करके लवण युक्त पथ्य को भोजन से पूर्व अग्नि में फेंक दे इस से खाया हुआ अन्न विकारी नहीं होता। 'या-दृष्टि' इत्यादि मन्त्र स्मरण कर भोजन करने से खाने वाले को दृष्टि दोष नहीं होता ॥ ८६—६१ ॥

इति श्री कायस्थ चण्ड कृते औषधादि पारेक्रमो नाम
तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ साधारणं वच्मि सर्वज्वरचिकित्सितं ।
नहि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विना कृतः ॥ १ ॥
चिकित्सेच्च ज्वरान्सर्वान्निमितानां[1] विपर्ययैः ।
इत्याद्युक्तप्रकारेण कृते शाम्येज्ज्वरो न चेत् ॥ २ ॥
पाचनैः शमनैः क्वाथैर्दोष शेषन्तु निर्हरेत् ।
पाक्यं शीत कषायं वा मुस्तापर्पटकं पिबेत् ॥ ३ ॥

लंघनादि चिकित्सा के अनन्तर सब ज्वरों की चिकित्सा कहते हैं मारुतादि दोषों के बिना ज्वर कभी बाधा नहीं करता। कारणों के विरुद्ध अर्थात् जिस कारण से जो ज्वर उत्पन्न होता है उन के विपरीत सर्व ज्वरों की चिकित्सा करनी चाहिये । उक्त प्रकार से अर्थात् लंघनादि की चिकित्सा करने पर यदि ज्वर शान्त न हो तो पाचन करने वाले तथा शमन करने वाले कषायों से शेष दोषों को निकाले ॥ १—३ ॥

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम् ।
किराततिक्तमुस्तं वा गुडूची विश्वभेषजम् ॥ ४ ॥
सपर्प्पटं किरातं वा पाठोशीरं सबालकम् ।
पिबेत्तद्वच्च भूनिम्बं गुडूची मुस्तनागरम् ॥ ५ ॥
नागरं देवकाष्ठं च बृहत्या धान्यमेव च ।

---

१ चाशनिमितिवापाठः ।

शुण्ठी मुस्तकभूनिम्ब गुडूचीभिः शृतं जलं ॥ ६ ॥
सर्वज्वरहरं पेयमाम दोषस्य पाचनम् ।
आमोप बृंहितान्दोषान्स्वस्थानाद्विषमापगान् ॥ ७ ॥
पाचयेदग्निवृद्धिश्च कुर्याद्दीपनपाचनं ॥
यथायोगामिमे योज्या विभज्य भिषजां वरैः ॥ ८ ॥

सुण्ड के साथ पितपापड़ा वा धमासा के काथ को पीवे। चिरायता, कुटकी, मोथा वा गिलोय, सुण्ड, अथवा पित्तपापड़ा के साथ गिलोय वा पाठा, खस, नेत्रबाला के साथ पीवे। वैसे ही चिरायता, गिलोय, नागरमोथा, सुण्ड के काथ को पीवे सुण्ड, देवदारु और कण्टकारी, धनिया का काथ जैसे युक्त हो वैसे भेद कर के श्रेष्ठ वैद्य प्रयोग करे।

अर्थात् सुण्ड, मोथा, चिरायता, गिलोय, इन से किया कषाय सब ज्वरों को हरने वाला और आमदोष के पकाने वाला होता है। आम से बलवान दोषों को जो अपने स्थान से अन्यत्र आये हुए हों उन्हें पाचन करने के लिये पाचन और दीपन करे॥ ४—८॥

ज्वरघ्ना दीपनाश्चैते कषाया दोषपाचनाः ।
तृष्णारुचि प्रशमना मुखवैरस्य नाशनाः ९ ॥

यह उक्त औषधियों के काथ ज्वरनाशक दीपन और दोष पाचन हैं प्यास, अरुचि, के शान्त करने वाले तथा मुख की विरसता के नाशक हैं॥ ९॥

एरण्डमूल धान्याक शुण्ठीभिः साधितं जलं ।
वस्तिसंशोधनं पेयं शूलामाजीर्णनाशनम् ॥ १० ॥

अर्थात् एरण्ड की जड़, धनिया, सुण्ड इनसे सिद्ध किया हुआ काढ़ा वस्ति को शोधन करने वाला तथा शूल को आमाजीर्ण को नाश करता है॥ १०॥

शुण्ठी धान्य गुडूचीनां काथः सर्वज्वरापहः ।
गुडूची निम्बधान्याक चन्दनं पद्मकान्वितम् ॥ ११ ॥
तृष्णादाहरुचिछर्दि सर्वज्वरहरोगणः ।
तिक्तानन्ताम्बु विश्वाब्दैः काथो वा चूर्णमुस्तकैः ॥ १२ ॥

ज्वरतृड्भ्रमसंमोहधूमकाम्लकनाशनः ।
आमलक्यभया कृष्णा क्काथो वृषः सचित्रकः ॥ १३ ॥
सर्वज्वर कफातंकभेदी दीपन पाचनः ।

सुण्ड, धनियां, गिलोय, इनका क्काथ सब ज्वरों का नाश करता है। गिलोय निम्बपत्र, धनिया, लाल चन्दन, पद्मकाष्ठ युक्त किया क्काथ तृष्णा, दाह, अरुचि कै का आना तथा सब ज्वरों के हरने वाला है। कुटकी सारिवा, नेत्रबाला सुण्ड, और मोथा वा मोथे का चूर्ण डालकर इनका क्काथ ज्वर, श्वास, भ्रम मूर्च्छा धूम का कण्ठ से निकलना तथा खट्टे डकार इन को दूर करता है। आमला, हरड़, मघ वांसा, चित्रा सहित किया हुआ क्काथ सब ज्वरों को, कफ को नाश करने वाला भेदक, दीपन और पाचन होता है ॥ ११—१३ ॥

पञ्चभद्रमाह—

विबद्धमप्यबद्धं वा पिण्डीभूतं मलादिकं ॥ १४ ॥
विभिद्य पातयति यद्भेदनं तदुदाहृतम् ।

अर्थात् बधे हुए अथवा न बन्धे हुए पिण्डी भूत अर्थात् कठिन मलादियों को जो तोड़ कर निकाले उसे भेदन कहते हैं ॥ १४ ॥

सजीरं सैन्धवोपेतं चूर्णं वाप्युष्णवारिभिः ॥ १५ ॥
चक्षुष्यं दीपनं वृष्यं कफारोचकनाशनम् ।
लवंगं मरिचं कृष्णानागरं सकिरातकम् ॥ १६ ॥
पञ्चभद्रमिदं चूर्णं सर्वज्वरविनाशनं ।
मुस्तग्रन्थ्यौषधच्छिन्ना किरातैः पञ्चतिक्तकैः ॥ १७ ॥
क्काथो हन्ति श्वासकासौ पुंसामष्टविधं ज्वरं ।
किराताम्बु विषाश्रृंगी क्काथो ह्यष्टावशेषकः ॥ १८ ॥
सस्वेदं सन्निपातं तु नाशयेन्नात्र संशयः ।

जीरक सहित सेन्धा लवण मिला कर गरम जल से चूर्ण पीया हुआ नेत्रों के लिये हित होता है दीपन, बलकारक, कफ और अरुचि नाशक होता है। लौंग, मिरच, मघ, सुण्ड, और चिरायता इन द्रव्यों का चूर्ण पञ्चभद्र कहाता है यह सब ज्वरों का नाशक है। नागरमोथा, पिपलामूल, सुण्ड, गिलोय, चिरायता और पञ्च-

तिक्त अर्थात् कण्टकारी, गिलोय, सुण्ड, चिरायता, कुटकी अथवा नींम की जड़ की छाल, परवल के पत्ते, वासा की जड़ की छाल कण्डकारी, गिलोय, यह दो प्रकार का पञ्चतिक्त कहाता है यथायोग्य समय पर क्वाथ कर के पीने से श्वास कास और आठ प्रकार के ज्वरों को नाश करता है।

चिरायता, नेत्रबाला, अतीस, काकड़ासिंगी इन का क्वाथ अष्ट भाग रक्खा हुआ स्वेदयुक्त अर्थात् जिस सन्निपात में पसीना आता हो उस को दूर करता है इस में सन्देह नहीं है ॥ १४—१७ ॥

सप्तामृतमाह—

छिन्नौषधाब्दकं तिक्तं धन्वयासं रास्नावृषः[1] ॥ १९ ॥
एषसप्तामृतो नाम क्वाथो दोषत्रयापहः ।
सर्वज्वरहरं वक्ष्ये कषायममृतोपमम् ॥ २० ॥

गिलोय, सुण्ड, मोथा, कुटकी, धमासा, रास्ना, वांसा यह सप्तामृत नामक क्वाथ तीनों दोषों को हरने वाला है।

सब ज्वरों को नाश करने वाले अमृत के तुल्य कषायों को कहते हैं ॥ १८—१९ ॥

त्रिकर्षं पञ्चकर्षं वा सप्तकर्षमथापि वा ।
एषा संशमनार्थन्तु देयं स्यान्नवकार्षिकम् ॥ २१ ॥
त्रिकर्षं तु पटोलं च मधूकं भद्ररोहिणी ।
एतदेव समुस्तं च सारस्य पञ्चकार्षिकम् ॥ २२ ॥
सनिम्बपत्रं सोशीरं विज्ञेयं सप्तकार्षिकम् ।
त्वक्पत्रं सप्तपर्णस्य फलमारग्वधादि च ॥ २३ ॥
सन्निपात प्रशमनं विज्ञेयं नवकार्षिकम् ।
एतदेव कषायन्तु सर्पिषा सह संयुतम् ॥ २४ ॥
वातपित्तसमुत्थानां ज्वराणाममृतोपमम् ।
सुखोष्णं लवणं दद्याद्वातश्लेष्मोद्भवेज्वरे ॥ २५ ॥

तीन तोले अथवा पांच तोले वा सात तोले अथवा नौ तोले द्रव्यों का क्वाथ दोषों के शमन के लिये दे।

---

१ रजोवृषैः इति वा पाठः ।

तीन तोले परवल और महुआ, कुटकी इन द्रव्यों का काढ़ा यही काढ़ा नागरमोथा तथा विजयसार को मिला कर पांच तोले अर्थात् एक २ तोला प्रत्येक द्रव्य का क्वाथ करके प्रयोग करे निम्ब के पत्ते, खस उपरोक्त कषाय में मिला दिया जाये तो सात तोले का काढ़ा होता है। सप्तपर्ण की छाल तथा पत्ते तथा फल और अमलतासादि गण अर्थात् अमलतास, पिपलामूल, कुटकी, मोथा, और हरड़ इन को तोला २ लेकर काथ करने से नव तोला कषाय होता है यह सन्निपात को शान्त करने वाला कहा है। यही कषाय घृत के साथ दिया हुआ पित्त से उत्पन्न ज्वरों को अमृत तुल्य है गरम काढ़े में लवण मिला कर देने से वातश्लेष्म से उत्पन्न ज्वर को हरता है ॥ २०—२५ ॥

शर्करा संयुतं चैव पित्तज्वरविनाशनं।
चौद्रेण सह संयुक्तं कफज्वर विनाशनम् ॥ २६ ॥
गोमूत्रेण[1] समायुक्तं सन्निपातज्वरापहं।
नवकार्षिकमित्येतद्ब्रह्मणा भाषितं स्वयम् ॥ २७ ॥

इस नवकार्षिक क्वाथ में खण्ड (चीनी) मिला कर पीने से यह पित्त ज्वर को नाश करता है। मधु के साथ दिया हुआ कफ ज्वर को नाश करता है। गोमूत्र के साथ दिया हुआ सन्निपात ज्वर को हरता है। यह नवकार्षिक काढ़ा ब्रह्मा ने आप ही कहा है॥२६-२७॥

एन्द्रीतिक्ता त्रिवृत्पथ्या कुवेरैलेयकोष्णकैः।
सामे ज्वरे त्रिदोषे च चूर्णं स्यादुदरार्तिजित् ॥ २८ ॥
कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह।
कासश्वास ज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २९ ॥

बड़ी इलायची, कुटकी, त्रिवी, हरड़, तुन वृक्ष की छाल, एलुआ मरिच इन का चूर्ण आम ज्वर में और त्रिदोष में देना हित है तथा पेट की दर्द को जीतता है। कायफल, पोहकरमूल, मघ, काकड़ासिंगी इनका चूर्ण शहद के साथ देने से खांसी, दमा और ज्वर के हरने के लिये और कफनाश करने के लिये उत्तम चटनी है २८-२९॥

कृष्णा मधु किरातानां कणामधुकसारयोः।
कणागोधूमचूर्णानां लेहोनस्याञ्जनं क्रमात् ॥ ३० ॥

---

१ गोमूत्र इति वा पाठः अजामूत्र इति केचिद् पठन्ति।

मघ, शहत चिरायता तथा मघ, मुलठी का सत्व और मघ गेहूं यह तीन योग क्रम से अर्थात् पहिले की चटनी, दूसरे की नसवार और तीसरे योग का अञ्जन ज्वर के लिये हित होता है॥३०

अथ पञ्चामृत यूषमाह—

कुलत्थमाषनिष्पावमुद्गाढक विपाचितः ।
यूषः सर्वज्वरहरो दीपनः पाचनो लघुः ॥ ३१ ॥
श्लेष्मा रुचितृषा हन्यादंगमर्दक्षयादि च ।
पच्यमाने निरामे वा भैषज्यं दापयेत् क्रमात् ॥ ३२ ॥
क्वचिदाम ज्वरे प्रोक्तं सरसं सिद्धि[1] सम्मतम् ।

कुलत्थी, मांह, मटर, मूंगी, अरहर, इनकी दाल पकाई हुई सब ज्वरों के हरने वाली दीपन, पाचन और हलकी होती है कफ को, अरुचि को, प्यास को, अंगों के टूटने को, क्षय को, नाश करता है। पकने वाले ज्वर में, कास रहित में क्रम से औषध-प्रयोग करना, कहीं आम ज्वर में रस युक्त औषध प्रयुक्त की हुई सिद्धि को देने वाली मानी है ॥ ३१–३२ ॥

नवज्वरे रसानाह ज्वरधूमकेतुः—

भवेत् समस्तं तु समुद्रफेनं हिंगूलगन्धं परिमर्दयामं ।
नवज्वरे वल्लयुगं त्रिघस्र मार्द्राम्बुनाऽयं ज्वरधूमकेतुः ३३॥

समुद्रझाग, शिंगरफ, गन्धक, यह तीनों सम भाग लेकर पीस लें। फिर नये ज्वर में २ रती की मात्रा अदरक के जल से दें तो ज्वर को हरता है ॥ ३३ ॥

पीयूषसुन्दरी—

सूतटंकण गन्धाश्म वेल्लजानां क्रमांशकाः ।
तत्तुल्यं सितया युक्तं सर्वं संचूर्णयेत्ततः ॥ ३४ ॥
ताम्राक्षमत्स्य पित्तेन भावयेच्च त्रिवारकं ।
पीयूषसुन्दरी नाम्ना गुटिका वल्लसम्मिता ॥ ३५ ॥
देयार्द्रक रसेनाथ नवज्वरविनाशिनी ।
पथ्यं दद्यात्तक्रभक्तं दिनान्ते ज्वरिते भिषक् ॥ ३६ ॥

---

१ सिन्धू समान्वितमिति वा पाठः ।

शीतोपचार वातादि विदध्यादौषधाकुले ।

पारा, सुहागा, गन्धक, मरिच इन चार द्रव्यों को अर्थात् एक भाग पारा दो भाग सुहागा, तीन भाग गन्धक चार भाग मरिच और सब के बराबर मिश्री लेकर सब को चूर्ण कर लें फिर लाल नेत्र वाली मछली के पित्ते की भावना तीन वार दें तो पीयूष सुन्दरी नामक गोली १ रत्ती मात्रा अदरक के साथ नवीन ज्वर को नाश करती है और इसके बाद दिन के बीतने पर मट्ठा और चावल खाने को दें तथा औषधी के खाने से यदि व्याकुलता प्रतीत हो तो उसे शीत चिकित्सा से और ठण्डी वायु आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४-३६ ॥

रसं गन्धं विषं ताम्रं जेपालं गुग्गुलुं तथा ।
गुटी वल्लमिता चौद्रयुता सर्वज्वरापहा ॥ ३७ ॥

पारा, गन्धक, मिट्ठा तेलिया, ताम्र भस्म, जमाल गोटे के बीज तथा गुगुलु यह सब शुद्ध लेकर गोली बनाकर १ रत्ती शहत के साथ देने से सब ज्वरों को हरती है ॥ ३७ ॥

इति श्री कायस्थ चण्ड कृते साधारण ज्वर
चिकित्सानाम चतुर्थोऽध्यायः

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ वातादि ज्वरत्रयस्य लक्षणं चिकित्सा च—

प्रावृषि पवनः कुर्याच्छरदि च पित्तं मधौ कफः कुपितः ।
ग्रीष्मे वर्षासु हिमे क्रमेण निचिता दोषा ज्वरं घोरं कुर्युः ॥ १ ॥

प्रावृट् ऋतु में (अर्थात् आषाढ़ श्रावण मास में) वायु कुपित होकर ज्वर कर देता है, शरद ऋतु में (अर्थात् कार्तिक तथा मार्गशीर्ष में) पित्त कुपित होकर ज्वर कारक होता है, वसन्त ऋतु में (फाल्गुण चैत्र मास में) कफ ज्वर को करता है, पहिले इन दोषों का संचय क्रम से अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में (ज्येष्ठ वैशाख में) वायु संचित होता है और प्रावृट् ऋतु में कुपित होता होता है । वर्षा में (भाद्रपद-आश्विन) पित्त संचित होता है और शरद ऋतु में कुपित होता है । हेमन्त ऋतु में (पौष माघ में) कफ संचित होकर कफ ज्वरों को वसन्त में करता है ।

तत्र वातज्वरमाह—

कटुतिक्तकषायैश्च रूक्षव्यायामजागरैः ।
वेगसन्धारणैः शोकचिन्ताद्यैः कुपितोऽनिलः ॥ २ ॥

कटु (मरिचादि) तिक्त (निम्बादि) कषाय (हरड़ादि) द्रव्यों के अत्यन्त सेवन करने से और रूक्ष (चने आदि) भोजन करने से कसरत के अधिक करने से, रात्रि के जागने से, मलमूत्रादि वेगों के रोकने से शोक तथा चिन्ता करने से कुपित हुआ वायु, ज्वर कर देता है ॥ २ ॥

जृम्भा कम्पो रोमहर्षो विड्रोधो विनिद्रता ।
रुक्छिरो हनुकर्णोरुहृच्छंखस्कन्धे वस्तिषु ॥ ३ ॥
वंक्षणे च रुजाध्मानं पिण्डिकोद्वेष्टनं श्रमः ।
सुप्तता पादयोः शुष्क कास[1]श्चैव दिनात्यये ॥ ४ ॥
रूक्षधूमारुणाभो विण् नखमूत्रमुखाक्षिता ।
जिह्वा धूम्रा खरा भिन्ना कषायं विरसं मुखम् ॥ ५ ॥
मुहुः शीतोष्णता स्पर्शे शब्दे वाचालतापि वा ।
सर्पवद्वक्रगा नाडी ज्ञेयं वातज्वरेङ्गितम् ॥ ६ ॥

उबासी, कांपना, रोमांच होना, मलका रुकना निद्रानाश, सिर, हनुसन्धि, कान, ऊरु, हृदय, शंख (कनपटी) मोढ़े और वस्ति (मूत्राशय) इनमें पीड़ा का होना, वंक्षण (चूतड़ तथा पट्टों की सन्धि में) पीड़ा तथा अफारा होना पिण्डलियों में लपेट ने सरीखी पीड़ा का होना, थकावट पैरों का सो जाना, दिन के बीतने पर सूखी खांसी का होना । मल, नाखून, मूत्र, मुख और नेत्रादि का रूखापन, धूयें की कान्ति तथा लालवर्ण हो जाना । जिह्वा धूयें के रंग जैसी खरदरी, फटी हुई और मुख-स्वाद कसैला तथा बकबका होना शरीर पर हाथ लगाने से कभी ठण्डा कभी गरम प्रतीत होना, बोलने में अधिकता होना, नाड़ी की गति सर्प की तरह टेढ़ी हो तो वात-ज्वर के लक्षण होते हैं ॥ ३—६ ॥

चिकित्सा वातज्वरे जलविधानमाह—

पानीयं पादहीनोष्णं पेयं साध्युषितं त्यजेत् ।

---

१ कासश्वासश्चवेदना इतिवापाठः ।

तदेव विषवज्ज्ञेयं शीतमुष्णीकृतं पुनः ॥ ७ ॥
सूर्याग्नितप्तलोष्टाश्म स्वर्णरूप्यायसादिकैः ।
उष्णी कृतं जलं पथ्यं दोषतृड्कासजिल्लघु ॥ ८ ॥

वात ज्वर में चौथा हिस्सा पानी के जल जाने पर पीना चाहिये. बासी जल को छोड़ दें। वही ठण्डा हुआ २ फिर गरम करके दिया हुआ विष तुल्य होता है। धूप से अग्नि से ढेला, पत्थर सोना, चान्दी, लोहा आदि को तपा कर तथा गरम करके दिया हुआ जल हितकर है और दोष के प्यास को तथा खांसी को जीतने वाला और हलका होता है ॥ ७—८ ॥

बलं यत्नेन संरक्ष्यं लंघनं षडहं मतम् ।
न लंघयेन्निरामं तु शुद्धं वातं तु रोगिणम् ॥ ९ ॥
युक्तं लंघितलिङ्गैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत् ।

ज्वरी के बल की यत्न से रक्षा करनी चाहिये इसे यदि आम हो तो छः दिन तक लंघन देना हित माना है। परञ्च आम रहित तथा शुद्ध वात से पीड़ित हो तो लंघन नहीं देना चाहिये। भली प्रकार लंघित के लक्षण हो तो उसे पेया देकर चिकित्सा करे ॥९॥

कुक्षिवस्ति शिरःशूले क्षुद्रा गोक्षुर साधिता ॥ १० ॥
पेया वातारुजार्तस्य सोष्णादेया भिषग्वरैः ।
पिप्पली पिप्पलीमूलयवानी चव्यसाधितम् ॥ ११ ॥
पाययेत्तं यवागूं वा मारुताद्यनुलोमनीम् ।

यदि कुक्षि में, मूत्राशय में तथा सिर में पीड़ा हो तो छोटी कटेली, भंखड़ा इनसे सिद्ध की हुई पेया वात तथा पीड़ा से पीडित रोगी के लिये श्रेष्ठ वैद्य पेया को दें। मघ, पिपलामूल अजवायन, चाभ इनसे सिद्ध की हुई यवागू ज्वरी को दें अथवा जो वायु को अनुलोम करने वाली हो वह पेया देनी चाहिये ॥१०—११॥

चविका पिप्पलीमूलद्राक्षामलक नागरैः ॥ १२ ॥
कोष्ठे विबन्धे मारुते पेया तु परिवर्तनी ।
मसूरमुद्गगोधूम कुलत्थलवणैः कृतः ॥ १३ ॥
यूषो वातज्वरं हन्ति मुद्गामलकयोश्च वा ।

---

१ सरुजे इतिवापाठः । २ परिकर्त्तने इतिवापाठ ।

चाभ, पिपलीमूल, मुनका, आंमला, सुण्ड इन औषधियों का यवागू बनाकर देने से कोष्ठ (यथाचोक्तम् स्थानान्यामाग्नि पक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च हृदुण्डुक फुप्फुसश्च कोष्ठमित्यभिधीयते । इति । अर्थात् आमाशय, अग्नि का स्थान, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय (यकृत् अथच "उरसि रक्ताशय" इति वचनात् । हृदय, उण्डुक "पुरीषपोटलिका इति लोके" अर्थात् जिस स्थान में मल रहता है । यदाह सुश्रुत: "उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला" इति अर्थात् उण्डुक में स्थित होकर मलधरा कला मलका विभाग करती है । तथा फुप्फुस (फेफड़ा) इन सब स्थानों की कोष्ठ संज्ञा होती है । उस कोष्ठ में यदि वायु रुक गया हो तो चविकादि औषधियों के प्रयोग से वायु सीधे रास्ते चलती है ।

मसुर, मूंगी, गेहूं, कुलत्थी, लवण इनसे सिद्ध किया हुआ यूष वात ज्वर को हर देता है अथवा मूंग और आंमला का यूष भी वात नाशक होता है ॥ १२-१३ ॥

अथ पाचन—

शुण्ठ्या चोग्रा यवान्यश्च बृहद्वापञ्चमूलकम् ॥ १४ ॥
छिन्ना ग्रन्थ्यौषधं वापि पाचनं वातिके ज्वरे ।
आग्नेय गुणभूयस्त्वादामादीन्यद्विपाचयेत् ।
पाचनं तदिति प्रोक्तं यथा च मेष शृंगिका ॥ १५ ॥

सुण्ड, धनिया, अजवायन अथवा बृहत् पञ्चमूल अर्थात् बिल्व की छाल, अरणी की छाल, टेंटू की छाल, खम्भारी, पाढल की छाल इनका क्वाथ अथवा गिलोय, पिपलामूल सुण्ड इन द्रव्यों का क्वाथ बात ज्वर में पाचन होता है ॥ १४ ॥

अर्थात् गुणाधिक्य होने से जो औषधि आमादि दोषों को पकाये उसे पाचन कहते हैं जैसे मेढ़ासिंही ॥ १५ ॥

छिन्नौषधाब्ददुःस्पर्शैः क्वाथो वातज्वरं जयेत् ।
[1]किरातक्वामृतौदीच्य बृहतीद्वय गोक्षुरैः ।
सस्थिरा कलशी विश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ १६ ॥

गिलोय, सुण्ड, मोथा, धमासा, इन का क्वाथ बात ज्वर को जीतता है चिरायता, गिलोय, नेत्रबाला, दोनों कटेली, भखड़ा,

---

१ शुण्ठ्यब्दोग्रा इतिवापाठः ।

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, सुरण्ड इनका काढ़ा वात ज्वर को हरता है ॥१६॥

पञ्चमूली बला रास्ना कुलत्थैश्च सपौष्करैः ।
पर्वभेदशिरः कम्पयुतं हन्यान्मरुज्ज्वरम् ॥ १७ ॥
गुडूची सारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा ।
कषायः सगुडः सद्यो वातज्वरविनाशकृत् ॥ १८ ॥
दर्भा बला गोक्षुरकं पचेत्पादावशेषितम् ।
शर्करा घृत संयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ १९ ॥
शतावरी छिन्नरुहा स्वरसो गुडसंयुतः ।
वातज्वरं हरेत्तूर्णं केवलं वाऽमृता रसः ॥ २० ॥
कनीयः पञ्चमूलोत्थो यद्वा यासाऽमृतोद्भवः ।

पञ्चमूल अर्थात् शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली, भखड़ा, बला (खरेंटी) रायसन, कुलत्थी, पोहकरमूल इनका काढ़ा पर्वों के टूटने को, शिर कम्प युक्त वात ज्वर को हरता है ॥ १७ ॥

गिलोप, अनन्तमूल, मुनक्का, सौंफ, इटसिट, इनका काढ़ा गुड़ मिला कर देने से शीघ्र वात ज्वर को नाश करता है ॥ १८ ॥

दम्भ की जड़, खरेंटी, भखड़ा इनका चौथा हिस्सा काढ़ा रख चीनी और घृत मिला कर पीने से वात ज्वर को नाश करता है ॥ १९ ॥

शतावर, गिलोय इन दोनों का क्वाथ गुड़ युक्त पीने से वात ज्वर को शीघ्र हरता है अथवा केवल गिलोय का रस ही वात ज्वर को दूर करता है ॥ २० ॥ लघुपञ्चमूल अर्थात् शालपर्णी, पृष्ठपर्णी दोनों कटेली, भखड़ा, इनका कषाय वा जवासा और गिलोय का काढ़ा भी वात ज्वर नाशक होता है ॥

अथ स्वेदनमाह—

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वापावकमाशयं ।
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदोज्वरमपोहति ॥ २१ ॥
कर्पासास्थि यवैरण्ड वर्षाभूतिलसर्षपैः ॥ २२ ॥
छत्राऽतसी काञ्जिकैश्च दत्वा वात कफं जयेत् ।
पर्वभेदं शिरः कम्पं स्वरभेदं व्यपोहति ॥ २३ ॥

१ स्वेदे वात्तार्तिनशनः इतिवापाठः ।

अर्थात् स्रोतों को मृदु कर के और अग्नि को अपने स्थान में लाकर तथा वात कफ के स्तम्भ को नाश कर स्वेद ज्वर को नाश करता है ॥ २२ ॥

कपास के बीज, जौं, एरण्डबीज, इरासिद्, तिल, सरसों, सौंफ, अलसी, कांजी इन का स्वेद देने से वात कफ को जीतता है और पर्वभेद, शिरकम्प और स्वर भेद का नाश करता है ॥ २३ ॥

अथ शोधनमाह—

त्रिवृत्सैन्धव शुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ।
वातादितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा ॥ २४ ॥

तिरवी, सैन्धालवण, सुण्ड इनका चूर्ण कांजी के साथ मनुष्य पीवे जो वात से पीड़ित हो विरेचन के लिये अथवा जांगल जीवों के मांस रस के साथ उक्त काढ़े को पीवे तो हित होता है ॥ २४ ॥

शर्करा दाडिमाभ्यां च द्राक्षा दाडिमयोस्तथा ।
वैरस्ये धारयेत्कल्कं गण्डूषं वा यथा हितम् ॥ २५ ॥

चीनी, अनारदाना से और वैसे ही मुनक्का, अनारदाना इनका कल्क मुख बेस्वाद हो तो धारण करे अथवा जो औषधियें हित हों उनको गण्डूष अर्थात् कुल्ले करे ॥ २५ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया संकरो हितः ॥ २६ ॥

अर्थात् प्रथम् औषधि दी हुई का लाभ न हो तो, दूसरी विधि करनी चाहिये परन्तु पहिली औषधि के वेग शान्त हो जाने पर दूसरी औषधि देना, विधि में गड़बड़ नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

षड्भिः केचिदहोरात्रैः केचिदष्टाभिरेव च ।
इच्छन्ति मुनयः प्रायो रसानां परिवर्त्तनम् ॥ २७ ॥
परिवृत्या रसस्यैव शान्तवेगा क्रियाभवेत् ।
गुणालाभेऽपि कर्त्तव्या विश्रामान्तरिताः क्रियाः ॥ २८ ॥
सैवान्यथाभवेत्तस्मात्पूर्ववत् संकराद्भयं ॥ २९ ॥

कोई आचार्य छः दिन रात में और कोई आठ दिन रात में प्रायः रसों का परिवर्तन मुनि लोग चाहते हैं । रस के बदलने पर ही क्रिया का शान्त वेग होता है । गुण के लाभ न होने पर भी विश्राम के अनन्तर ही अन्य क्रिया करनी चाहिये ॥ ॥ २८ ॥

विश्राम न करने पर वह इसलिये क्रिया विरुद्ध हो जाती है और पहिले की तरह क्रियासंकर से भय हो जाता है ॥ २९ ॥

अथ रसानाह— शीतभञ्जी रसः—

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणं गन्धकम् ।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्याद्रवैर्दिनम् ॥ ३० ॥
मर्दयेत्तेन लिप्त्वा च ताम्रपात्रोदरे घनम् ।
अङ्गुल्यर्धावमानेन तं पचेत्सिकताह्वये ॥ ३१ ॥
यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्यपृष्ठतः ।
ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्बुधैः ॥ ३२ ॥
तत्समं मरिचं दद्यात्सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
शीतभञ्जीरसो नाम द्विगुञ्जं वातिके ज्वरे ॥ ३३ ॥
दातव्यः पत्र खण्डेन तत्क्षणान्नाशयेज्ज्वरं ।

पारा, खपरिया, हरिताल नीला थोथा, सुहागा, गन्धक सब को बराबर शुद्ध किये हुए लेकर करेले के रस में खरल में मर्दन करे फिर उसे तांबे के पात्र में आधा अंगुल गाढा लेपकर सुखा कर वालुका यन्त्र में रख कर अग्नि दें जब उस पर रखे हुए जौं फुटने लगें तो ठण्डा होने पर निकाले और तांबे के पात्र से उतार कर उस रस के बराबर मिरच मिला कर सब को चूर्ण कर लें तो शीत-भञ्जी नामक रस तैय्यार होता है। इसे वात के ज्वर में पान के पत्ते पर दो रत्ति की मात्रा देने से ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥३०-३३॥

हिंगुलेश्वरो रसः—

हिंगुलं च विषं कृष्णा द्विगुञ्जं मस्तुना सह ।
सद्यो वातज्वरं हन्ति रसोऽयं हिंगुलेश्वरः ॥ ३४ ॥

शिंगरफ शुद्ध, मीठा तेलिया, मघ इन का चूर्ण कर दही के पानी के साथ दो रत्ति मात्रा देने से शीघ्र वात ज्वर को हरता है यह हिंगुलेश्वर रस है ॥ ३४ ॥ इति वातज्वर चिकित्सा ॥

अथ पितज्वरमाह कारणं यथा—

विदाहि लवणैस्तीक्ष्णैः क्रोधतैलसुरातपैः ।
उपवासाम्लदध्याद्यैः पित्तं कुप्यति देहिनाम् ॥ ३५ ॥

विदाहि अर्थात् दाह करने वाले, लवण युक्त तथा तेज द्रव्यों से, क्रोध से तैल सेवन से मद्य से, धूप से, भोजन न करने से, खट्टे द्रव्यों से, दही आदि द्रव्यों के सेवन से मनुष्यों का पित्त कुपित होता है॥

लक्षणं यथा—

भ्रमः स्वेदोऽरति मूर्च्छा कोठोऽसृक्ष्ठीवनं मदः ।
सादवृट्छर्दि वैगन्ध्यं शीतेच्छा च मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥
प्रलापो घ्राण कण्ठौष्ठ मुखपाकोऽक्षि साम्रता ।
पीतं वा हरितं त्वक् विण्मूत्र नख मुखादिषु ॥ ३७ ॥
जिह्वा पीताऽतिरक्ता वा मुखं तिक्तं च शोषयुक् ।
स्पर्शो देहे भवेदुष्णः शब्दे स्यात्फुट वक्त्रता ॥ ३८ ॥
नाडी पित्तज्वरे काकभेक लावक गामिनी ।

भ्रम होना अर्थात् सिर में चक्कर आने, पसीना आना, मन का न लगना, मूर्च्छा, चकते (मण्डल) पड़ना, रक्त का थूकना, मद होना, अंगों में चिमचिमाहट होना, प्यास, कै का होना, दुर्गन्ध होना, शीत पदार्थ की इच्छा फिर २ होना, प्रलाप का होना, नासिका, कण्ठ, ओष्ठ, मुख आदि का पक जाना, नेत्र लाल हो जायें। त्वचा, मल, मूत्र, नख मुखादि पीले वा हरे हों, जिह्वा पीली अति लाल हो, मुख का स्वाद कटु हो और सूखने लगे। देह में स्पर्श करने से गरम मालुम हो, शब्द स्पष्ट बोले। नाडी की गति पित्त ज्वर में कौआ, मेंढक तथा बटेर की तरह हो तो पित्त ज्वर जानना ॥ ३५—३८ ॥

पित्तज्वरे जलविधानमाह—

जलमर्धावशिष्टं तु षडङ्गादि गणैः शृतम् ॥ ३९ ॥
शीतं स्तोकं प्रदातव्यं पित्तश्लेष्मकृदन्यथा ।

पित्त ज्वर में जल गरम कर के जो आधा रह जाये उसे ठंडा कर के षडंगादि गण से (मुस्त, पित्तपापड़ा, खस, लालचन्दन, नेत्रबाला, सुण्ड) बनाया हुआ जल दे, ठण्डा जल थोड़ा देना चाहिये नहीं तो पित्त कफ को कर देता है ॥ ३९ ॥

तृष्णा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नात्युष्मणा विना ॥ ४० ॥
तस्मात्पित्तविदग्धानि त्यजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् ।

प्यास पित्त के बिना नहीं होती क्योंकि पित्त और वात में ही सुखाने की शक्ति होती है कहा भी है यथा चरके "पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासामिति" अर्थात् वातयुक्त पित्त कुपित होकर तालुस्थान में प्राप्त हो प्यास को पैदा करता है। ज्वर गरमी के बिना नहीं होता इसलिये पित्त की अधिकता में पित्त के विदग्ध अर्थात् अधिक बढ़ाने वाले द्रव्य नहीं देने चाहिये। यहां ग्रन्थकार ने पाठ में कुछ परिवर्त्तन किया है वास्तव में पाठ ऐसा है यथा वाग्भटे–"उष्मा पित्तादृते नास्ति" तथा "तस्मात्पित्तविरुद्धानि" केवल इतना ही पाठान्तर है अर्थ में विशेष भेद नहीं है ॥ ४० ॥

पित्तज्वरेण तीव्रेण दह्यमानस्य देहिनः ॥ ४१ ॥
प्रवातमार्दितस्यास्य कुर्य्याच्छीताधिकाः क्रियाः ।
बलाविरोधि तत्कार्यं लंघनन्तु दिनत्रयम् ॥ ४२ ॥

तीव्र पित्त ज्वर से जिस की देह जल रही हो उसे पुरे की (पूर्व की) वायु सेवन कराये तथा शीत द्रव्यों से चिकित्सा करे। बल की अनुकूलता देख कर तीन दिन तक लंघन कराना चाहिये। ॥ ४१—४२ ॥

केचित् पित्तेन शसन्ति, पेयाद्यैस्तमुपाचरेत् ।
पित्तघ्नौषध संसिद्धा पेया पित्तज्वरे हिता ॥ ४३ ॥
अम्लाभिलाषी तामेव दाडिमाम्लससैन्धवाम् ।
सृष्ट विट् पैत्तिकोवाथ शीतां मधुयुतां पिबेत् ॥ ४४ ॥

कोई आचार्य पित्त ज्वर में लंघन की प्रशंसा नहीं करते क्योंकि लंघन पित्त को (अग्नि को) बढ़ाता है। इसलिये पित्त ज्वर वाले को पेया आदि से उपचार करे। पित्तनाशक द्रव्यों से सिद्ध की हुई पेया पित्त ज्वर में हित होती है। जिस पुरुष को खट्टे पदार्थ खाने की इच्छा हो तो उसे अनारदाना तथा सेन्धा लवण से युक्त पेया बना कर देनी चाहिये यहां कई आचार्य "दाडिमाम्लां सनागराम्"

---

१. 'उष्मा, इतिवापाठः। २. 'विरुद्धानि' इतिवा।
३. 'मन्दिरस्थस्य' इतिवा। ४. खुले मैदान की वायु का सेवन करना।

ऐसा पाठ लिखते हैं क्योंकि सुण्ड पाक में मधुर होती है इसलिये पित्तज्वर में उस का प्रयोग हित ही होता है मल त्याग किया है जिस ने अथवा जो पित्त ज्वर वाला हो उसे शीत और शहत मिला कर पेया पिलावे ॥ ४३—४४ ॥

दाह वम्यन्वितं क्षामं निरन्नं तृष्णयार्दितम् ।
शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ ४५ ॥
मुद्गयूषौदनोदेयः सितया पैत्तिके ज्वरे ।
मुद्गानामञ्जली चूर्णं यष्टीमधुकसाधितम् ॥ ४६ ॥
पाक्यं शीतकषायं वा पिबेत् पित्तज्वरापहम् ।

अथ पाचनम्—

कलिङ्गं कट्फलं मुस्त पाठा कटुकरोहिणीम् ॥ ४७ ॥
पक्त्वा सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ।

दाह और वमन से युक्त तथा क्षीण, अन्न जिसने नहीं खाया, प्यास से जो दुःखित है उसे चीनी और शहत मिला कर लाजा तृप्ति के लिये दे । मूंगी का यूष मिश्री मिला कर पित्त ज्वर में हित है । मूंगी के आठ पल चूर्ण के साथ मुलट्ठी मिला कर कषाय बना कर ठण्डा कर के पित्त ज्वर नाश करने के लिये पीवे ।

इन्द्रजौ, कायफल, मोथा, पाठा, कुटकी इन को पका कर चीनी मिला कर पित्त ज्वर में पाचन होता है ॥ ४५—४७ ॥

अथवा पाचनं द्राक्षा पटोलं सकिरातकं ।
धन्वयासकभूनिंब मुस्ता पर्पटकं तथा ॥ ४८ ॥
किरात तिक्तं ह्रीवेरमामलक्या फलं मधुः ।
ज्वरघ्नं तत्पिबेच्छीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ४९ ॥

इति स्पष्टार्थः—(अधिकं च ख० पुस्तके)

अथ शमनम्—

विश्वाम्बु पाटलोशीर घनचन्दन साधितम् ।
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दि ज्वरदाहनुत् ॥ ५० ॥
पादशेषः कषायः स्याद्यः षोडशगुणाम्भसि ।
क्वथितोऽत्थ षडङ्गादि न निषिद्ध नवज्वरे ॥ ५१ ॥

षडङ्ग परिभाषामाह—

यदप्सु शृत शीतासु षडंगादि प्रयुज्यते ।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ ५२ ॥
अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादि संविधौ ।
मुस्त पर्पटकोशीर चन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतं शीतं जलं दद्यात्तृडदाहज्वरशान्तये ॥ ५३ ॥

सुएड, नेत्रबाला, पाटला खस, मोथा, लालचन्दन, इन से किया हुआ शीतल जल प्यास, वमन, ज्वर तथा दाह को हरता है॥

सोलह गुणा जल देकर चौथा भाग रहने से काढ़ा होता है। काढ़ा किया हुआ षडंगादि जल (मोथा, पितपापड़ा, खस, लाल चन्दन, नेत्रबाला, सुएड) नवीन ज्वर में निषिद्ध नहीं होता ॥

जिस कथित ठण्डे पानी में षडंगादि का प्रयोग किया जाता है उसमें एक तोला औषध १ सेर पानी में डालकर आधा जल जाने पर प्रयोग करना चाहिये पीने में तथा पेया आदि बनाने में हित होता है ॥

मोथा आदि छः औषधियों का जल बना कर देने से तृष्णा दाह और ज्वर को शान्त करता है ॥ ५०—५३ ॥

किराताम्लामृतोशीर रजः शीताब्दपद्मकैः ॥ ५४ ॥
क्वाथो वम्यथ हृल्लास पित्तक्लेदक्लमापहः ।
गुडूची मुस्तधान्याक मधुकं कटुकरोहिणी ॥ ५५ ॥
तृष्णाशूलारुचि छर्दि पित्तज्वरोगणः ।
मधुकं त्रायमाणं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ५६ ॥
किराततिक्तकं तिक्ता मुस्तकं सविभीतकम् ।
सशर्करं पीतमेतत्पित्तज्वर निवर्हणम् ॥ ५७ ॥
पटोलयवनिष्क्वाथो मधुना मधुरी कृतः ।
तीव्रं पित्तज्वरं हन्ति दीपनस्तृड्दाहनुत् ॥ ५८ ॥

किरातेति—चिरायता, आंवला, गिलोय, खस, पितपापड़ा,

---

§ गुडूच्यामलकैर्युक्ता केवलोवापिपर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितं इत्यधिक ख, पुस्तके ।

मोथा, पद्माख इन औषधियों का क्वाथ वमन को उबकाई का पित-क्लेद को और विना श्रम की थकावट दूर करता है ॥

गिलोय, मोथा, धनियां, मुलठी, कुटकी इन का काढ़ा प्यास की पीड़ा को अरुचि को, कै, और पितज्वर को नष्ट करने वाला गण है॥

मुलठी, त्रायमाणा, पिपलीमूल चिरायता, कुटकी, मोथा, बहेड़ा इन का काढ़ा शर्करा मिला कर पीने से पितज्वर शान्त होता है ॥

परवल के पते, और जौं इनका क्वाथ शहत के साथ मीठा कर के पीने से तीव्र पित ज्वर को हरता है दीपन तथा प्यास और दाह को नाश करता है ॥ ५६—५८ ॥

श्रीपर्णी चन्दनोशीर परूषकमधूकजः ।
शर्करा मधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ॥ ५६ ॥
उदुम्बर शिफाछिन्ना ससिता पैत्तिके ज्वरे ।
पटोलेन्द्रयवैः क्वाथः समधुः पित्तदाहजित् ॥ ६० ॥

लघुचन्दनादि—

चन्दनोशीर ह्रीवेर मुस्ता लोहितपर्पटैः ।
चन्दनादिरयं क्वाथो दाहज्वरविनाशनः ॥ ६१ ॥

खम्भारी, लाल चन्दन, खस, फालसा, मौआ का क्वाथ शर्करा से मीठा किया हुआ पित ज्वर को हरता है । गूलर की जड़ और गिलोय का क्वाथ कर मिश्री मिला कर पीने से पित ज्वर में हित है परवल के पते, इन्द्र जौं का क्वाथ शहत के साथ पीने से पित दाह को जीतता है । चन्दन सफेद, खस मुष्कवाला, मोथा, चन्दन लाल और पितपापड़ा आदि से काढ़ा किया हुआ पीने से दाह और ज्वर का नाश करता है यह चन्दनादि क्वाथ कहाता है ॥ ५६—६१ ॥

बृहच्चन्दनादिगणः—

मलयज पिचु विश्वा बालकं पद्मकं च ।
जलरुह कटु मुस्ता शारिवा हारहूरा ॥
अतिविषयवयष्टी कल्पितस्तुल्यभागो
हरति च गुरुपीडां पित्तसन्तापमूर्च्छाम् ॥ ६२ ॥

श्वेत चन्दन, नीलोफर, सुण्ड, नेत्रवाला, पद्माख, श्वेत कमल, कुटकी या कायफल; मोथा, सारिवा, मुनक्का, अतीस, जौं, मुलठी,

इन औषधियों को बराबर भाग लेकर काथ कर पीने से अधिकतर पित्त जनित पीड़ा को सन्ताप और मूर्च्छा को हरता है ॥ ६२ ॥

शोधनमाह--

सखण्डं वा त्रिवृच्चूर्णं पित्ते तिक्तैर्विरेचनं ।
द्राक्षाब्दारग्वधं चर्म क्काथस्तिक्ताभयान्वितः ॥ ६३ ॥
शोषौषभ्रमतृण्मूर्च्छा पित्तज्वरप्रलापनुत् ।
भूनिम्बातिविषा लोध्रं मुस्तकेन्द्रयवामृता ॥ ६४ ॥
वासकं नागरं बिल्वं कषायोमाक्षिकान्वितः ।
श्वासं कासं च विड्भेदं रक्तपित्त ज्वरं हरेत् ॥ ६५ ॥

तिरबी के साथ खण्ड मिला कर अथवा तिक्त (कुटकी) आदि द्रव्यों से पित्त में विरेचन हित होता है। मुनक्का, मोथा, अमलतास पित्तपापड़ा, कुटकी, हरड़ युक्त किया हुआ काथ, शोष, गरमी, भ्रम, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप और पित्तज्वर को नाश करता है ॥

चिरायता, अतीस, लोध, मोथा, इन्द्र जौं, गिलोय, बांसा, सुण्ड बिल का गूदा इन का काढ़ा शहत मिला कर पीने से श्वास, खांसी मल फट कर आने को और रक्तपित्त ज्वर को हरता है ॥ ६३-६५ ॥

ह्रीवेरं चन्दनं धान्यं पद्मकं यष्टिकामृता ।
वृषोशीर युतः क्काथः शर्करामधुमिश्रितः ॥ ६६ ॥
रक्तपित्तं हरत्युग्रं तृष्णादाहज्वरं परम् ।
आटरूषक मृद्वीका पथ्या क्वाथः सशर्करः ॥ ६७ ॥
मधुमिश्रः कासश्वास रक्तपित्त ज्वरार्त्तिनुत् ।
वृषपुष्प छद रसः शर्करा मधुसंयुतः ॥ ६८ ॥
रक्तपित्तज्वरं हन्ति कासंश्वासं च कामलां ।
पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ॥ ६९ ॥
दाह तृष्णा प्रमेहेभ्यो रक्तस्रावात्प्रमुच्यते ।

सुगन्धवाला, लालचन्दन, धनिया, पद्माख, मुलठी, गिलोय, बांसा, खस इनका काथ खण्ड तथा शहत मिला कर पीने से बढ़े हुए रक्तपित्त को प्यास दाह तथा ज्वर को शीघ्र हरता है।

बांसा, मुनक्का, हरड़ इन का काथ खाण्ड और मधु मिला कर

पीने से खांसी, दमा, रक्तपित्त तथा ज्वर की पीड़ा को हरता है।
बांसे के फूल तथा पत्तों का रस चीनी और शहत मिला कर सेवन करने से रक्तपित्त ज्वर को खांसी, दमा और कामला रोग को हरता है श्वेतचन्दन को चावलों के पानी के साथ शर्करा तथा मधु मिला कर सेवन करने से दाह, तृष्णा और प्रमेहों से तथा रक्त के निकलने से रोगी मुक्त हो जाता है ॥ ६६—६९ ॥

स्वरसं मातुलुङ्गस्य संयुक्तं मधुसर्पिषा ॥ ७० ॥
तालुशोषे प्रदेहोऽयं मुर्ध्नि देयः ससैन्धवः।
पथ्यातिलघृतक्षौद्रैः लेपो दाहज्वरापहः ॥ ७१ ॥
कासासृक् पित्तवीसर्प श्वासान्हन्ति वमीनपि।
हरीतकी प्रियंगुश्च पिप्पली रोध्रमेव च ॥ ७२ ॥
दार्वी हरिद्रा तेजोह्वा सक्षौद्रा मुखधावनी।
एतेन ककुभाद्यैश्च मुखरोगःप्रशाम्यति ॥ ७३ ॥
वक्तुं विशुद्धतामेति भक्त्याकांक्षाचजायते।

बिजौरे (निम्बु) का रस शहत मिला कर तथा सेन्धा लवण मिला कर इनका लेप मस्तक पर करने से तालु के सूखने पर देना, वैसे ही हरड़, तिल, घृत, शहत से लेप किया हुआ दाह ज्वर को हरता है। खांसी को, रक्तपित्त, विसर्प रोग को, दमे को और वमन को भी हरता है। हरड़, फूलप्रियंगु, मघ, लोध, दारुहल्दी, तेजबल इन को शहत के साथ मिला कर मुख साफ करने के लिये प्रयोग करे। इन्हीं उक्त द्रव्यों के साथ अर्जुन की छाल मिला दी जाये तो मुख रोग की शान्ति हो जाती है बोलने में स्पष्टता हो जाती है भोजन की इच्छा होती है ॥ ७०—७३ ॥

शीतभञ्जी रसोऽप्यत्र गुंजैकासितयासह ॥ ७४ ॥
पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं चर्म मुस्तानुपानतः।

इति पित्तज्वरचिकित्सा

वातज्वर में जो शीतभञ्जी रस वर्णन किया है वह यहां भी मिश्री के साथ पित्तपाण्ड़ा और मोथे के अनुपान से दिया हुआ शीघ्र पित्त ज्वर को हरण करता है ॥ ७४ ॥

अथ कफज्वरचिकित्सामाह निदानं यथा—

मधुरातिगुरु स्निग्ध दधिदुग्धनवान्नकैः ॥ ७५ ॥
अव्यायाम दिवास्वप्नैः कफः स्याद् विषमाशनैः ।

अति मीठे पदार्थ गुरु द्रव्य तथा स्निग्धभोजन, दही, दुग्ध और नवीन अन्नों से, कसरत न करने से, दिन में सोने से तथा विषम भोजन से कफ कुपित होता है ॥ ७५ ॥

लक्षणं यथा—

कास श्वास प्रतिश्याय प्रसेका छर्द्यरोचकः ॥ ७६ ॥
निद्रा गुरुत्व हृल्लास स्तैमित्योष्णाभिलाषिताः ।
श्वेततां भजते त्वग्विण् नखमूत्र मुखाक्षितु ॥ ७७ ॥
जिह्वा पीताघना श्वेतामुखंमिष्टं कफान्वितं ।
स्पर्शे शीतार्द्रताज्ञेया शब्दे गम्भीरतामता ॥ ७८ ॥
नाड़ी श्लेष्मज्वरे हंस पारावतकपोतयोः ।
कुक्कुटस्य गतिं धत्ते लिंगं श्लेष्मज्वरे विदुः ॥ ७९ ॥

कफ ज्वर में खांसी, दमा, प्रतिश्याय (जुखाम) मुख से थूकें आना, कै, अरुचि, निद्रा का आना, शिर का भारी होना, उबकाई होना, देह का गीलापन गरमी की इच्छा होना, त्वचा, मल, नख, मूत्र, मुख, नेत्र इनका सफेद होना जिह्वा पीली अधिक श्वेत, मुख मिट्ठा तथा कफ से भरा हुआ, देह पर हाथ लगने से ठण्डा तथा गीला प्रतीत हो बोलना गम्भीर हो, नाड़ी कफज्वर में हंस, कबूतर तथा कुक्कुट की गति को धारण करे तो श्लेष्म ज्वर जानना चाहिये ॥ ७६—७९ ॥

कफज्वरे जलविधानम्—

पानीयं पादशेषं स्यादुष्णं स्तोकं तथाहितं ।
कफजे कफवातोत्थे समाग्निबलजन्तुषु ॥ ८० ॥

कफ ज्वर में या कफवात से पैदा हुए ज्वर में जिस पुरुष की अग्नि सम हो और बल हो तो वहां चौथा भाग शेष रखा हुआ जल गरम तथा थोड़ा देना हित होता है ॥ ८० ॥

लंघनैः सप्तभिः शुद्धिः कार्या शीतवसन्तयोः ।

श्रीपर्णी विल्व टिण्टूक तर्कारी पाटलादिभिः ॥ ८१ ॥
सयवैः क्वथिता पेया श्लेष्मज्वरहरा द्रुतम् ।
मुद्गयूषौदनश्चापि यूषः कौलत्थजोपि वा ॥ ८२ ॥
दिवा निद्रां न कुर्वीत विधिः स्याच्छ्लेष्मजे ज्वरे ।

श्लेष्मज्वर में सात दिन लंघन कराना शीत ऋतु में तथा वसन्त में इसकी शुद्धि करनी चाहियें । खम्भारी, विल्व, टेंटूं, जयन्ति, पाटला आदि में जौं मिला कर क्वाथ कर इनकी पेया कफ ज्वर की पीड़ा को हरती है । मूंगों का यू चावल अथवा कुलत्थी का यूष हित होता है । दिन में न सोना चाहिये यही विधि कफ ज्वर में हित होती है ॥ ८१—८२ ॥

पाचनमाह—

लघुमूलौषधं दीप्य सिन्धुक्षार कणायुतं ॥ ८३ ॥
पाचनं कफज वाथ यवान्युग्रावचौषधैः ।
अथ वृषभ गांगेय शृंगवेर दुरालभा ॥ ८४ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली, गोखुरू, अजवायन, सैन्धा लवण मघ इनसे किया हुआ क्वाथ कफज्वर में पाचन होता है अथवा अजवायन, त्रिफला, वच, सुण्ड, ऋषभक, नागरमोथा, अदरक, धमासा इन का क्वाथ कफज्वर में पाचन होता है ८३-८४॥

कृष्णा कौशिक वृक्षबीज कटुका कीटद्विषा चित्रका-
ऽऽर्द्रका ग्रंथिक विश्वभेषजवचा मूर्वा विषा जीरकैः ।
एला रामठ रेणुकोषणा वृकी चव्येभकृष्णायुतैः ।
भार्गी दीप्यक सर्षपैश्च कफजे कुर्य्याज्ज्वरे पाचनम् ॥८५॥

मघ, गुग्गुलु शुद्ध, इन्द्र जौं, कुटकी, वायविडंग, चित्रक, अदरक, पिपलामूल, सुण्ड, वच, मूर्वा अतीस, जीरासफेद, छोटी इलाची हिंगु, सम्भालु के बीज, मरिच, पाठा, चाभ, गजपिप्पली भिड़ंगी, अजवायन, सरसों, इन सब द्रव्यों का क्वाथ कर कफ ज्वर में पाचन के लिये देना ॥ ८५ ॥

शमनमाह—

कटफलोग्राभयैलाब्द शृंगी भूनिम्ब पर्पटं ।

---

१ पाटलां त्रिभिरिति वा पाठः । २ अथवा वृषगांगेरिति वा पाठः ।

भार्गी दारु च मक्षौद्रः क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ८६ ॥
निम्बविश्वामृता दारु शुण्ठी भूनिम्ब पौष्करम् ।
पिप्पल्यो बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ ८७ ॥
सिन्दुवारदल क्वाथः कणाढ्यः कफजे ज्वरे ।

कायफल, वच, हरड़, इलाची, मोथा काकड़ासिंगी, चिरायता, पोहकरमूल, भार्गी, देवदारु इन औषधियों का क्वाथ मधु के साथ देने से कफज्वर को नाश करता है। निम्बपत्र, शतावरी, गिलोय, देवदारु, सुण्ड, चिरायता, पोहकरमूल, मघ, कण्ड्यारी बड़ी इन का क्वाथ कफज्वर का नाश कर देता है। सम्भालु के पत्तों का काढ़ा मघ मिला कर पीने से कफज्वर में हित होता है ॥८६—८७॥

लंघितैश्च बले क्षीणे कर्णे च पिहिते सति ।
कण्टकारी कणा शुण्ठी गुडूची क्वाथ पानतः ॥ ८८ ॥
कासं श्वासं ज्वरं शूलं मन्दाग्नि पीनसं जयेत् ।

लंघन से बल क्षीण हो जाने पर कानों के बन्द होने पर, कण्ड्यारी मघ, सुण्ड, गिलोय का काढ़ा पीने से खांसी, दमा, ज्वर शूल और मन्दाग्नि तथा पीनस को जीतता है ॥ ८८ ॥

दशांघ्रि वृषजो वाथ शुण्ठी रोहिषजोऽथवा ॥ ८९ ॥
मुस्ता परूषको वापि सकृष्णा क्षुद्रजो हि वा ।
चत्वारः पादिकाः क्वाथा श्लेष्मज्वरहरामता ॥ ९० ॥

दशमूल, बांसा अथवा सुण्ड, रुहेड़ा अथवा मोथा, फालसा, और मघ कण्ड्यारी इन का चतुर्थपाद योग कफ ज्वर को हरता है।

वासा पटोल त्रिफला छिन्ना तिक्ता कृतोऽथवा ।
तिक्ता नाग निशा व्योष शताह्वाभिः शृतं जलम् ॥ ९१ ॥
पिबेत्कफज्वरं घोरं हन्ति कास समन्वितं ।
कट्फलं पुष्करं शृंगी कटुकं मुस्तकं शठी ॥ ९२ ॥
समस्तान्येकशो वापि श्लक्ष्ण चूर्णानि कारयेत् ।
तदार्द्रक रसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम् ॥ ९३ ॥
शूलानिलारुचि छर्दि श्वासकासमयापहम् ।

वांसा, परवल के पत्ते, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, कौड़

का क्वाथ अथवा कुटकी, मोथा, हलदी, मघ, मिरचां, सुण्ड, सौंफ से किया हुआ क्वाथ कासयुक्त घोर कफज्वर को हरता है। कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी मोथा, कचूर इन सब औषधियों को अथवा एक २ को लेकर बारीक चूर्ण कर के शहत के साथ मिला कर चाटने से कफ नाश होता है तथा शूल, वायु को, अरुचि को वमन को और खांसी दमे के भय को दूर करता है॥

कटुकं चित्रकं निम्बं हरिद्रातिविषावचाम् ॥ ९४ ॥
कुष्ठमिन्द्र यवं मूर्वा पटोलैरपि साधयेत् ।
पिबेन्मरिच संयुक्तं सगुडं कफजे ज्वरे ॥ ९५ ॥
अजाजीशर्करायुक्तं दाड़िम स्वरसेन वा ।
रुचिदो मधुना युक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः ॥ ९६ ॥

कौड़, चित्रा, निम्ब, हलदी, अतीस, वच कुठ, इन्द्र जौं, मूर्वा, परवल के पत्तों से सिद्ध किया काढ़ा मरिच ऊपर से धूड़ कर कफ ज्वर में पीवे। जीरा सफेद, चीनी मिला कर अथवा अनारदाने के रस से मुख में कवल धारण करने से शहत मिला हो जिस में वह रुचि का देने वाला होता है॥ ९४—९६ ॥

शोधनमाह—

सद्योभुक्तस्य सञ्जाते ज्वरे सामे विशेषतः ।
वमनं वमनार्हस्य ह्यन्यथा व्याधिकृद्भवेत् ॥ ९७ ॥
कृष्णा मदन सिन्धूत्थ कल्कक्षौद्रसमन्वितं ।
पाययेत् मधुना क्वाथे ह्येतद्वमनमुत्तमम् ॥ ९८ ॥

जिस पुरुष को भोजन खाते ही ज्वर हो जाये वा विशेष करके आम युक्त ज्वर में वमन कराने योग्य रोगी हो तो उसे वमन कराना-हित होता है नहीं तो रोग उत्पन्न करने वाला वमन हो जाता है।

मघ, मैनफल, सैन्धालवण इन औषधियों का कल्क मधु युक्त किया हुआ शहत के काढ़े से पिलाने से उत्तम वमन कारक होता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

रसप्रयोगमाह—

शीतभञ्जी रसोप्यत्र देयो गुंजा त्रयो मिताः ।

सव्योषः श्लेष्मजे हन्ति वासा शुण्ठ्यानुपानतः ॥ ६६ ॥

पूर्वोक्त शीतभञ्जी रस की तीन रत्ती मात्रा मघां, मिरचां, सुण्ड इनके चूर्ण को मिला कर वांसे के पत्ते और सुण्ठी के काथ के अनुपान से दिया हुआ कफ ज्वर को नष्ट कर जाता है ॥ ६६ ॥

इति श्रीकायस्थचण्डकृते ज्वरतिमिरभास्करे
वातादि ज्वरनाम पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

अथ द्वन्दजमाह—

निदानं निश्चितं ज्ञेयं द्वन्द्जेतु ज्वरत्रये ।
छर्दिमूर्च्छा शिरोर्तिस्तृण् मिथ्यावाग्रोमहर्षणम् ॥ १ ॥
जृम्भाकम्पो दाहमोहो शोथपर्व व्यथारुचिः ।
अनिद्रता भ्रमश्चैव वातपित्त ज्वराकृतिः ॥ २ ॥
वातपितज्वरे नाडी सर्पभेक गतिर्मुहुः ।
मूत्रं च निश्चितं ज्ञेयं सिद्धार्थ तैल सन्निभम् ॥ ३ ॥
मलश्च फेनिलः श्यामः पीते रक्ते च चक्षुषी ।
रूक्षे रक्ते स पीतं वा मुखे कषाय तिक्तता ॥ ४ ॥
जिह्वा धूम्रा खरा रक्ता शब्दैश्चैव यदृच्छता ।
स्पर्शे शीतोष्णता ज्ञेया लंघनं नव पञ्चतः ॥ ५ ॥

निदानं मिला हुआ तीनों ज्वरों में जानना चाहिये अर्थात् वात पित, पित्तश्लेष्म, वात कफ यह तीन प्रकार के द्वन्दज ज्वर होते हैं । तो पहिले वात पित्त ज्वर के लक्षण अर्थात् वमन, मूर्छा, शिर में पीड़ा, प्यास प्रलाप, रोमहर्ष, जृम्भा (उबासी), कांपना, दाह, मोह, मुखादि का सूखना, पुरव्वों में पीड़ा और अरुचि, निद्रा का न आना तथा भ्रम यह वात पित्त ज्वर के लक्षण होते हैं । वात पित्त ज्वर में नाड़ी सर्प तथा मेंडक की गति चलती है । मूत्र मिले हुए लक्षणों वाला सरसों के तेल के समान होता है । इस ज्वर में मल झाग युक्त तथा काले रंग का आता है । और नेत्र पीले तथा लाल । रुक्ष लाल पीततायुक्त मुख और स्वाद कसैला

वा कटु होता है । जिह्वा धूएँ के सदृश खरदरी लाल होती है और शब्द जैसी इच्छा वैसा ही होता है देह में हाथ लगाने से ठण्डी तथा गरम प्रतीत होती है । इस ज्वर में पांच दिन से लेकर नौ दिन तक लंघन कराना चाहिये ॥ १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥

जलविधानमाह—

अष्टभ्यः पञ्चशिष्ठन्तु कृत्वा शीतं जलं पिबेत् ।

आठ गुणा जल से पञ्चभाग शेष रख कर जल पीवे ।

पेयामाह—

विश्वा बला पृथक्पर्णी नागरं धान्यकोत्पलम् ॥ ६ ॥
एतैः पेया कृता देया वातपित्तज्वरापहा ।

शतावरी, खरेंठी, पृष्टपर्णी, सुण्ड, धनियां, कमल इन से पेया बना कर पीने से वात पित्त ज्वर को नाश करती है ॥ ६ ॥

दाडिमामल मुद्गानां यूषश्च वातपित्तके ॥ ७ ॥
ह्रस्वमूलकजे वापि वातपित्तज्वरापहः ।

अनारदाना, आंवला, मूंगी इनका यूष वात पित्त ज्वर में हितकर है । अथवा पृष्टपर्णी, शालपर्णी, दोनों कटेली और गोखुरु इनका यूष भी वात पित ज्वर को जीतता है ॥ ७ ॥

अथ पाचनम्—

किराताब्दौषधानन्ता साच्छिन्ना वातपैत्तिके ॥ ८ ॥
पाचनं शमन चाथ पौष्कराम्बु गुडूचिका ।
गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ॥ ९ ॥

पञ्चभद्रम्—

छिन्नापर्पट विश्वाब्द वासाभिरथवाकृतः ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ १० ॥

चिरायता, मोथा, सुण्ड, सारिवा, गिलोय इनका काढ़ा वात पित्त ज्वर में पाचन होता है ॥ पोहकर मूल, नेत्रवाला, गिलोय इनका काढ़ा शमन होता है । गिलोय, पित्त पापड़ा, मोथा, चिरायता सुण्ड अथवा गिलोय, पित्तपापड़ा, सुण्ड, मोथा और बांसा इनका किया हुआ काढ़ा वात पित ज्वर में पञ्चभद्र नामक दिया हुआ हित होता है ॥ ८ । ९ । १० ॥

पटोलमुस्तशम्या[1]क निम्बयष्टि निशासुरैः ।
सोशीरैर्मदतृड्दाहग्लानिशो[2]षानिलापहः ॥ ११ ॥
बलाभार्ग्यमृतैरण्ड चन्दनोशीर पर्पटैः ।
उपकुल्यारिष्ट ह्रीवेरैः कषायं तु पिबेन्नरः ॥ १२ ॥
पर्वभेद शिरःकम्प वातपित्त ज्वरापहम् ।
पटोलपिचुमन्दश्च ह्यमृता कटुरोहिणी ॥ १३ ॥
एषसिद्धः कषायः स्याद्वातपित्तज्वरापहः ।

द्राक्षादिगणः—

द्राक्षा मधूकमधुकं रोध्रकाश्मर्य शारिवा ॥ १४ ॥
मुस्तामलकह्रीवेर पद्मकेशर पद्मकं ।
मृणालचन्दनोशीरनीलोत्पलपरूषकैः ॥ १५ ॥
फाण्टो हिमो वा द्राक्षादिर्जातिकुसु[3]मान्वितः ।
युक्तो मधुसिता लाजैर्जयत्यनिलपित्तजम् ॥ १६ ॥
ज्वरं मदात्ययं कुष्ठं मूर्च्छा दाहं भ्रमं श्रमं ।
उर्ध्वगं रक्तपितं च पिपासां कामलामपि ॥ १७ ॥

परवल के पत्ते, मोथा, अमलतास, निंब, मुलठी, हल्दी, देवदारू खस के साथ किया हुआ कषाय, मद, प्यास, दाह, ग्लानि, मुखादि का सूखना और वायु को हरता है ॥ ११ ॥ खरेंटी, भार्गी, गिलोय, एरण्डमूल, लाल चन्दन, खस, पितपापड़ा, मघ, निंब, सुगन्ध बाला इनका काढ़ा पीवे तो पर्व भेद सिर का कांपना और वातपित ज्वर को हरता है ॥ १२ ॥

परवल के पत्ते, निंथ, गिलोय, कौड़ इनका काढ़ा वात पित्त ज्वर को हरने में सिद्ध है ॥ १३ ॥ मुनक्का, मौआ, मुलठी, लोध, खम्भारी, अनन्तमूल, मोथा, आंवला, सुगन्ध वाला, नाग केसर, पद्माख, भें, लाल चन्दन, खस, नीलोफर, फालसा, गोखुरु अथवा कपूर युक्त यह द्राक्षादि काथ चमेली के फूलों सहित शहद मिश्री तथा लाजा मिला कर पीने से वातपित्त ज्वर को जीतता है तथा

१ 'धान्यक' इति वा पाठः । २ 'तृष्णा' इति वा पाठः ।
३ 'कुसुमासिता' इति वा पाठः ।

ज्वर मदात्यय कुष्ठ, मूर्च्छा, दाह, भ्रम, थकावट उर्ध्वगत रक्त पित्त को और प्यास कामला को भी जीतता है ॥ १४ । १५ । १६ । १७ ॥

त्रिफला शाल्मलि रास्ना राजवृक्षाटरूषकैः ।
शृतमम्भोरुहं हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ १८ ॥
किराततिक्तममृता द्राक्षा मामलकं शठी ।
निष्क्वाथ्यपित्तानिलजे तत्क्वाथं सगुडं पिबेत् ॥ १९ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सिंबल की छाल, रायसन, अमलतास, फालसा, कमल इनसे किया काथ वातपित से उत्पन्न हुए ज्वर को शीघ्र नाश करता है ॥ १८ ॥ चिरायता, गिलोय, मुनक्का, आंवला कचूर इनका काढ़ा गुड़ मिला कर वातपित्त ज्वर में पीवें ॥ १९ ॥

रसः—

त्रिफलामृत लौहश्च भृंगराजश्च चूर्णितं ।
चूर्ण मचीव पत्रस्य त्रिजातक शिलाजतुः ॥ २० ॥
त्र्यूषणं तुल्य तुल्यांशे सर्वेषां च समांशता ।
क्षौद्रेण वटिका कार्या कर्षमात्रं तु भक्षयेत् ॥ २१ ॥
वातपित्तज्वरं हन्ति अनुपानं विना गुटी ।

हरड़, बहेड़ा, आंवला, मरा हुआ लौह, भंगरे का चूर्ण, सुहांजने का चूर्ण दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, शिलाजीत शुद्ध, मघ, मिरच, सुण्ड इन सब को समान भाग लेकर शहत के साथ गोली १ तोला की बनाये (ग्रन्थकार ने मात्रा १ तोला की कही है परञ्च वैद्य बलाबल देख कर इसकी मात्रा प्रयोग कर सकता है) यह गोली बिना किसी अनुपान के वातपित्त ज्वर को नाश कर देती है ॥ २० । २१ ॥

वातश्लेष्मज्वरमाह—

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा स्वेदोथ गौरवं ॥ २२ ॥
शिरोभेदः प्रतिश्यायः कासश्वासोथ शूलरुक् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्म ज्वराकृतिः ॥ २३ ॥
वातश्लेष्म ज्वरे नाड़ी गतिः सर्पमरालवत् ।
मूत्रं धूम्रं सितं स्निग्धं सौवीरेण समं हि वा ॥ २४ ॥

मलः श्यावारुणः स्निग्धश्चक्षुरान्तं च धूसरं ।
मुखं कषायमधुरं जिह्वाश्यामा सितार्द्रता ॥ २५ ॥
शब्दो घुर्घुरतामेति स्पर्शे शीतार्द्रता भवेत् ।

चिकित्सामाह—

लंघनं दिग्मितं चाम्बु प्रोक्तमर्धावशोषितम् ॥ २६ ॥

स्तैमित्यादि-अंगों का गीलापन, पर्वों का टूटना, निद्रा का होना पसीने का आना, शिर या अंगों का भारी होना, शिरका फटना, नज़ला, कास, श्वास और पीड़ा का होना, ज्वर का मध्य वेग होना यह वात श्लेष्म ज्वर के लक्षण हैं। वात कफ ज्वर में नाड़ी की गति सर्प तथा हंस की तरह होती है मूत्र धुयें के सदृश श्वेत, चिकना अथवा कांजी के समान होता है मल काला लाल वर्ण चिकना, नेत्र धूसर होते हैं । मुख कसैला और मिट्ठा, जिह्वा काली सफेद और गीली होती है कण्ठ में घुरघुर शब्द होता है देह पर हाथ लगाने से ठण्डी तथा गीली होती है। इस ज्वर में लंघन दश दिन तक कराना चाहिये और आधा जला हुआ जल देना चाहिये ॥ २२ । २३ । २४ । २५ । २६ ॥

पेया—

गोक्षुरं बृहती द्वन्द्वं गुहा चातिगुहापिच ।
कृतापेया श्वासकास वातश्लेष्म ज्वरार्त्तिहृत् ॥ २७ ॥
शुष्कमूलकयूषस्तु वातश्लेष्मज्वरेहितः ।
वातश्लेष्मज्वरे स्वेदं कारयेत्तुविधानवित् ॥ २८ ॥

गोखरु, दोनों कटेली, शालपर्णी, पृष्टपर्णी इनकी पेया बना कर देने से श्वास, खांसी और वातकफ की पीड़ा को हरती है। सूखी मूली का यूष वात कफ ज्वर में हित होता है वात कफ ज्वर में विधि के जानने वाला वैद्य स्वेद कराये ॥ २७ । २८ ॥

पाचनम्—

किराताब्दामृता विश्वैः पाचनं कफवातजे ।
तृष्णान्विते वातकफे ज्वरार्ते-
सश्वास कासारुचिविड्विबन्धे ।

हितं जलं दीपन पाचनं च
पटोलशुण्ठी यवपिप्पलीनाम् ॥ २६ ॥

चिरायता, मोथा, गिलोय सुण्ड इनका काथ वात कफ ज्वर में पाचन होता है। तृष्णा से युक्त वात कफ के ज्वर की पीड़ा में जिसमें दमा, खांसी, अरुचि, मल की रुकावट हो तो उसमें परवल सुण्ड, जौं मघां, इनका काथ दीपन पाचन के लिए हित होता है ॥ २६ ॥

शमनम—

कटफलं दारुभार्ग्यब्द वचाधान्यकपर्पटैः।
साभया विश्वपूतीकैः क्वाथोहिंगुमधूत्कटः ॥ ३० ॥
कफवातज्वरं कासं ष्ठीवनं श्वासशोफनुत् ॥

कायफल, देवदारु, भार्गी, मोथा वच, धनियां, पित्तपापड़ा, हरड़, सुण्ड, करंज, इनका काथ हिंग और शहत मिला कर पीने से कफवात ज्वर को खांसी, थूकों का आना, दमा इन व्याधियों को और शोथ को हरता है ॥ ३० ॥

मुस्तापर्पटक शुण्ठी गुडूची सदुरालभा ॥ ३१ ॥
कफवातारुचि छर्दि दाह शोफ ज्वरापहा।
व्याघ्री शुण्ठ्यामृता क्वाथः पिप्पली चूर्ण संयुतः ॥ ३२ ॥
वातश्लेष्मज्वर श्वास कास पीनस शूलजित्।
दशमूली रसः पेपा कणायुक्तः कफानिले ॥ ३३ ॥
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक् श्वासकासके।
क्षुद्रौषधामृता मूलैः[1] वृषैलाब्दामृतैरथ ॥ ३४ ॥
मुस्तौषधामृतातिक्तं भानुभद्रं[2] धवे हि वा।
गुडूच्यावासकृष्णा वा ग्रन्थ्यब्दारग्वधाभया ॥ ३५ ॥
श्लेष्मवातज्वरं कासं शूलं श्वासं जयन्तिहि ॥

मुस्तेति—मोथा, पित्तपापड़ा, सुण्ड, गिलोय, धमासा इनका काथ कफवात ज्वर, अरुचि, कै, दाह, शोथ और ज्वर को नाश करता है ॥ ३१ ॥

---

१ "बाह्मैः" इति वा पाठः। २ "चातुर्भद्रमिदं" वा पाठः।

छोटी कएड्यारी, सुएड, गिलोय का काथ सुएड का चूर्ण मिला कर पीने से वातकफ ज्वर, श्वास कास, नज़ला और शूल को जीतता है॥

दशमूल (अर्थात् बिल्व, अरनी (अग्नि मंथ), स्योनाक, पाटला खम्भारी, शालपर्णी पृष्टपर्णी दोनों कटेली, भखड़ा इन औषधियों) का काथ मघ का चूर्ण मिला कर पीया जाये तो कफवात ज्वर में, भोजन के न पचने पर अधिक निद्रा में, पसवाड़ों की पीड़ा में तथा दमे, खांसी में हित होता है ॥ ३३ ॥

छोटी कटेली, सुएड, गिलोय वा बांस की जड़, इलाची, गिलोय वा मोथा, सुएड, गिलोय, कौड़, अर्कमूल बड़ी इलाची अथवा गिलोय मघ के साथ अथवा पिपलामूल, मोथा, अमलतास, हरड़ इन सब द्रव्यों का भिन्न २ काथ बना कर पीने से कफवात ज्वर को, खांसी को शूल को दमे को जीतता है ॥ ३४—३५ ॥

मातुलुंगफलकेशरैः[1]युतं सिन्धु जन्ममरिचान्वितोमुखे ।
हन्ति वातकफ रोगमास्यगं शोथमाशुजड़तामरोचकम् ।३६।

विजौरे के केसर, सैन्धालवण, मरिच मिला कर मुख में कवल धारण करने से वातकफ को मुख शोष को जड़ता को अरुचि को शीघ्र जीतता है ॥ ३६ ॥

सभूनिंबामृतादारु कटुकं मुस्तकंवचा[2] ।
कषायं पाययेदाशु वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३७ ॥
पर्वभेद शिरः कंप कासारोचकपीडितम् ।

सभूनिम्बेति—चिरायता, गिलोय, देवदारु कौड़, मोथा, इनका काढ़ा पीने से वातश्लेष्मज्वर पर्वभेद, सिर का कांपना, खांसी अरुचि से पीड़ित शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ ३७ ॥

रसः—

सूतकंटंकणं गन्धं शुद्धचूर्ण समं समं ॥ ३८ ॥
सूतकाद्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ।
सैन्धवं मरिचं चिश्चात्वग्भस्मशर्करापिच ॥ ३९ ॥
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरै र्मर्दयेद्दिनं ।
रसः शीतारिनामायं वातश्लेष्मज्वरापहः ॥ ४० ॥

---

१ "केशरो वृतः" इति वा पाठः । २ "कटूफलकटुकावचा" इति वा पाठः ।

द्विगुञ्जंतप्ततोयेन शीतज्वर हरंपरम् ॥

पारा, सुहागा, गन्धक यह सब शुद्ध करके बराबर भाग पारे से दूने जैपाल के शुद्ध बीज छिलके से रहित तथा सेन्धालवण, मरिच इमली की छाल की राख और खाण्ड ये सब पारे के बराबर लेकर पीसे फिर निम्बू के रस से एक दिन मर्दन करे तो यह "शीतारि नामक" रस वातश्लेष्म ज्वर को दो रति मात्रा गरम पानी के साथ देने से शीतज्वर का नाश करता है ॥ ३८—४० ॥

अथपितकफज्वरमाह—

लिप्ततिक्तास्यतातन्द्रामोहः कासोऽरुचि स्तृषा ॥ ४१ ॥
मुहुर्दाहोमुहः शीतं कासहृल्लासविभ्रमाः ।
अक्षिगद श्रमस्तम्भ स्वेद पित्त कफ ज्वरे ॥ ४२ ॥
नाड़ी पित्तकफोद्भूते भीम[1] हंसगतिर्भवेत् ॥
मूत्रश्च पाटलं स्निग्धं मलः पीतारुणःसितः ॥ ४३ ॥
नेत्रेचभेकवर्णाभे मुखं मिष्टं सतिक्तकं ।
जिह्वा सपाटलाज्ञेया शब्दो गम्भीर सुस्फुटः ॥ ४४ ॥
स्पर्शे शीतोष्णता चैव, लंघनं पाचनं जलं ॥
अष्टाभ्यो गुणशेषन्तु कृत्वाशीतंपिवेत्ततः ॥ ४५ ॥

मुख कफ से भरा हो और तिक्त रस होय, तन्द्रा, मोह, खांसी अरुचि, प्यास, फिर २ दाह तथा शीत हो खांसी, उबकाई, भ्रम, नेत्ररोग, थकावट, अंगों का जकड़ना, पसीने का आना यह लक्षण पित्तकफ ज्वर में होते हैं इस ज्वर में नाड़ी की गति मेंढक तथा हंस की होती है तथा मूत्र का रंग लाल और चिकना तथा मल पीत लाल और सफेद होता है। दोनों नेत्र पीले मुख मीठा कटुभाव युक्त तथा जिह्वा लाल जानना शब्द गम्भीर और साफ होता है स्पर्श करने से देह ठण्डा तथा गरम होता है । इस ज्वर में लंघन पाचन करने के लिये दें और पानी अष्टमभाग किया हुआ ठण्डा करके पीना चाहिये ॥ ४१—४५ ॥

पेयादिवर्णनम्—

पटोलयवधान्याक[2] मुद्गामलक चन्दनैः ।

---

१ 'भेक' इति वा पाठः । २ "नवपञ्चक" इति वा पाठः ।

पेया श्लेष्मणिपित्तेच ज्वर तृट् छर्दि दाहनुत् ॥ ४६ ॥
मुस्तापर्पट कैरात निर्यूहेन प्रसाधितः ।
कफपित्तज्वर हरो यूषोधान्यपटोलयोः ॥ ४७ ॥

परवल जौ, धनियां मूंग, आंवला, चन्दन इनकी पेया पित्त कफज्वर में और प्यास, कै, और दाह को हरती है ॥ ४६ ॥

मोथा, पित्तपापड़ा, चिरायता इन के काथ से बनाया हुआ यूष धनियां और परवल से बनाया यूष पित्तश्लेष्म ज्वर को हरता है ४७

अथपाचनम् —

तिक्तारग्वध परोलाब्दैः पाचनंकफपित्तजे ।
पटोली धान्यजोवापिपटोल्यौषधजोपिवा ॥ ४८ ॥
अमृतेन्दुयवारिष्ट पटोलकटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पली चूर्ण संयुतम् ।
अमृताष्टकमित्येतित्पत्तश्लेष्मज्वरापहं ॥ ४९ ॥
हृल्लासारोचकछर्दि तृष्णादाह निवारणम् ।

कुटकी, अमलतास, परवल, मोथा इनका काढ़ा कफपित्त में पाचन है परवल धनिया अथवा परवल सुण्ड अथवा गिलोय इन्द्रजौ, निम्ब, परवल, कौड़ सुण्ड, चन्दन, मोथा इनका काथ मघचूर्ण मिला कर पीने से पित्तश्लेष्म ज्वर को हरता है और उबकाई, अरुचि, छर्दि, तृष्णा और दाह को नाश करता है इसे अमृताष्टक कहते हैं ॥ ४८—४९ ॥

भार्गीस्थिराब्दक व्याघ्री विश्वा गोक्षुरपौष्करैः ।
पित्तश्लेष्मज्वरकासपार्श्वार्त्य रुचिश्वासहृत् ॥ ५० ॥
गुडूची लोहितं शुण्ठी ह्रीवेरकट्फलं निशा ।
कफपित्तज्वरं घोरं कासहृच्छूलनाशनम् ॥ ५१ ॥
पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृताकणाः ।
पित्तश्लेष्मज्वरछार्दिदाह कण्डूविषापहम् ॥ ५२ ॥
पिचुमन्द शोणचन्दनपद्मक पीयूषवल्लरीधान्यैः ।
कफपित्तविजृम्भितोल्वण दाहतृष्णावमिहरंज्वरं जयति ।५३।

भिडंगी, शालपर्णी, मोथा छोटी कटेली, सुएड, भखड़ा, पोहकरमूल इनका काढ़ा पित्तश्लेष्म ज्वर, खांसी, पसवाड़े की पीड़ा, अरुचि, दमे को हरता है। गिलोय लालचन्दन, सुएड, मुष्कबाला, कायफल, हलदी इनका काढ़ा कफपित्त ज्वर को, खांसी को, हृदय के शूल को नाश करता है। परवल, चन्दन, मूर्वा, कौड़, पाठा, गिलोय, मघां, इन का काढ़ा पित्तश्लेष्मज्वर, कै, दाह, खुरक और विष को दूर करता है। निंब, लालचन्दन, पद्मकाष्ट, गिलोय, धनिया, इन का काढ़ा कफपित्त से होने वाले ज्वर को दाह, प्यास, कै, इन रोगों को जीतता है ॥ ५०—५३ ॥

गुडूची बृहती युग्म शठी दार्वी कणावृषैः ।
पटोलनिम्बभूनिम्बैः क्वाथः पित्तकफज्वरे ॥ ५४ ॥
वत्सकं पद्मकाष्ठं च नागरं चन्दनामृते ।
पटोलं धान्यकं चैव क्वाथो मधुसमायुतः ॥ ५५ ॥
कफपित्तं ज्वरं शूलं दाहं हन्त्यंघ्रिपाणिजम् ।
द्राक्षा शम्याक धान्याक कटुकाग्रन्थिमुस्तकैः ॥ ५६ ॥
पक्कं हन्यादुदावर्त्त शूलं पित्तकफज्वरम् ।
नागेन्द्रयवं मुस्तं चन्दनं कटुरोहिणी ॥ ५७ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कषायं तु पिबेन्नरः ।
श्रममूर्च्छाऽरुचिच्छर्दि पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ५८ ॥

गिलोय, दोनों कटेली, कचूर, दारुहलदी, मघ, बांसा, परवल, निंब चिरायता इनसे किया हुआ काढ़ा पित्तकफ ज्वर में हित होता है। कुडासक, पद्माख, सुएड, लाल चन्दन, गिलोय, परवल, धनियां इनका क्वाथ शहतयुक्त पीने से कफपित्त, शूल, दाह को नाश करता है चौथा भाग जल रखा हुआ। मुनक्का, अमलतास, धनियां, कौड़, पिपलामूल, मोथा इनका पकाया हुआ क्वाथ उदरावर्त्त रोग को, पीड़ा को, कफपित्त ज्वर को नाश करता है। नागकेसर, इन्द्र जौं, मोथा, लाल चन्दन, कुटकी, इन के काढ़े में पिपली चूर्ण मिला कर पीने से मनुष्य की थकावट मूर्छा, अरुचि, छर्दि, तथा पित्त श्लेष्म ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ५४—५८ ॥

पटोलं कमलं चैव मुस्तकं रक्तचन्दनं ।

धान्या शुण्ठी उशीरं कटुरोहिणी ॥ ५९ ॥
समभागैः शृतं तोयं सर्वज्वरहरं पिबेत् ।
पित्तासृग्दाह शूलघ्नं कफपित्तविनाशनम् ॥ ६० ॥
यवपद्मक धान्याकं द्वे हरिद्रे च चन्दनम् ।
गुडूचीं देवकाष्ठं च तेजोह्वां स दुरालभाम् ॥ ६१ ॥
क्वाथयित्वा पिबेत्क्वाथं कफपित्तज्वरापहम् ।
पिपासा छर्दि दाहघ्न मामघ्नं वह्निदीपनम् ॥ ६२ ॥

परवल, कमल, मोथा, लाल चन्दन, धनियां, पितपापड़ा, सुण्ड खस, कौड़ इनको समभाग लेकर क्वाथ कर सब ज्वरों के नाश करने के लिए पीवे तथा रक्त पित, दाह, शूल को हरता है और कफ पित्त को नाश करता है। जौं, पद्माख, धनियां, दोनों हल्दी, लाल चन्दन, गिलोय, देवदारु, तेजबल की छाल, धमासा इनको क्वथित करके कफपित्त ज्वर के नाश करने के लिए पीवे यह क्वाथ, प्यास, छर्दि, दाह को नाश करता है आम को दूर करता है अग्नि को बढ़ाता है ॥ ५९—६२ ॥

रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टंकणं तथा ।
चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ ६३ ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः पेयं शीतोदकं पुनः ॥ ६४ ॥
तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र प्रदापयेत् ।
त्रिदिनं श्लेष्मपित्तोत्थ मत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ ६५ ॥

शुद्धपारा, गन्ध, मरिच, सुहागा यह सब समभाग तथा चारों के समान मिश्री मिला कर मछी के पित्ते की भावना देकर तीन दिन मर्दन करे तो यह चन्द्रशेखर दो रत्ती अदरक के रस से सेवन कर पीछे ठण्डा जल पीवे, मट्ठा, चावल और वताऊं पथ्य के लिए दे तो यह तीन दिन में कफ पित से उत्पन्न हुए घोर ज्वर का नाश करता है ॥ ६३—६५ ॥

इतिश्री ज्वरतिमिरभास्करे द्वन्दजज्वर चिकित्सा-
वर्णनोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

त्रिदोषज्वरमाह—

सप्तमः सन्निपाताख्योज्वरश्चैकोयमीरितः ।
तस्य भेदान्पृथग्वक्ष्ये नानाशास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥

सातवां सन्निपात नामक ज्वर एक ही कहा है । उसके भेदों को अनेक शास्त्रों के अनुसार भिन्न २ वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

निदानमाह—

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैश्च कटुमधुरसुरातापसेवा कषायैः ।
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतर पिशिताहार सौहित्यशीतैः ॥ २ ॥
शोक व्यायाम चिन्ता ग्रहगण वनिता ऽत्यन्त संगप्रभावैः ।
प्रायः कुप्यन्ति पुंसां मधुसमय शरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ ३ ॥

अधिक खट्टे, चिकने, गरम, तेज़, कौड़े तथा अति मीठे पदार्थों के सेवन करने से मद्य पीने से, अग्नि सेवन से, विरुद्ध काढ़े पीने से, काम चेष्टा से, क्रोध करने से, अत्यन्त रूखे और भारी पदार्थ मांसादि के खाने से, पेट को भर कर खाने से, शीत लगने से, शोक करने से, अति कसरत से, चिन्ता से, दुष्ट ग्रह की दशा आ जाने से, स्त्री के संग से पैतिक द्रव्यों के अधिक सेवन से, अकसर करके मनुष्यों को बसन्त काल में शरद ऋतु में तथा वर्षाऋतु में सन्निपात का प्रकोप होता है ॥ २—३ ॥

पूर्वरूपमाह—

अकस्माच्छूल विकृतिरकस्माद्वायुरुत्तमः ।
अकस्मादिन्द्रियोत्पतिः सन्निपाताग्रलक्षणम् ॥ ४ ॥

अकस्मात् शूल का हो जाना, अकस्मात् वर्ण, स्वभावादि की विकृति अर्थात् बदलजाना, अकस्मात् वायु का बढ़ जाना, अकस्मात् किसी अंगप्रत्यंग की वृद्धि हो जाना, यह सन्निपात के पूर्व रूप होते है ॥ ४ ॥

सन्निपातज्वरेनाड़ीमाह—

सन्निपातज्वरे नाड़ीसर्वज्वर गतिंगता ।
कालकूटस्य चक्राणां विचित्रगतिसंगिनी ॥ ५ ॥

मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा ।
स्थित्वा स्थित्वा वहति धमनी यातिनाशं च शीघ्रम् ॥
नित्यं स्कन्धे स्फुरति च पुनः ह्यङ्गुलिं संस्पृशेद्वा ।
भावैरेतैर्बहुविधतरैः सन्निपाताद् साध्याः ॥ ६ ॥

सन्निपात ज्वर में नाड़ी सर्व अर्थात् वात पित्त कफ ज्वरों की नाड़ी के लक्षणों की मिली हुई गति के समान होती है काल चक्र के समान विचित्र गति को धारण करती है । मन्द २ शिथिल २ व्याकुलतायुक्त, ठहर २ कर नाड़ी चलती है और कभी जल्दी २ कभी नष्ट हो जाती है । सदा स्कन्ध अर्थात् कन्धे के समीप नाड़ी फड़कती है । अथवा फिर अंगुलियों को स्पर्श करती है इस प्रकार अनेक भाव युक्त चलती हुई सन्निपात से असाध्य होती है ॥५-६॥

सन्निपाते मूत्रादीनां लक्षणम्—

मूत्रं हारिद्रवर्णाभं कृष्णं वा तैल सन्निभं ।
मलः कृष्णः सितः पीतो विबन्धो वाल्पविद्स्रुतिः ॥ ७ ॥
लोचने कलुषे रक्ते निर्भुग्ने स्तिमिते तथा ।
मुखे स्वादं न जानाति ष्ठीवने कफलोहिते ॥ ८ ॥
जिह्वा शुष्कारुणा कृष्णा स्फुटिता कण्टकैर्युता ।
शब्दात्युच्चैः प्रलपनं मौनं वा क्रन्दतेऽपि वा ॥ ९ ॥
स्पर्शे क्षणे क्षणे शीतं दाहश्चापि मुहुर्मुहुः ।

सन्निपात ज्वर में मूत्र हलदी के वर्ण की कान्ति युक्त, काला अथवा तैल के समान होता है । मल-काला, श्वेत, पीत, मल का रुकना अथवा अल्प आना । नेत्र-मलिन, लाल, टेढ़े अथवा अन्दर धसे हुए और जकड़े जाते हैं । मुख में किसी तरह के स्वाद को नहीं जानता, थूकने पर कफ और रक्त निकलता है । जिह्वा सूखी, लाल, काली, फटी हुई कांटों से युक्त होती है । ऊंचे बोलता है वा प्रलाप करता है अथवा चुप हो जाता है वा रोता भी है । स्पर्श करने से क्षण २ में ठण्डा वा फिर दाह युक्त होता है ॥ ७-९ ॥

क्रियाक्रममाह—

कश्चित् क्रियाक्रमं वच्मि शास्त्रेभ्यः शृणु साम्प्रतम् ॥१०॥

---

१ तद्विधिं शृणु-इति पाठान्तरम्

वर्धनैश्चापि हीनस्य हायनैरुच्छ्रितस्य च ।
कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरे क्रियाः ॥ ११ ॥
हीनस्य वर्धनाश्चापि वृद्धानामपि निश्चयः ।
हायनादति वृद्धस्य हीनयोर्वृद्धय संभवः ॥ १२ ॥
ततः समत्वं दोषाणामामस्थानात्कफस्य तु ।
तत्स्थानां क्रियां कुर्यादिति ज्वरचिकित्सितम् ॥ १३ ॥

शास्त्रों से कुछ क्रियाक्रम कहता हूं ध्यान से सुनें। जो दोष-हीन हो अर्थात् क्षीण दोष को बढ़ानेवाले द्रव्यों से तथा बढ़े हुए दोष को क्षीण करने वाले द्रव्यों से अथवा कफस्थान (अर्थात् आमाशय) की शुद्धि के लिये सन्निपात ज्वर में क्रिया करना हित होता है। क्षीण दोष को बढ़ाना और वृद्ध दोष को क्षीण करना चाहिये। दो हीन दोषों की वृद्धि होना असम्भव होता है इसलिये दोषों को समानावस्था में लाना चाहिये। आमाशय से कफ को लंघनादि से जीतना (अर्थात् अन्य दोषों को भी अपने २ स्थान से ही चिकित्सा करना) यही ज्वर की चिकित्सा होती है। यहां कफ स्थान पूर्वक चिकित्सा का विधान किया है क्योंकि अन्यत्र कहा है "यथा-श्लेष्मानिग्रहमेवादौ कुर्य्याद् व्याधौ त्रिदोषजे" इति अर्थात् त्रिदोषज व्याधि में श्लेष्मा के रोकने का ही उपाय करना हित है। परञ्च अन्य तन्त्र में भिन्न ही लिखा है—

यथा तन्त्रान्तरे-"शमयेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु ।
दुर्निवारतमं तद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः। इति

अर्थात् सन्निपात ज्वरों में सर्व प्रथम पित्त को शान्त करना चाहिये क्यों कि वह ज्वर पीड़ित रोगियों में विशेष करके बड़े कष्ठ से दूर किया जाता है।

परञ्च अन्य तन्त्रकार ऐसा कहते हैं। यथा—

वातस्यानुजयेत्पित्तं पित्तस्यानुजयत्कफं ।
त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं योभवेद्बलवत्तमः ।" इति ॥

अर्थात् पहिले वायु को जीत कर पीछे पित्त को जीते। इसके अनन्तर कफ को जीते अथवा तीनों में से जो बलवान् हो उसे पहिले

---

२ 'हानयः' इतिवापाठः ।

जीतना चाहिये। यह केवल अवस्था विशेष पर ही निर्भर होता है। तो इससे सामज्वर में पहिले कफ की चिकित्सा करना ही हित है। आम के पक जाने पर पहिले पित्त को जीते और चिरकालिक ज्वर में पहिले वायु की चिकित्सा करना चाहिये।

यथा चोक्तं तन्त्रान्तरे—

"ज्वरे त्रिदोषजे सामे शमयेत्कफमादितः।
पाकान्तमागते पित्तं चिरजे विषमेऽनिलमिति ॥१०-१३॥

यथा दोषोच्छ्रयं चैव ज्वराञ्छेषामनुपाचरेत्।

शेष ज्वरों को जैसा दोष अर्थात् वात पित्त तथा कफ इनमें से जो दोष बढ़ा हुआ हो उसकी चिकित्सा करे।

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् ॥ १४ ॥
कस्तेन न कृतोधर्मः काञ्च पूजां न सोर्हति।
मृत्तिंजयति युद्धेन दोर्भ्यां तरति सोऽम्बुधिम् ॥ १५ ॥
योवैद्यः सन्निपातार्त्तिं शमंनयति भेषजैः।
सन्निपातार्त्त कालार्त्ति दह्यमानं नरं तुयः ॥ १६ ॥
सञ्जीवयति तेनेह को न धर्मः कृतो भवेत् ॥

जो सन्निपात रूपी समुद्र में डूब हुए मनुष्य का उद्धार करता है उस वैद्य ने कौन सा धर्म नहीं किया? अर्थात् सब धर्मों को किया है और किस पूजा के वह योग्य नहीं? अर्थात् सब पूजाओं के योग्य होता है। युद्ध से जो मृत्यु को जीतता है तथा बाहुओं से समुद्र को तैरता है वह वैद्य सन्निपात से पीड़ित रोगी को औषधियों से शान्ति प्राप्त करा सकता है।

जो वैद्य सन्निपात से दुखित काल की पीड़ाओं से पीड़ित रोगी को जीवन प्रदान करता है उसने कौन धर्म नहीं किया? अर्थात् सब धर्म उसने किये हैं ॥ १४-१६ ॥

दाहे हिमाम्बुनासेकं क्षुधिमांसरसौदनम् ॥ १७ ॥
कम्पे घृतं तृषिजलं शीतं नेष्टं त्रिदोषजे ॥
सर्वेषु सन्निपातेषु नचौद्र मुपचारयेत् ॥ १८ ॥
शीतोपचारिचौद्रं स्याच्छीतं चात्रनिषिध्यते ॥

त्रिदोषज ज्वर में दाह होने पर ठण्डे जल से सेक करना, भूख

लगने पर मांस रस और चावल देना, कांपने पर घृत का प्रयोग, प्यास लगने पर ठण्डा जल, सन्निपात ज्वर में युक्त नहीं होता। सब सन्निपातों में मधु का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि मधु शीत उपचार होता है और शीत चिकित्सा का सन्निपात में निषेध होता है ॥ १७- ८ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते ॥ १९ ॥
भिन्नरूपतया तास्तु न कुर्वन्तिहि दूषणम् ।

तुल्य क्रिया (अर्थात् समान गुण युक्त) औषधियों में क्रिया संकर किया जा सकता है। भिन्न रूप क्रिया होने से क्रिया संकर नहीं कहते। क्योंकि वह दोष कारक नहीं होती ॥ १९ ॥

सन्निपातज्वरोत्पन्नां हिध्मां तन्द्रां निवारयेत् ॥ २० ॥
उपद्रवः कष्टतमे ज्वराणां सविशेषतः ।

सन्निपात ज्वर में उत्पन्न हिचकी तथा तन्द्रा को शीघ्र रोकना चाहिये क्योंकि यह दोनों ज्वरों के विशेष उपद्रव होते हैं ॥ २० ॥

असाध्यः सर्वरूपोऽसौ कृच्छ्रसाध्योऽल्पलिंगकः ॥ २१ ॥
धार्मिकस्य धनाढ्यस्य साध्यःस्यात्पूजितोग्रहः ।

सर्व लक्षणों से युक्त सन्निपात असाध्य होता है तथा जिसमें थोड़े लक्षण हों वह कष्ट साध्य होता है। और धर्म युक्त तथा धनी पुरुष का सन्निपात साध्य होता है जिसने ग्रह (सूर्यादि) की पूजा की हो ॥ २१ ॥

उष्णोपसेवासततं सन्निपाते प्रशस्यते ॥ २२ ॥
वर्जयेच्चदिवास्वप्नं धृतिं सत्वं समाश्रयेत् ॥

निरन्तर सन्निपात में उष्ण द्रव्यों का उपयोग अच्छा होता है इसमें दिन का सोना छोड़ देना चाहिये और धैर्य तथा बल की रक्षा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादाम कफापहम् ॥ २३ ॥
पश्चाच्छ्लेष्मनि संक्षीणे नाशयेत्पित्तमारुतौ ।
निस्तर श्लेष्मणि ह्यस्य स्रोतः सुद्धाटितेषुच ॥ २४ ॥
लाघवंजायतेसद्यः तृष्णाचैव प्रशाम्यति ।
लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं ष्ठीवनं तथा ॥ २५ ॥

अवलेहाञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥

सर्व प्रथम सन्निपात ज्वर में आम कफ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये। पीछे कफ के क्षीण होने पर पित्त और वायु का नाश करे। कफ के निकल जाने पर और स्रोतों के खुल जाने पर शीघ्र हलकी देह हो जाती है और प्यास भी शान्त हो जाती है। सन्निपात ज्वर का उपक्रम कहते हैं—लंघन कराना, रेत से स्वेद (पसीना) देना, नसवार, थूक आने वाली औषधि का प्रयोग करना और चटनी देना, अंजन (सुरमा) लगाना आदि त्रिदोषज ज्वर में यह सब पहिले ही प्रयुक्त करना चाहिये ॥२३-२५॥

लंघनमाह—

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ॥ २६ ॥
लंघनं सन्निपाते तु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ।

तीन रात्र पांच रात्र अथवा दश रात्र तक सन्निपात में लंघन कराना चाहिये जब तक आरोग्यता का दर्शन न हो (अर्थात् वातोल्वण में तीन दिन पित्तोल्वण में पांच दिन और कफोल्वण सन्निपात में दश दिन तक लंघन करायें जब नीरोग दिखाई दे) ॥२६॥

स्वेदनमाह—

वालुकाखर्परेभृष्टा काञ्जिकाप्लापटावृता ॥ २७ ॥
हन्ति स्वेदो वातकफं शिरः शूलाङ्गवेदनाम् ॥

रेत को मिट्टी के खपरे में भूनकर काञ्जि से सिक्त करके कपड़े में लपेट कर स्वेद वात कफ को दूर करता है और शिर के शूल और अंगों की पीड़ा का नाश करता है ॥ २७ ॥

नस्यमाह—

सुरसार्जक निर्यासो समधुव्योष सैन्धव ॥ २८ ॥
महा श्लेष्मनिलोद्रेक संज्ञानाश प्रबोधनम् ॥

तुलसी, सफेद तुलसी की छाल मधु, मघां मिरच, सुण्ड, लवण इन औषधियों को पीसकर नस्य लेने से अत्यन्त कफाधिक्य तथा वायु के वेग का नाश करता है और संज्ञा को प्रबोधित करता है ॥ २८ ॥

---

१ 'मोह' इतिवापाठः ।

मधूकसार सिन्धूत्थवचोषणकणा समा ।
श्लक्ष्णे पिष्टांभसानस्यं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ २६ ॥

नस्यार्थरसमाह—

रसगन्धक तुल्यांशं धत्तूर फलजैद्रवैः ॥
मर्दयेद्दिनमेकन्तु तत्तुल्यं त्रिकटुं क्षिपेत् ।
उन्मत्ताख्यो रसोऽयं हि नस्येस्यात्सन्निपातजित् ॥ ३० ॥

महुए का रस, लवण, वच, मरिच, मघ, यह सम पीस कर नस्य दे तो संज्ञा हो जाती है । पारा, गन्धक समभाग लेकर धतूरे के फल के रस में एक दिन मर्दन कर और उसके बराबर मघ, मिरच, सुण्ड मिलाने से यह उन्मत्त नाम वाले रस का नस्य लेने से सन्निपात दोष को जीतता है ॥ २९–३० ॥

प्रधमननस्यमाह—

फलं बृहत्याः सकणं सविश्वं चूर्णितंमुहुः ।
घ्राणे प्रधमनं कुर्य्याच्चेष्टाक्षवथु बोधनम् ॥ ३१ ॥

कण्टकारी के फल, मघ और सुण्ड के साथ चूर्ण करके नासा में पुनः नस्य लेने से चेष्टा और छिक्का को लाने वाली होती है ॥३१

कवलग्रहमाह—

आर्द्रक स्वरसो पेतं सैन्धवं कटुकत्रयम् ।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्चमुहुर्मुहुः ॥ ३२ ॥
तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मामन्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्कोलाघवंचास्यजायते ॥ ३३ ॥
पर्वभेदोज्वरोमूर्छा निद्राश्वास गलामयः ।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ ३४ ॥
सकृद्द्विस्त्रिश्चतुष्कुर्य्याद् दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
एतद्धिपरमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ ३५ ॥

अदरक का रस लवण तथा मघ, मिरच, सुण्ड मिलाकर कण्ठ तक मुख में धारण कर पुनः २ थूके तो इससे हृदय मन्या-नाड़ि पसली सिर, और गले आदि से लीन तथा सूखी हुई कफ भी निकलती है और देह का हलकापन होता है । पर्वों का टूटना

ज्वर, मूर्छा, निद्रा, श्वास और गले के रोग तथा मुख, नेत्रों की गुरुता तथा जड़ता—उबकाई आदि सब शान्त होते हैं यह बार २ दो तीन वा चार बार दोष के बलाबल को देखकर करना चाहिये। यह सन्निपात रोगों के लिये अत्यन्त उत्तम औषध कही है॥३२-३५॥

निष्ठीवनम्—

त्रिकटु चविकापथ्या दूर्वा सैन्धव संयुतम्।
तेनदन्तास्तथाजिह्वांवर्षयेत्तालुकं तथा॥ ३६॥
निष्ठीवनं गलेशुद्धीं रुचिकृत्कफसूदनम्॥
हृल्लासो नाशमाप्नोति पटुत्वं लभतेनरः॥ ३७॥

मघ, मिरच, सुण्ड, चाभ, हरड़, दूबघास, लवण, यह सब मिलाकर इस से दान्तों तथा जिह्वा और तालु को मले तो गले की शुद्धि होती है रुचि को करता है कफ का नाश करता है उबकाई नष्ट हो जाती है और मनुष्य को चतुरता आजाती है॥३६-३७॥

अवलेहमाह—

कट्फलं पुष्करं शृङ्गी व्योषं यासंच कारवी।
श्लक्ष्णं चूर्णी कृतं चैतन्मधुनासहलेहयेत्॥ ३८॥
एषाऽवलेहिका हन्ति सन्निपातान् सुदारुणान्।
हिक्कांश्वासश्च कासञ्च कण्ठरोगंचनाशयेत्॥ ३९॥
एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णं मार्द्रकजै रसैः।
ऊर्ध्वजत्रुजरोगघ्नी सायंकार्याऽवलेहिका॥ ४०॥
अधोरोग हरा या तु प्रातः कार्य्याऽवलेहिका।

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, मघ, मरिच, सुण्ड, जवासा, अजवायन इनका बारीक चूर्ण कर शहत के साथ चाटे। यह चटनी दारुण सन्निपात को हिचकी, दमा, खांसी और कण्ठ के रोग को नसाती है यह कफ की अधिकता में अदरक के रस के साथ प्रयोग करना चाहिये। ऊर्ध्वजन्तुगत (अर्थात् कान, नासिका, मुख आदि) रोगों में सायंकाल प्रयोग की हुई लाभदायक होती है। नीचे के रोगों के लिये प्रातःकाल यही चटनी देनी चाहिये॥३८-४०॥

आर्द्रकस्वरसोपेत्तं सैन्धवं कटुकत्रयम्॥ ४१॥
प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यं हि मरिचेन वा।

अदरक के रस के साथ लवण मघ, मरिच, सुण्ड मिलाकर संज्ञा नाश के लिये मुख में रखे अथवा मरिच का चूर्ण नासा में दे तो प्रबोधन होता है ॥ ४१ ॥

अञ्जनमाह—

शिरीषबीज गोमूत्र कणामरिच सैन्धवैः ॥ ४२ ॥
अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोन शिला वचैः ।

सरीह के बीज गोमूत्र, पीपल, मरिच, लवण इन को पीस कर अञ्जन करने से प्रबोधन होता है अथवा लसुन मनसिल, वच इन से अञ्जन किया जाये तो प्रबोधन होता है ॥ ४२ ॥

उच्छुष्कां स्फुटितां जिह्वां द्राक्षयामधुपिष्टया ॥ ४३ ॥
लेपयेत्साज्यया चास्य सन्निपातात्मकेज्वरे ॥

जिह्वाशोषेहेतुमाह—

यदास्वल्पानिलकफौ तालुक्लोमगतौ श्रितौ ।
कुर्यात्तामधिकं शोषं जिह्वायाः खरतां तथा । घर्षे जिह्वां जड़ां सिन्धु त्र्यूषणै र्ह्याम्लवेतसैः ॥ ४४ ॥

जब अल्पभाव में वात तथा कफ तालु और क्लोम में जाकर ठहर जांय तो जिह्वा को सूखा कर खरदरी कर देते हैं। जो उसे लवण और त्रिकुटे में अम्ल वेसत मिलाकर रगड़ना चाहिये ॥४४॥

यदि जिह्वा सूख जाये, फट जाये, तो मुनक्का, शहत में पीस कर घृत के साथ मिलाकर लेप कर सन्निपात ज्वर में दें तो हित होता है ॥ ४३ ॥

अथोद्धूलनमाह—

सजीर कृष्णा कटुतुम्बधूर्त्त बबूलपत्रासितजीरकोग्रैः ॥४४॥
हरीतकीकट्फलरुक्कुलत्थैरुद्धलनं स्वेदमपाकरोति ।
आकल्लकं विषं कृष्णा हेम कट्फल भस्मकम् ॥ ४५ ॥
एकैकं ह्यष्टभागैस्तु धूलनं स्वेदशैत्यहृत् ॥

सफेद जीरा, पिपली, कौडी तुंबी, धतूरा, बबूल के पत्ते, काला जीरा बच, हरड़, कायफल कुठ कुलत्थी, इनका चूर्ण कर शरीर पर मलने से पसीने को दूर करता है।

अकरकरा, विष, पिपली, धतूरा, कायफल, जंगली गोहे की

भस्म एक २ औषध आठवां भाग लेकर देह पर छिड़कने से पसीनें और ठण्डक को हरती है ॥ ४५ ॥

अथ दाहशमनमाह—

प्रशमयति हि दाह माचिराद्बन्धूर कर्कन्धुपल्लवैर्लेपः ४६
फेनोत्थ विमलमलयज रसमिश्रोऽरिष्टजं सपदि ॥

तिल कल्क, वेर के पत्तों का लेप दाह को शीघ्र नाश कर देता है तथा रीठे की झाग में चन्दन मिलाकर लेप करने से शीघ्र दाह दूर होता है ॥ ४६ ॥

मूर्च्छानाशनमाह—

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह संसृजेत् ॥ ४७ ॥
विश्वभेषजं संयुक्तं मधुना सह लेपयेत् ॥
तेनाशु शाम्यते मूर्च्छा कासः श्वास स्तथैवच ॥ ४८ ॥

आमलों को भिगोकर मुनक्के के साथ मिलाकर पीस उसमें सुण्ड और शहत मिलाकर सन्निपात रोगी को चटाये तो उससे शीघ्रमूर्छा और कास, श्वास दूर होते हैं ॥ ४८ ॥

तन्द्रा नाशनमाह—

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपः कुष्ट मेवच ।
वत्समूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रा निवारणम् ॥ ४९ ॥

सैन्धा लवण, सफेद मरिच, सरसों, कुठ इनको गौके बछड़े के मूत्र में पीसकर नस्य देने से तन्द्रा निवारण होता है ॥४९॥

अन्यच्च—

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन वा ।
प्रमेहं दारुणं हन्ति तन्द्रा कास समन्वितम् ॥ ५० ॥

अष्टाङ्ग अर्थात् कायफल, कुठ, काकड़ासिंगी, सुण्ड, पिपली, मरिच, धमासा, काला जीरा, यह आठ औषध अदरक के रस के साथ चाटने से दारुण प्रमेह को हरता है तन्द्रा जो कास सहित हो उसे भी नसाता है ॥ ५० ॥

सन्निपाते जलविधानम्—

जल मष्टावशेषं तु लंघनं प्रागुदीरितम् ।
शस्तं सुलंघितस्यादौ मण्डयूषैरुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

पाचनोदीपनो लाजमण्डस्तेनोष्णमिष्यते।
अतोऽयं दशमूलादि साधितो भेषजां मतः ॥ ५२ ॥

सन्निपातज्वर में अष्टमांशजल देना हित होता है । लंघन पहिले कह आये हैं। भली प्रकार लंघित रोगी को पहिले मण्ड तथा यूष से उपचार करे लाजा मण्ड दीपन और पाचन है इससे उष्ण ही अच्छा होता है इस लिए दशमूलादि औषधियों से सिद्ध किया हुआ देना युक्त मानते हैं ॥ ५१-५२ ॥

पञ्चमुष्टिक यूषमाह—

यवकोल कुलत्थानां मुद्गमूलकशुष्कयोः ।
एकैकं मुष्टिमाहृत्य पचे दष्ट गुणे जले ॥ ५३ ॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष वात पित्त कफापहः ।
शस्यते गुल्म शूले च कासे श्वासे ज्वरक्षये ॥ ५४ ॥

जौं, बेर, कुलत्थी, मूंगी, सूखी मूली इनकी एक २ मुष्टि भर लेकर आठगुना जल में पकाना, यूष तैयार हो जाने पर देने से यह पञ्च-मुष्टिक यूष वातपित्त कफ को हरता है और गुल्म रोग, शूल, कास, श्वास, ज्वर और क्षय को हरता है ॥ ५३—५४ ॥

सप्तमुष्टिकमाह—

अयंच विश्वधान्याक युक्तः स्यात्सप्तमुष्टिकः।
पूर्वोक्त कृतविशेषेण सन्निपातज्वरापहः ॥ ५५ ॥
सन्निपातेऽमृताविश्व भूनिम्बाब्दैस्तुपाचनम् ।
पिप्पली चूर्ण सहितं पञ्चमूलद्वयस्यच ॥ ५६ ॥

यह पञ्चमुष्टिक यूष तथा इन में सुण्ड, धनियां मिलाने से सप्तमुष्टिक कहाता है यह पहले कहे हुए सब रोगों को हरता है विशेष करके सन्निपात ज्वर को हरता है ।

सन्निपात में गिलोय, सुण्ड, चिरायता, मोथा इनका क्काथ पाचन होता है और दशमूल का क्वाथ पिप्पली चूर्ण मिला कर देने से भी पाचन होता है ॥ ५५—५६ ॥

त्रयोदश सन्निपातानाह—

एकोल्बणास्त्रयस्तेषु द्व्युल्बणाश्चतथेतिषट् ।
त्र्युल्बणश्चभवेदेको विज्ञेयः स तु सप्तमः ॥ ५७ ॥

प्रवृद्ध मध्यहीनैस्तु वातपित्त कफैश्चषट् ।
विस्फारकः शीघ्रकारी पुंफणी विधु संज्ञकः ॥ ५८ ॥
मकरीः फल्गुवैदारि कर्ण कर्कोटकाह्वयः ।
सम्मोहो याम्य क्रकचः पाकलाः कूट पाकलाः ॥ ५९ ॥

एकोल्वण (अर्थात् वातोल्वण, पित्तोल्वण, कफोल्वण यह तीन) तथा दो दोषों के अधिक होने पर द्व्युल्वण (अर्थात् वात पित्तोल्वण, पित्तकफोल्वण वातकफोल्वण,यह तीन दोनों मिलकर छः हुए) और तीनों दोषों की वृद्धि होने से एक, सब मिला कर सात भेद हुए। तथा वृद्ध वात, मध्य पित्त, हीन कफ। वृद्ध पित्त, मध्य कफ, हीन वात, वृद्ध कफ, मध्य वात, हीन पित्त इत्यादि क्रम से छः सन्निपात हुए जिनके नाम क्रम से इस प्रकार हैं—विस्फारक, शीघ्रकारी, पुंफणी जिसे कम्फणी भी कहते हैं। विधु, मकरी, फल्गु, वैदारिकर्ण, कर्कोटक नामक, सम्मोह, याम्य, क्रकच, पाकल, कूटपाकल, यह तेरह भेद हैं ॥ ५७—५९ ॥

अन्यच्च—

केचिच्चसन्निपातां स्त्रयोदशाहुश्चयोत्कटैः ।
उत्कृष्ट मध्यहीनैश्च केचिद्द्वित्रिक भेदेन ॥ ६० ॥
सन्धिगान्तक रुग्दाह चित्तविभ्रम कर्णकाः ।
कण्ठ कुब्जक शीतांग तन्द्रिकाः सप्रलापकाः ॥ ६१ ॥
रक्तस्रावी भुग्न नेत्रोऽभिन्यासो जिह्विका भिधः ।

कोई आचार्य संचित तथा वृद्ध दोषों करके तेरह प्रकार के सन्निपात कहते हैं और कई वृद्ध मध्य, हीन दोषों से दो तीन आदि के भेदों से वर्णन करते हैं जिनका नाम यह है। सन्धिक, अन्तक, रुग्दाह, चित्त विभ्रम, कर्णक, कण्ठकुब्ज, शीतांग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तस्रावी, भुग्न नेत्र, अभिन्यास, जिह्विक नाम वाला ॥ ६०—६१ ॥

अन्यच्च—

एकै कैः सुतरां क्षीणैः पुन द्वाभ्यां तथाचषट् ॥ ६२ ॥
सुमध्य क्षीण हीनैः षट् तुल्य क्षीणै स्त्रयोदश ।

एक दोष के क्षीण होने पर तीन फिर दो क्षीण होने पर तीन

यह छः हुए मध्य, क्षीण तथा हीन होने से छः भेद हुए तुल्य क्षीण होने से एक इस प्रकार तेरह सन्निपात हुए ॥ ६२ ॥

अन्यच्च—

अन्तर्दाहो दन्तपातोऽन्तरा च कुम्भीपाकः पौर्णनावप्रलापी ।
एणी दाहो भूतहासोऽजघोषो हारिद्रः संशोषि संन्यास संज्ञौ ६३
यन्त्रापीड़ः चेत्यमी सन्निपाताः ख्याताःपूर्वंसुश्रुतेन स्वतन्त्रे ।
एकोन चत्वारिंशानां लक्षणं सचिकित्सितं ।
वक्ष्येहं सन्निपातानां क्रमाच्छास्त्रानुसारतः ॥ ६४ ॥

अन्तर्दाह, दन्तपात, अन्तरा, कुम्भी पाक, पौर्णनाव, प्रलापी, एणीदाह, भूतहास, अजघोष, हारिद्र, संशोषी, संन्यास, यन्त्रापीड़ यह तेरह सन्निपात सुश्रुत ने पहिले वर्णन किये हैं। यह सब मिला कर उनतालीस सन्निपात लक्षण और चिकित्सा सहित क्रम से शास्त्र के अनुसार कहते हैं ॥ ६३—६४ ॥

विस्फारक लक्षणं यथा—

वातोल्वणः सन्निपातो नाम्ना विस्फारकः स्मृतः ।
तस्मात्तृष्णाज्वरग्लानि पार्श्वरुक् दृष्टि संक्षयः ॥ ६५ ॥
पिण्डिको द्वेष्टनं दाह उरुसादो बलक्षयः ।
स रक्तं चास्य विण्मूत्रं शूलं निद्रा विपर्ययः ॥ ६६ ॥
निर्भिद्यते गुदश्चास्य वस्तिश्च परि दुष्येति ।
आमूर्च्छ्यते[1] भिद्यते च हिक्कते विलपत्यपि ॥ ६७ ॥
मूर्च्छते गायते रौति सन्निपात सुदारुणः ।

वाताधिक सन्निपात का नाम विस्फारक कहा है इससे प्यास, ज्वर ग्लानि अर्थात् शरीर का गीलापन, पसवाड़ों में पीड़ा, दृष्टि का नाश, पिण्डियों में लपेटने सरीखी पीड़ा, दाह ऊरु में कष्ट, बल का नाश, इसके मलमूत्र रक्तसहित हो, मूत्राशय में दाह, निरन्तर मूर्च्छा, भेद (फटने सी पीड़ा) हिचकी, विलाप भी करता है, पुनः २ मोह को प्राप्त होता है, रोता है यह सन्निपात भयंकर होता है ॥ ६५—६७ ॥

---

१ "आयम्यते" इति वापाठः । २. दुयति इति वा पाठः ।

चिकित्सामाह—

वाताधिके सन्निपाते दशमूलं प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥
विल्वाग्निमंथ श्योनाक काश्मरी पाटला स्थिरा ।
त्रिकण्ठके पृष्टपर्णी बृहती कण्ट कारिका ॥ ६९ ॥
दशमूलमिदं ख्यातं सन्निपातज्वरार्हं ।
अविपाकानिलश्लेष्मतन्द्रा पार्श्वार्त्ति कासजित् ॥ ७० ॥
पिप्पली चूर्ण संयुक्तं कास हृद्ग्रहनाशनम् ।
समस्तं पञ्चमूलं तु दद्याद्वातोत्तरे ज्वरे ॥७१॥
भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वादोषवलाबलम् ।

जिस सन्निपात में वात अधिक हो उसमें दशमूल के क्वाथ का प्रयोग करे। (बिल्व, अरनी, श्योनाक, खम्भारी, पाढ़ल, शालपर्णी, भखड़ा, पृष्टपर्णी, बड़ी कण्डयारी, छोटी कटेरी, यह दशमूल कहाता है) और सन्निपात ज्वर को हरता है तथा भोजन के न पचने को वात तथा कफ को, तन्द्रा, पार्श्व की पीड़ा तथा कास को जीतता है यह दशमूल पिप्पली चूर्ण मिला देने से वाताधिक ज्वरी को देना चाहिये, अत्यन्त गरम किया हुआ अथवा थोड़ा गरम दोष के बलाबल को देखकर देना चाहिये ॥६८—७१॥

शीघ्रकारी ज्वरमाह—

पित्तोल्वणः सन्निपातः शीघ्रकारी प्रबाधकः ॥ ७२ ॥
तस्मिन् दाहो ज्वरोघोरो वहिरन्तश्च वर्धते ।
पीतविण्मूत्रतामूर्च्छा स्वेदः स्याद्बलसंक्षयः ॥ ७३ ॥
शीतं संसेव्यमानस्य कुप्यतः कफमारुतौ ।
ततश्चैनं प्रबाधन्ते हिक्काश्वास प्रमीलकाः ॥७४॥
विषूचिका पर्वभेदः प्रलापो गौरवं क्लमः ।
नाभिपार्श्वरुजा वृद्धि रस्विन्नस्य प्रवर्धते ॥ ७५ ॥
स्विद्यमानस्य रक्तश्च स्रोतोभ्यः संप्रवर्तते ।
शूलेनपीड्यमानस्य तृष्णाश्वासश्च जायते ॥ ७६ ॥
नहिजीवत्यहोरात्र मेतेनाविष्ट विग्रहः ।

पित्त के अधिक होने से शीघ्रकारी सन्निपात से बाधित होता है इस में दाह, ज्वर, घोर, बाहर और भीतर बढ़ता है, मलमूत्र पीले होते हैं। मूर्च्छा हो पसीना हो, बल का नाश हो इस ज्वर में पित्त की अधिकता जानकर यदि शीत चिकित्सा की जाए तो कफ और वायु कुपित होकर तब इसे हिचकी, श्वास, नेत्र मिलने से बाधा होती है, विषूची (हैजा) पुरवों का टूटना, प्रलाप, देह भारी, बिना श्रम के थकावट, नाभि, पार्श्व इनमें पीड़ा की वृद्धि हो जाती है जिसको पसीना न आवे। यदि स्वेद दिया जाय तो स्रोतों द्वारा (नाक, मुख आदि से रक्त चलने लगता है। शूल से पीडित हुए का तृष्णा और श्वास बढ़ जाता हैं। इस शीघ्रकारी ज्वर से युक्त पुरुष एक दिन रात्रि तक नहीं जीता ॥ ७२–७६ ॥

चिकित्साक्रममाह—

जलौकाभिरसृक्स्रावो लेपः शोणितनाशनः ॥ ७७ ॥
पित्तोल्वणे सन्निपाते क्वाथः शट्यादि को हितः ।

शट्यादिगणः—

शठीपुष्कर मूलं च गुडूची विश्वभेषजम् ॥ ७८ ॥
तिक्तकं त्रायमाणाच पिप्पली स दुरालभा ।
व्याघ्री पर्पटकं रास्ना अभयाकटुरोहिणी ॥ ७९ ॥
देवदारुवचाभार्गी समभागानि कारयेत् ।
एषशट्यादिको वर्गः सन्निपात ज्वरापहः ॥ ८० ॥
कासं श्वासं दिवा निद्रां रात्रौ जागरणं तथा ।
मुखशोषं तथा दाहं त्रिदोषं च नियच्छति ॥ ८१ ॥

पित्ताधिक सन्निपात में जोंक लगाकर रक्त निकालना तथा शोणित को शान्त करने वाले लेप का लगाना हित है और शठी आदि औषधियों का क्वाथ दोषों के पाचन होने पर पिलाना हित होता है।

कचूर, पोहकरमूल, गिलोय, सुण्ड, कौड़, त्रायमाणा, मघ, धमासा, कटेरी, पित्तपापड़ा, रायसन, हरड़, कुटकी, देवदार, वच, भार्गी, यह सब औषध समान भाग लेकर क्वाथ कर पीवे तो यह शट्यादि वर्ग सन्निपातज्वर, खांसी, दमा, दिन में नींद का आना,

रात्रि को नींद का न आना, मुख का सूखना, दाह तथा त्रिदोष को दूर करता है ॥ ७७-८१ ॥

मुस्तादि वर्गः—

मुस्तपर्पटकोशीर देवदारु महौषधं ।
त्रिफलं धान्यकं चैव नीली कंपिल्लकं त्रिवृत् ॥ ८२ ॥
किरातं तिक्तकं पाठा चण्डा कटु करोहिणी ।
मधुकं पिप्पली मूल मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ८३ ॥
पित्तोत्तरे सन्निपाते मन्यास्तम्भे शिरोग्रहे ।
ऊरुस्तम्भ शिरश्शूलं हन्त्येषोऽष्टादशाङ्ककः ॥ ८४ ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, देवदार, सुण्ड, हरड़, बहेड़ा, आंवला धनियां, नील दे पत्ते, कंबीला, तिरवी, चिरायता, पाठा, शंखाहुली, कुटकी, मुलहठी, पिपलामूल यह मुस्तादि गण कहाता है पित्ताधिक सन्निपात में, मन्यास्तम्भ में, शिर के जकडने पर, ऊरु स्तम्भ रोगों में लाभदायक तथा शिर दर्द को नाश करता है यह अष्टादशाङ्ग संज्ञा वाला गण भी कहाता है ॥ ८२-८३ ॥

पुष्कलमाह—

कफोल्वणः सन्निपातोनाम्ना पुष्कलकाभिधः ।
कामान्मोहाच्च लोभाच्चभयाच्चापि प्रपद्यते ॥ ८५ ॥
तस्य शीत ज्वर स्वप्न गौरवालस्य तन्द्रयः ।
छर्दि मूर्च्छा तृषा दाह श्रमारोचक हृद्ग्रहाः ॥८६॥
ष्ठीवनं मुखमाधुर्य श्रोत्र वाग् दृष्टि निग्रहः ।
हृल्लासश्चारतिर्भ्रान्तिः कासश्वासस्तथैव च ॥ ८७ ॥
अथात्र स्नाति भुंक्ते च त्रिरात्रं सहिर्जीवति ।
मेदोगतस्त्वयं साक्षात्कालरूपइवापरः ॥ ८८ ॥

कफाधिक सन्निपात का नाम पुष्कल कहा है यह काम से मोह से भय से भी उत्पन्न हो जाता है शीत ज्वर, निद्रा का होना अंगों का भारीपन, आलस्य, तन्द्रा, कै का आना, मूर्च्छा तथा दाह थकावट, अरुचि, हृदय में पीड़ा, थूकें आना, मुख मीठा, कान जिह्वा, नेत्र इनका रुकना, उबकाई, मन का न लगना, भ्रम, कास,

श्वास आदि हो जाते हैं । इस ज्वर में स्नान करने से तीन दिन तक जीता है यह मेदा में होने वाला ज्वर साक्षात् कालरूप ही होता है ॥ ८५-८८ ॥

कफाधिके सन्निपाते बृहत्यादि प्रयोजयेत् ।
बृहत्यौ पुष्करं भार्गी शठी शृंगी दुरालभा ॥ ८९ ॥
वत्सकस्य च वीजानि पटोल कटुरोहिणी ।
बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ॥ ९० ॥
कासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेषु च ।
कफोत्तरे बृहत्यादि गणो वा दशमूलयुक् ॥ ९१ ॥
बीजपूरार्द्रकरसः कणा सैन्धवसंयुतः ।
सन्निपातरुजा श्वास कास गुल्माग्निमांद्यजित् ॥ ९२ ॥

कफाधिक सन्निपात में बृहती आदि औषधियें प्रयुक्त करें । बृहती (कटेरी बड़ी), पोहकरमूल, भिडंगी, कचूर, काकड़ासिंगी, धमासा, कुडा के बीज, परवल के पत्ते, कुटकी यह बृहत्यादिगण कहा है सन्निपात ज्वर को हरता है । कासादि सर्व उपद्रवों युक्त ज्वर में हित है । कफाधिक सन्निपात में बृहत्यादि गण वा दशमूल मिलाकर विजौरा और अदरक का रस मद्य तथा लवण मिलाकर दिया हुआ सन्निपात को दमा, कास, गुल्म, अग्निमन्द को हरे ।

द्वन्दज—

वातपित्तोल्वणैर्दोषैः सन्निपातो विधुर्मतः ।

विधुमाह—

तेनज्वरोमदस्तृष्णा मुखशोष प्रमीलिकाः ॥ ९३ ॥
आध्मानारुचि तन्द्राश्च कासश्वासभ्रमाःश्रमः ।
शिरो रुग्गौरवं दाहः सज्ञेयो लक्षणैरिमैः[1] ॥ ९४ ॥

वातपित्त इन दो दोषों के अधिक होने से विधु सन्निपात कहाता है उस से ज्वर, मद, प्यास, मुख का सूखना, नेत्रों का मिलना अफारा, अरुचि, तन्द्रा और कास, श्वास, भ्रम, थकावट, सिर में पीड़ा, अंगभारी, दाह आदि लक्षणों से जानना चाहिये ॥ ९३-९४ ॥

---

१ इदमत्रतृतीया बहुवचने एभिः इति रूपानिष्पत्तेः " लक्षणैरिह " इति पाठः शुद्धः ॥

चिकित्सा—

दशमूली शठी रास्ना पौष्करो ग्रामृतौषधा।
त्रायन्ती कटुकाभार्गी पाठोशीर किरातकम् ॥ ९५ ॥
धन्वयासं त्रिवृन्मुस्ता त्वभयादारुपर्पटं।
यष्ठि सगंधिकाकाथो हन्त्येषविधुसंज्ञकम् ॥ ९६ ॥

दशमूल, कचूर, रायसनं, पोहकरमूल, वच, गिलोय, सुण्ड, त्रायमाण, कुटकी, भिंडगी, पाठा, खस, चिरायता, धमासा, तिरवी नागरमोथा, हरड़ देवदारु, पित्तपापड़ा, मुलहठी, अजमोद इनका क्वाथ विधु सान्निपात को नाश करता है ॥ ९५–९६ ॥

मकरी—

श्लेष्मवातोल्वणैः सन्निपातस्तुमकरी स्मृतः।
तस्माच्छीतज्वरो निद्राक्षुतृष्णाश्वाससंग्रहः ॥ ९८ ॥
शिरोगौरवमालस्य मन्यास्तम्भप्रमीलिका।
उदरं दह्यतेचास्य कटिवस्तिश्चदूयते ॥ ९८ ॥
सन्ध्यस्थि शिरसः शूलं प्रलापोगौरवं भ्रमः।

चिकित्सा—

दशांघ्रि पौष्करं भार्गी पटोल कटुरोहिणी ॥ ९९ ॥
दुरालभाशठीशृंगी क्वाथोऽयं मकरींजयेत् ॥

कफवात की अधिकता से मकरी सन्निपात कहा है इससे शीत ज्वर, निद्रा का आना, भूख, प्यास, श्वास इनका रुकना, सिर भारी आलस्य, मन्यास्तम्भ, प्रमीलिका आदि उपद्रव होते हैं तथा इस रोगी का पेट जलता है, कमर और मूत्राशय में दाह होता है सन्धि, अस्थि, सिर में पीड़ा, प्रलाप अंगभारी और भ्रम होता है।

दशमूल, पोहकरमूल, भिंडगी, परवल के पत्ते, कुटकी, धमासा कचूर, काकड़ासिंगी इनका क्वाथ मकरी सन्निपात को हरता है।

फल्गुमाह—

पित्तश्लेष्मोल्वणोयः स्यात्सफल्गुसान्निपाततिः ॥ १०० ॥

---

२ "बला" इति वा पाठः ॥

अंतर्दाहो वहिः शैत्यं तस्मिंस्तन्द्रा प्रबाधते ।
तुद्यते दक्षिणं पार्श्वमुरः शीर्षगलग्रहः ॥ १ ॥
निष्ठीवेत्कफपित्तं च तृष्णा कण्ठश्च दूयते ।
विड्भेदश्वासहिक्काश्च बाधन्ते सप्रमीलिकाः ॥ २ ॥
छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहार्ति वेदना ।

पित्त कफाधिक जो हो वह फल्गु सन्निपात जानना । उसमें अन्दर दाह बाहिर शीत होता है उसमें तन्द्रा बाधा करती है दाहिने पसवाड़े में सुई चुभाने सरीखी पीड़ा होती है, छाती, सिर और गल में ग्रह अर्थात् पीड़ा हो, कफ पित्त को थूके, प्यास, कण्ठ में दाह, मल फटा हुआ, दमा हिचकी, नेत्र बन्द होते जायें, वमन, शीत, तथा दाह फिर २ हो, प्यास, मोह इनकी पीड़ायों से पीड़ित हो ॥१००—१०२ ॥

चिकित्सा—

किरातकौषधोशीर पुष्करं कटुकामृता ॥ ३ ॥
पाठा भार्गी क्षुद्रिके द्वे यष्टि शृंगी दुरालभा ।
साभयेन्द्रयवं रास्नापटोलं ग्रन्थिदारु च ॥ ४ ॥
पर्पटं कटफलैर्युक्तं क्वाथोऽयं फल्गुकापहः ।

चिरायता, सुण्ड, खस, पोहकरमूल, कुटकी, गिलोय, पाठा भार्गी, दोनों कटेरी, मुलहठी, काकड़ासिंगी, धमासा, हरड़, इन्द्रजौ रासना परवल के पत्ते, पिपलामूल, देवदारु, पित्तपापडा, कायफल इनसे किया हुआ काढ़ा फल्गु सन्निपात को जीतता है ३-४

वैदारिकर्णमाह--

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातपित्तकफैः क्रमात् ॥ ५ ॥
स्याद्वैदारिक कर्णोयं सन्निपातः सुदारुणः ।
अन्पशूल कटीतोद मध्यदाहरुजाभ्रमाः ॥ ६ ॥
भृशंक्रमः शिरोवक्षो मन्याहृदय पायुनः ।
प्रमीलश्वासहिक्वाच कासश्वेतो विसंज्ञिता ॥ ७ ॥
प्रतिश्याय छर्दिरालस्यं तन्द्रारुच्यग्निमार्दवैः ।

१ 'वायुजा' इति वा पाठः ।

प्रथमोत्पन्नमेवंच साधयति कथञ्चन ॥ ८ ॥
एतस्मिन्सन्निविष्टेतु कर्णमूले सुदारुणा ।
पिड़िका जायते जन्तोर्यथा कृच्छ्रेणसिध्यति ॥ ९ ॥
त्रिरात्रोपरमे तस्य व्यर्थ मौषध कल्पनं ।

हीन वात मध्य पित अधिक कफ होने से जिसको सन्निपात हो जाये उसे वैदारिक कर्ण सन्निपात कहते हैं। उसमें थोड़ी पीड़ा कमर दर्द थोड़ा दाह, पीड़ा, भ्रम, अत्यन्त थकावट शिर,वक्षस्थल, मन्यानाड़ी और हृदय, तथा गुदा में पीड़ा, श्वास, हिचकी, कास, ज्ञाननाश हो, नजला, कै आलस्य, तन्द्रा, अरुचि, अग्निमान्द्य होता है यह ज्वर उत्पन्न होने पर कभी ही सिद्ध होता है। इससे युक्त व्यक्ति के कान के मूल में भयंकर पिड़का हो जाती है वह कष्ट से सिद्ध होती है तीन दिन व्यतीत हो जाने पर इस की औषध करना व्यर्थ होता है। इसे प्लेग कहते हैं।

चिकित्सा—

कफाधिके सन्निपाते बृहत्पादिगणोहितः ॥१०॥
सपञ्चमूल संयुक्तं छिन्नोशीरं किरातकैः ।
त्रायत्यनन्तावमार्थैः क्वाथश्चार्धावशेषकः ॥ ११ ॥
सवैदारिक कर्णाह्वं सन्निपातं निकृन्तति ।

कफाधिक सन्निपात में बृहत्यादिगण जो पीछे कह आये हैं वह हित होता है। बिल्व, अरनी, सोन्याक, पाढला, खम्भारी, यह पंचमूल तथा गिलोय, खस, चिरायता, त्रायमाणा, सारिवा, पित्तपापड़ा इनका क्राथ आधा शेष रखकर पीने से वैदारिक कर्ण सन्निपात को नष्ट करता है॥ १०-११ ॥

कर्कोटकमाह—

मध्यहीनाधिकैर्दोषैः कर्कोटाख्योतिदारुणः ॥ १२ ॥
अन्तर्दाहोविशेषेण प्रवक्तुंन च शक्यते ।
रक्तं चालक्तकेनेव दृश्यते मुखमण्डलम् ॥ १३ ॥
यत्नेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते ।

१ 'अष्टावशेषकः' इति वा पाठः ।

इषुणेवाहतंपार्श्वं तुद्यते खन्यतेहृदि ॥ १४ ॥
प्रमीलकाश्वासहिक्का वर्धन्ते च दिनेदिने ।
जिह्वादग्धाखर स्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ १५ ॥
विसर्गनाभिजानाति कूजतेच कपोतवत् ।
दृतिवतश्लेष्मणापूर्णः शुष्क क्लोमोष्टतालुकः[१] ॥ १६ ॥
तन्द्रानिद्राऽतिवेगार्त्तो हतवन्हिहत द्युतिः ।
नैवातिभजतेग्लानिं विपरीतानिगच्छति ।
आपम्यते च बहुशः सरक्तंष्ठीवतेऽल्पशः ॥१७ ॥

चिकित्सा

दशमूले बृहत्यादिर्गणोवर्गाष्ट संयुतः ।
अष्टावशेषः कोष्णोऽसौक्वाथः कर्कोटकापहः ॥ १८ ॥

मध्य वातहीन पित्त अधिक कफ आदि के दोषों से कर्कोटक सन्निपात अति भयंकर होता है उसमें अन्दर दाह अधिक होता है रोगी बोल नहीं सकता, लाख के वर्ण समान मुख लाल हो जाता है अथवा दिखाई देता है। बड़े यत्न से कफ को रोगी खैंचता है जो हृदय से नहीं निकलती। बाण लगने सरीखी पसवाड़ों में पीड़ा हो, सूची चुभने जैसी तथा खोदने सरीखी पीड़ा हृदय में हो, नेत्र मिलते हैं, दमा, हिचकी यह दिन २ बढ़ते जाते हैं। जिह्वा सड़ी हुई खरदरी प्रतीत होती है।

कण्ठ कांटों से भर जाता है। मलमूत्र के त्याग को नहीं जानता मुख मशक की तरह श्लेष्मा से भर जाता है। क्लोम (पिपासस्थान) ओष्ठ तथा तालु सूख जाते हैं। तन्द्रा, निद्रा, इनसे अति व्याकुल होता है। अग्निनाश और कान्ति नष्ट हो जाती है। अधिक ग्लानि को नहीं भजता। विरुद्ध चेष्टाओं को करता है। अनेक वार देह को फैलाता है तथा रक्त युक्त अल्प थूकता है यह कर्कोटक सन्निपात 'न्यूमोनिया' कहाता है।

दशमूल और बृहती आदि गण की औषध जो पीछे वर्णन की गई हैं उन्हें अष्टवर्ग के साथ मिलाकर अष्टमांश क्वाथ करके देने से उक्त सन्निपात दूर होता है यथा 'ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक,

१ 'शुष्कशुष्कलोष्टतालुकः' इति वा पाठः।

काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, इनको अष्टवर्ग कहते हैं।

सम्मोहमाह—

प्रवृद्धमध्यहीनैस्तु सम्मोहाख्योऽतिदारुणः ॥ १९ ॥
प्रलापश्वास सम्मोह कम्पमूर्छाऽरतिभ्रमाः ।
कास हिक्का प्रतिश्याया मुखशोषोऽर्तिः पार्श्वतः ॥२०॥
एकपक्षाभिघातस्तु ह्येतदत्र विशेषणम् ।

चिकित्सा—

दशाङ्घ्रि सषड्ङ्गन्तु धन्वयाससमन्वितम् ॥ २१ ॥
क्वाथः सम्मोहकं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।

वृद्ध वात मध्य पित्त हीन कफ से सम्मोह नामक अति भयंकर सन्निपात होता है इसमें प्रलाप, श्वास, मोह, कम्प, मूर्च्छा, अरति भ्रम, कास हिचकी, प्रतिश्याय मुख का सूखना, पसवाड़े में पीड़ा तथा एक तरफ में पक्षाघात यह इसमें विशेष लक्षण होता है।

दशमूल, 'नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, रक्तचन्दन, नेत्रबाला, सुण्ड यह षडंग' और धमासा से युक्त किया क्वाथ सम्मोह सन्निपात को हरता है ॥ १९—२१ ॥

याम्यकमाह—

हीनातिवृद्धमध्यस्थैर्याम्यः स्यात्सन्निपपातितः ॥ २२ ॥
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वग्दाहतृष्णा रुचिभ्रमाः ।
हृदयं तुद्यते चास्य यकृत्प्लीहाश्च फुप्फुसाः ॥ २३ ॥
पच्यन्तेत्यर्थमूर्ध्वाधः पूयशोणितनिर्गमः ।
शीर्णं दन्तस्यमृत्युश्च एतदत्रविशेषणम् ॥ २४ ॥

हीन वात वृद्ध पित्त मध्य कफ से याम्य सन्निपात होता है इसमें नेत्र, मूत्र, त्वचा यह सब हल्दी के समान वर्ण युक्त होते हैं, दाह, तृष्णा, अरुचि, भ्रम, हृदय, यकृत्, प्लीहा, आन्तें, फेफड़े इन में पीडा होती है। ऊपर तथा नीचे से पाक होकर पूय तथा रक्त निकलता है इस ज्वर में दान्त गिर जाते हैं और मृत्यु हो जाती है यह लक्षण इसमें विशेष होता है ॥ २२-२४ ॥

चिकित्सा—

षड्ङ्गस्यगणो यष्टीतिक्तादार्वी किरातकम् ।

द्राक्षावासक स्योनाक छिन्नारिष्टकपद्मकैः ॥ २५ ॥
काकोडुम्बरिका द्राक्षा शृंगी रोहितकट्फलै ।
क्वाथः शीतीकृतः पेयोमधुयुग् याम्यकापहः ॥ २६ ॥

षडंग गण पीछे कहा है मुलठी, कुटकी, दारु हरिद्रा, चिरायता, मुनका बांसा, स्योनाक, गिलोय, निम्ब, पद्माख, कठूमर, दाख, काकड़ासिंगी, रुहेड़ा, कायफल इनका काढ़ा ठण्डा करके शहत मिला कर पीने से याम्यक सान्निपात को जीतता है। २५-२६।

ककचमाह—

मध्यातिवृद्धहीनैश्च नाम्नायंक्रकचः स्मृत ।
मोह प्रलापमूर्च्छाः स्युः स्वेदस्तम्भशिरोग्रहाः ॥ २७ ॥
वर्चोभेदोऽग्निदौर्बल्यं तृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः ।
श्वासकासौ तथा तन्द्रा संज्ञानाशोहृदिग्रहः ॥ २८ ॥
खेभ्योरक्तं विसृजतितत्राप्येतद्विशेषणम् ।
अर्वाक्त्रिरात्रान्मृत्युश्चभवत्येव न संशयः ॥ २९ ॥

मध्यवात अतिवृद्ध पित्त हीन कफ से क्रकच नामक सन्निपात कहा है इसमें मोह, प्रलाप, मूर्छा, पसीने का रुकना, शिर में पीड़ा, मल का फट के आना, अग्निमान्द्य, प्यास, दाह, अरुचि, भ्रम, श्वास तथा तन्द्रा, संज्ञानाश, हृदय में पीड़ा, नाक कान आदि से रक्त का त्याग—यह लक्षण इस में विशेष होता है। तीन दिन में इस में मृत्यु होती है इसमें संशय नहीं है। २७—२९ ॥

चिकित्सा—

पञ्चाङ्घ्रिः सषड़ङ्गादिः पाठाविश्वविषाऽमृता ।
वासकं कट्फलं क्षुद्रे क्वाथोऽयं क्रकचापहः ॥ ३० ॥

विल्व की छाल, अरनी, स्योनाक, पाढल, खम्भारी यह पञ्चमूल नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, रक्त चन्दन, नेत्रवाला, सुण्ड यह षडंग, पाठा, सुण्ड, अतीस, गिलोय, बांसा, कायफल, दोनों कटेरी इन का काढ़ा क्रकच सन्निपात को हरता है ॥ ३० ॥

पाकलकमाह—

वृद्धेहीने मध्य दोषे सन्निपातस्तु पाकलः ।
शिरोरुग्वमथुः श्वासः प्रलापः छर्घरोचकाः ॥ ३१ ॥

शूलाध्माने चजृम्भा च सुप्तता कम्प वेदनाः ।
सिंही व्याघ्री शठी शृंगी सपाठां दशमूलकम् ॥ ३२ ॥
त्रिवृतोशीरवर्माब्दैः क्वाथः पाकलकापहः

वात वृद्ध पित्त हीन कफमध्य दोष होने पर पाकल नामक सन्निपात होता है इस में शिर में पीड़ा, वमन का आना, श्वास, प्रलाप छर्दि, अरुचि, पीड़ा, अफारा और उबासी का आना, अंगों का सो जाना, कम्प तथा वेदना का होना यह लक्षण होते हैं।

बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, कचूर काकड़ासिंही, पाठा, दशमूल; तिरवी, खस, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, इनका काथ पीने से पाकलक सन्निपात दूर होता है ॥ ३१—३२ ॥

कूटपाकलाभिधः—

समैर्दोषैः प्रकुपितैः कूटपाकलकाभिधः ॥ ३३ ॥
त्रयाणामपि दोषाणां सम्यग्रूपाणि लक्षयेत् ।
यानिज्वर चिकित्सार्थं रूपाण्युक्तानि कृत्स्नशः ॥ ३४ ॥
तैरेव सर्वैः सम्पूर्णो विज्ञेयः कूटपाकलः ।
व्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्चवज्रशस्त्राग्नि सन्निभः ॥ ३५ ॥
केवलोच्छ्वासपरमः स्तब्धांगः स्तब्धलोचनः ।
त्रिरात्रात्परमे तस्यजन्तोर्हरतिजीवितम् ॥ ३६ ॥
ततोऽश्यन्तुतं दृष्ट्वा मूढो व्याहरतेजनः ।
धर्षितोराक्षसैर्नूनमवेलायां चतुष्पथे ॥ ३७ ॥
अम्बयाश्रवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ।
पिशाचैर्गुह्यकैश्चेके तथान्येमस्तके हतम् ॥ ३८ ॥
कुलदेवार्चनैर्हीनं धर्षितं कुलदैवतैः ।
नक्षत्रपीड़ामपरे गर कर्मेतिचापरे ॥ ३९ ॥
वदन्ति सन्निपातन्तु भिषज कूटपाकलम् ।
कूटस्थैर्जायते दोषैर्बलिभिः कूटपाकलः ॥ ४० ॥

---

१ 'शुण्ठी' इति च पाठः ।

समान दोषों के कुपित हो जाने से कूटपाकल नामक सन्निपात होता है। तीनों दोषों के लक्षण इसमें अच्छी तरह से हो जाते हैं। जितने ज्वरों की चिकित्सा के लिये लक्षण कहे हैं उन सब से युक्त यह कूटपाकल जानना चाहिये। दारुण रोगों से भी यह वज्र शस्त्र तथा अग्नि के तुल्य भयंकर होता है। इसमें विशेष करके केवल श्वास अधिक तथा अंग जकड़े जाते हैं और नेत्र भी जकड़े जाते हैं। तीन रात्रि के अन्दर प्राणों को हरता है उसको आते हुए देख कर मूढ़ की भान्ती मनुष्य बकने लगता है। निश्चय से सन्ध्या-काल में चुराहे में राक्षसों करके ग्रसित हुआ मानते है, कोई इसे देवि से तथा यक्षिणी से वा ब्रह्मराक्षस से, पिशाच, गुह्यक आदि तथा अन्य से पीडित समझते हैं मस्तकमें चोट लगनेसे वा कुलदेवता आदि की पूजन से विमुख होने से कुलदेवता से तिरस्कृत होने से, कोई कहते हैं कि नक्षत्रपीड़ा से अथवा कर्मजनित दोषों से यह कूट-पाकल सन्निपात होता है दोषों के कुटिल हो जाने से और दोषों के बलवान् होने से यह सन्निपात उत्पन्न होता है।
॥ ३३—४० ॥

चिकित्सा—किराताद्यष्टादशाङ्गः

भूनिंबविश्वदेवद्रुधान्यतिक्ता कलिङ्गकैः।
गजाह्वदशमूलाब्दैः क्वाथोऽष्टादशाङ्गकः ॥ ४१ ॥
मृत्युकल्पज्वरान् सर्वान खिलान्सन्निपातितान्।
मूर्च्छादाहारुचितन्द्रा प्रलापभ्रममूढताः ॥ ४२ ॥
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्ति श्वासहिध्मावमीर्हरेत्।

चिरायता, सुण्ड, देवदारु, धनियां, कुटकी, इन्द्रयव, पिपलामूल, दशमूल, नागरमोथा यह अष्टादशांग क्राथ, मृत्युतुल्य सब ज्वरों को तथा सब सन्निपातों को तथा मूर्च्छा, दाह, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप, भ्रम, मोह, कास, हृद्ग्रह, पार्श्वपीड़ा, श्वास, हिचकी वमन आदि को हरता है ॥ ४१—४२ ॥

शृंग्याद्यष्टाङ्गः—

शृंगीशठीन्द्रयवधन्वयवासविश्वा
पद्मपटोलकटुकादशमूलसिद्धम्।
पीत्वा कषाय कमिमं प्रणिहन्ति कष्टा

दद्याद्दशाङ्गमखिलानपि सन्निपातान् ॥ ४३ ॥

काकड़ासिंही, कचूर, इन्द्रयव, धमासा, सुएठ, पद्म ख परवल, कुटकी तथा दशमूल से सिद्ध कषाय को पीने से भयंकर सन्निपातों का नाश होता है ॥ ४३ ॥

बिल्वादि--

बिल्वाश्मभेदक त्रिवृत् फलपूगमूल
क्षुद्राद्वयं समसितोऽष्टगुणोऽनिलारिः ।
गोमूत्रयुग्रुचकहिंगुविड़ैरुपेतः क्वाथः
सहृद्रुजमात्स्यति सन्निपातान् ॥ ४४ ॥

बिल्वमूल, पाषाणभेद, तिरवी, सुपारी की जड़, दोनों कटेली, समान मिश्री डालकर, अष्टमगुणा एरण्डमूल, गोमूत्र, रुचक लवण हिंगु विड्लवण युक्त किया क्वाथ हृदय की पीड़ा युक्त सन्निपातों को दूर करता है ॥ ४४ ॥

शृंग्यादिः—

शृंगी भार्ग्य भयाऽजाजी कणाभूनिम्ब पर्पटैः ।
देवदारुवचा कुष्ठयास कट्फल नागरैः ॥ ४५ ॥
मुस्त धान्याक तिक्तेन्द्र शठी पाठा हरेणुभिः ।
हस्ति पिप्पली चव्याग्नि पिप्पली मूलचित्रकैः ॥ ४६ ॥
शोभाञ्जनविधारश्च विशाला सोमराजिका ।
विड़ंगरजनी दार्वी यवानी पूगसंयुतैः ॥ ४७ ॥
समस्तैः साधितः क्वाथो हिंग्वर्द्रकसमन्वितः ।
सन्निपातान्महारौद्रांस्त्रयोदशविधांश्चयान् ॥ ४८ ॥
कर्ण शूलं चहिक्वां च मूर्च्छां चापि विशेषतः ।
निद्रानाशं मूत्ररोधं स्वप्नभंगं शिरोग्रहम् ॥ ४९ ॥
दाहज्वरं च शमये त्तथा शीतज्वरं दृढम् ।
दुष्ट स्वेद प्रशमनं शुष्कजिह्वाविशोधनम् ॥ ५० ॥

---

१ 'जीरकैरिति' वा पाठः

२ 'निशारग्वधत्र यन्ता' इति वा पाठ ।

३ 'सुप्तमंगं' इति वा पाठः ।

※ अभिन्यासंमहाघोरं हन्ति तन्द्रान्वितं त्वरात्—इत्यधिकं-ख० पुस्तके ।

काकड़ासिंही, भिड़ंगी, हरड़, जीरा, मघ, चिरायता, पितपापड़ा देवदारु वच कुष्ठ, लालजवासा, कायफल, सुण्ड, मोथा, धनियां कुटकी, इन्द्रजौं, कचूर, पाठा, रेणुका, गजपिपली, चव्य, चित्रक, पिप्पलीमूल, चिरायता, सुहांजने की छाल, भिधारा, तुम्बा. माल· कंगुनी, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अजवायन, सुपारी, इन सब का काढ़ा करके हींग और अदरक मिलाकर पीने से बड़े भयंकर तेरह प्रकार के जो सन्निपात हैं उन्हें तथा कर्णशूल को, हिचकी, और मूर्छा को विशेष कर नष्ट करता है तथा निद्रा का न आना, मूत्र का रुकना, नींद का नष्ट होना सिर दर्द हटते हैं। दाह से होने वाले तथा शीत से होने वाले ज्वर को शान्त करता है। दुष्ट पसीने को शमन करता है तथा सूखी जिह्वा का शोधन कर देता है ॥ ४५—५० ॥

कट्फलादिः—

कट्फलाब्द वचा पाठा पुष्कराजाजिपर्पटैः ।
देवदार्व्यभया शृंगी कणाभूनिम्ब नागरैः ॥ ५१ ॥
भार्गी कलिङ्ग कटुकाशठी कत्तृण धान्यकैः ।
समांशः साधितः क्वाथो हिंग्वार्द्रक रसैर्युतः ॥ ५२ ॥
दशमूलयुतश्चापि देयः केचिद्वदन्ति हि ।
कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति मन्या गलग्रहम् ॥ ५३ ॥
कफवातज्वरं श्वासं कासहिक्का हनुग्रहं ।
गलगण्डं गण्डमालां स्वरभेदं कफात्मकम् ॥ ५४ ॥
शिरो गुरुत्वं बाधिर्यं वृद्धिश्च कफमेदसः ।
दशमूलयुतोह्येष सन्निपातं निहन्ति हि ॥ ५५ ॥

कायफल, मोथा, वच, पाठा, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापड़ा, देवदारु, हरड़, काकड़ासिंही, मघ, चिरायता, सुण्ड, भिडंगी, इन्द्रजौं, कुटकी, कचूर, रोहिष तृण, धनियां इन सब को बराबर लेकर काढ़ा कर हींग और अदरक का रस युक्त तथा कई आचार्य इसमें दशमूल मिलाना कहते हैं, पीवे तो यह कान के मूल में होने वाली शोथ और मन्यास्तम्भ को नष्ट करता है कफवात ज्वर को, दमा, कास को, हिचकी को, हनुस्तम्भ को, गलगण्ड, गण्डमाला को,

स्वरभेद को जो कफ से हो, सिर के भारीपन को, वैहरेपन को, कफ और मेदा से होने वाली वृद्धि को नष्ट करता है तथा दशमूल मिलाने से यह काथ सन्निपात ज्वर को हरता है ॥ ५१—५५ ॥

किरातादि—

किरातं त्र्यूषणं भार्गी वचा कुम्भशतावरी ।
रास्नाऽमृता नता दार्वी व्याघ्री त्रायन्तिकाशठी ॥ ५६ ॥
पाठा पटोली गांगेर्यी देवकाष्ठं निशात्रिवृत् ।
वृषा विशाला मञ्जिष्ठा मोरटाऽतिविषाऽभया ॥ ५७ ॥
कुष्टं कलिंगो रुचकः सुभद्रो वृद्धदारुकः ।
मोदिनी मुकुलैर्युक्तः काथोद्वात्रिंशको मतः ॥ ५८ ॥
हन्तिशूलं वमीं हिक्कां सन्निपातांस्त्रयोदश ।
श्वासं कासं मदं मूर्छां हृद्ग्रहं पार्श्ववेदनम् ॥ ५६ ॥
व्याधीनां केसरीनाम किरातादि रसोत्तमः ।

चिरायता, मघां, मिरचां, सुण्ड, भार्गी, वच, दन्तीमूल, शतावर, रायसन, गिलोय, तगर, दारुहल्दी, कटेरी, त्रायमाणा, कचूर, पाठा, परवल, भद्रमुस्ता, देवदारु, हलदी, तिरवी, बांसा, तुम्मे की जड़, मजीठ, मूर्वा, अतीस, हरड़, कुठ, इन्द्रजौं, लवण, विल्वमूल, भिघारा, जूही के फूल, यह काथ द्वात्रिंशक कहा है शूल को, कै को, हिचकी को, तेरह प्रकार के सन्निपातों को नाश करता है । श्वास को खांसी को, मद को, मूर्छा को, हृदय की पीड़ा को, पार्श्वपीड़ा को यह व्याधियों के लिये सिंह के समान किरातादि गण उत्तम फल करता है ॥ ५६—५६ ॥

भार्ग्यादिद्वात्रिंशकः—

भार्गीघनामृतलताभूनिम्ब पाठा विषा ॥ ६० ॥
त्रायन्ती कटुकावचा त्रिकटुका स्योनाकशक्रद्रुमैः ।
रास्नायासपटोल पाटलि त्रिवृद्दार्वी विशाला निशा ॥६१॥
ब्राह्मी पुष्कर सिंहिकाद्वय शठी धात्र्यब्ददेवद्रुमैः ॥
क्वाथोऽयं किल सन्निपात निवहं द्वात्रिंश देवत्तणात् ।
उदयान्निज तेजसो विजयते सर्पान् गुरुव्याल इव ॥६२॥

किञ्चिच्छ्वास बलास कास हृद्रुग्हृद्रोगहिक्वांमरुत् ।
मन्यास्तम्भागलामयादि तमला विष्टम्भ वाध्मानपि ॥६३॥

भिडंगी, मुस्तक, गिलोय, चिरायता, पाठा, अतीस, त्रायमाणा कौड़, वच, मघां, मिरचा, सुण्ड, स्योनाक, इन्द्रजौं, रासना, जवासा, परवल, पाटल, तिरवी, दारुहरिद्रा तुम्मां, हलदी, ब्राह्मी, पोहकरमूल, वांसा, कटसरैया, कचूर, आंवला, बहेड़ा, देवदारु यह क्काथ ३२ औषधियों का सन्निपात युक्त रोगी को क्षण में रोग मुक्त कर देता है जैसे अपने तेज से बड़ा सांप छोटे सांपों को खा जाता है । तथा श्वास, कफ, कास, हृदय की पीड़ा, हृद्रोग, हिचकी और वायु को, मन्यास्तम्भ, गल के रोग, मल की रुकावट को और अफारे को जीतता है ॥ ६०—६३ ॥ इति भार्ग्यादि ।

शट्यादि—

शट्युग्रा धान्यमैरेयद्विनिशमुखकरी त्रायमाणाब्दतिक्ता ।
वासाशृंगी गुडूची यवकुलवचा कट्फलेन्द्रैः किरातैः ॥
भार्गी दुःस्पर्श शुण्ठी दशजट विजया शिग्रुभिः सन्निपात-
श्वास स्वेदार्ति जाग्रद् भ्रमकसनभिदारोचकघ्नः कषायः ॥६४

कचूर, अजवायन, धनियां, मैरेय (इन्द्रजौं गुड़ धनिया आदि से सन्धान की हुई मद्य को कहते हैं) दारुहलदी, हलदी, जीरक, त्रायमाणा, मोथा, कौड़, बांसा, काकड़ाशृंगी, गिलोय, जौं, मौलसरी, वच, कायफल, इन्द्रजौं, चिरायता, भार्गी, धमासा, सुण्ड, दशमूल, हरड़, सुहांजन इनका क्काथ सन्निपात को श्वास को, पसीने की पीड़ा को, निद्रानाश को, भ्रम तथा कास को नष्ट करता है तथा अरुचि का नाशक यह कषाय है ॥ ६४ ॥ इति शट्यादि ।

रास्नादि—

रास्ना शृंगी पटोलेन्द्र यवसनगजित्त्वग् बर्बरी निम्ब तिक्ता ।
ब्राह्मी भार्गी सुराब्द द्विनिशवृषविषा षट्कटु स्त्रिद्विदीप्या ।
गोक्षुरक्षुद्रेति मौला दशजटममृता वेल्ल शम्पाक धात्री ।
त्रायंती हिंगु कौन्ती पुर बनज शठी कट्फलेन्द्रैः किरातम् ॥६५
मूर्वा कुम्भेनिकुम्भो मरुज मरुत नतवौद्र चन्द्रैक पापाः ।
रुद्रेण श्वास सर्वज्वर पवनरुजाऽल्पाग्निनां नाशकर्त्ता ॥६६॥

रासना, काकड़ाशृंगी, परवल, इन्द्रजौ, पाषाणभेद, दालचीनी, तुलसी, निम्ब कुटकी, ब्राह्मी, भार्गी, देवदारु, मोथा दोनों हलदी, बांसा, अतीसा, मघां, मिरचां, सुण्ड, अजवायन, अजमोद, दशमूल, गिलोय, मरिच, अमलतास, आंवला, भखड़ा, छोटी कटेरी, लवण। त्रायमाणा, हींग, रेणुका, गुग्गुलु, पद्म, कचूर, कायफल, चिरायता, मूर्वा तिरखी दन्तिमूल, विट्खादिर, घण्टा पारुली, तगर, मधु नख, माषपर्णी, यह क्काथ श्वांस को सब प्रकार के ज्वर की, पीड़ा को मन्दाग्नि को नष्ट करता है ॥ ६५—६६ ॥

षोडशांग :—

भार्गी छिन्ना दशाङ्गी त्रिकटु शठीभिः—
निर्मितो वा निहन्ति ॥ ६७ ॥

चतुर्दशाङ्गः—छिन्ना भूनिम्ब शुण्ठी दशजट जलदैर्दारुणं सन्निपातम्, गिलोय, चिरायता, सुण्ड, दशमूल, नागरमोथा इन चौदह द्रव्यों का क्काथ दारुण सन्निपात को नाश करता है ॥

भिड़ंगी, गिलोय, दशमूल, मघां, मिरचां, सुण्ड, कचूर इन से किया कषाय भी सनिपात को हरता है ॥ ६७ ॥

हरीतक्यादि—

हरीतकी धान्यमुस्त रक्त चन्दन पद्मकैः ।
गुडूचीन्द्रयवैर्वासा कारवीकृतमालकैः ॥ ६८ ॥
तिक्ता नागर पाठाभिः कृतंक्वाथं कणान्वितम् ।
प्रपिबेत्सन्निपातार्त्ति पिपासादाहनाशनम् ॥ ६९ ॥
तन्द्राकास प्रशमनं दीपनं पाचनं परम् ।
विण्मूत्रार्त्तिश्च शोषाग्नि वमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ७० ॥

हरड़, धनियां, मोथा, लाल चन्दन, पद्माख, गिलोय इन्द्र जौं, वांसा, सौंफ, अमलतास, कुटकी, सुण्ड, पाठा, पिप्पल युक्त किया हुआ कषाय पीवे तो सन्निपात, पिपासा, दाह इनका नाश होता है तथा यह तन्द्रा कास को शमन करता है और अत्यन्त दीपन पाचन है। मल तथा मूत्र की, पीड़ा को, शोथ को, अग्नि·

१ विण्मूत्रानि लविष्टम्भेतिवापाठः ।

मन्द को, वमन को, शोष और अरुचि को हरता है ॥ ६८—७० ॥

इति हरीतक्यादि ॥

रजन्यादि महाकषायः—

हरिद्रामुस्तभूनिम्ब, त्रिफला रिष्टयासकैः ।
कण्टकारी द्वयं भार्गी कुटकी नागरं कणा ॥ ७१ ॥
पटोली पर्पटं शुण्ठी देवदारु सरोहिषं ।
चित्रकं च बला बिल्वकुम्भकारी हरीतकी ॥ ७२ ॥
कट्फलं दीप्य कटभी सर्वमेकैकभागिकम् ।
रास्ना भागद्वयं चात्र दत्वाक्वाथं तु साधयेत् ॥ ७३ ॥
व्योषचूर्णयुतः क्वाथो ज्वरान् हन्ति त्रिदोषजान् ।
त्रीन् दोषान्महाघोरानन्धकारान्यथारविः ॥ ७४ ॥
वमिं स्वेदं प्रलापंच स्तैमित्यं शीतगात्रताम् ।
मोहं तन्द्रांभृशं श्वासं कासं दाहाग्निमार्दवम् ७५ ॥
हृत्पार्श्वशूलविष्टम्भ कण्ठ कूजनकं तथा ।
जिह्वास्फुटनकं कर्ण शूलं चाशुविनाशयेत् ॥ ७६ ॥
नातः परतरं किञ्चिदौषधं सान्निपातिके ॥
रजन्यादि गणो ह्येष धन्वन्तरिविनिर्मितः ॥ ७७ ॥

हलदी, मोथा, चिरायता, त्रिफला, निम्ब, जवासा, कटेरी दोनों भार्गी, कुटकी, मोथा, पिपल, परवल, पित्तपापड़ा सुण्ड, देवदारु, रोहिष तृण, चित्रा, खरेंटी, बिल्वमूल, वनकुलत्थी, हरड़, कायफल अजवायन, मालकंगुनी, यह सब एक २ हिस्सा लेना। रासना २ भाग देकर इनका क्वाथ सिद्ध करना, इसमें त्रिकटु का चूर्ण मिला कर पिलाने से त्रिदोष ज्वर का नाश होता है। यह काढ़ा तीनों दोषों को इस प्रकार दूर करता है जैसे बड़े अन्धकार को सूर्य दूर करता है। वमन आदि उपद्रवों को भी नष्ट करता है इससे अधिक सन्निपातकी औषधि कोई नहीं है यह हरिद्रादि गण स्वयं धन्वन्तरिजी ने कहा है ॥ ७१–७७ ॥

पिपल्यादि—

पिप्पली चित्रकं शुण्ठी पिप्पली मूलकं वचा ।

जीरकातिविषा चव्या पाठा कुटजरेणुका ॥ ७८ ॥
विडंगं मरिचं मूर्वा कट्फलं कर्कटाह्वयं ।
किराततिक्तकं दार्वी रास्ना पर्पट यासकान् ॥ ७९ ॥
पौष्करं च बृहच्छृंगी मजमोदर्कमूलजं ।
श्योनाकं दीप्यकं हिंगुंतुल्यान्येतानिकल्पयेत् ॥ ८० ॥
पिप्पल्यादि कषायोऽयं सन्निपात ज्वरं जयेत् ।
कफ वात प्रलापंच प्रस्वेद मतिनिद्रताम् ॥ ८१ ॥
शीतंभ्रमं रोमहर्ष मरुचिं चापतन्त्रकम् ।
सर्वज्वरांस्तथा गात्रशूनतां च विनाशयेत् ॥ ८२ ॥
सन्निपात मदोन्मत्तं करिवृन्दंहि केसरी ।

मघ, चित्रा, सुण्ड, पिप्पलामूल, वच, जीरा, अतीस, चव्य, पाठा कुड़ासक, रेणुका बीज, बायविडंग, मरिच, मूर्वा, कांफल, काकड़ा सिंगी, चिरायता कुटकी दारुहलदी रासना पित्तपापड़ा जवासा पोहकरमूल भार्गी अजमोद आक की जड़ स्योनाक अजवायन हींग इनका तुल्य भाग लेकर काढ़ा करे तो यह पिप्पल्यादि क्वाथ सन्निपात ज्वर को जीतता है कफ वात को प्रलाप को अति निद्रा को शीत को भ्रम को रोमहर्ष अरुचि और अपतन्त्रक-वात को सब ज्वरों को तथा गात्र शोथ को नष्ट करता है सन्निपात को ऐसे नष्ट करता है जैसे उन्मत्त हाथियों के समूह को एक सिंह नसा देता है ॥ ७८—८२ ॥

इति कूट पाकलः ।

अथ सन्धिकमाह—

सन्धिगे सन्धिगः शोफ स्तीव्ररुक सज्वरो भवेत् ॥८३॥
वातार्त योगमन्दाग्निस्ततो निद्रा विहीनता ।
तापश्चबलहानिश्च श्लेष्मारात्रौ बिनिर्गमा ॥ ८४ ॥
परमायुर्बुधैः प्रोक्तं वासराः सप्तसन्धिगे ।
सन्धयः श्लेष्मणः स्थानं तत्स्थ श्लेष्मयुतोऽनिलः ॥ ८५ ॥
लंघन स्वेदनाभ्यासात्सद्यो याति निरामताम् ।

सन्धिगत सन्निपात में सन्धियों में शोथ तथा अत्यन्त पीड़ा

तथा ज्वर होता है वात से पीड़ित, मन्दाग्नि और निद्रा का नाश ताप और बल की हानि तथा रात्रि में कफ अधिक निकले सन्धिक सन्निपात में रोगी की परमायु सात दिन की होती है। इस ज्वर में सन्धियां कफ का स्थान होने से वहां ठहरे हुए कफ से मिश्रित वायु होता है इस लिये लंघन स्वेदन करते रहने से शीघ्र आम रहित हो जाता है ॥८३—८५॥

चिकित्सामाह—

*वत्सः सविश्व सिन्धूत्थ कौलत्थः कुरुते समम् ॥ ८६ ॥
आमाशयस्थ मनिलं मारुतामयरुग् जयेत् ।
रास्नामृता शठी दारु वृद्धदारु शतावरी ॥ ८७ ॥
शुण्ठी च गुग्गुलुः क्वाथः सन्धिगान्तक कृद्भवेत् ।

इन्द्रजौ सुण्ड लवण कुलत्थी इन औषधों को सम भाग लेकर काथ करने से आमाशय में स्थित वायु को तथा वात की पीडाओं को जीतता है। रासना, गिलोय कचूर देवदारु भिधारा और शतावरी सुण्ड तथा गुग्गुल इनका कषाय सन्धिग ज्वर का नाश करता है ॥ ८६-८७ ॥

रास्ना शुण्ठी गुडूची सहचर जलदा भीरु पथ्या सुराह्वैः ।
तिक्ता कर्चूर वासाऽनिलरिपु सहितैः पञ्चमूलद्वयेन ॥ ८८ ॥
एभिर्द्रव्यैः कषायस्त्वरितमपहरेत्पीतमात्रः प्रभाते ।
मन्यास्तम्भान्त्र वृद्धिज्वर विटप कटी सन्धिसर्वांगपीडाः ॥८९॥

रास्नेति—रासना सुण्ड गिलोय पियावांसा, मोथा शतावरी हरड़ देवदारु कुटकी कचूर वांसा एरण्डमूल दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल इन सब द्रव्यों का काढ़ा बनाकर पिया हुआ प्रातःकाल शीघ्र ही मन्यास्तम्भ अन्त्र वृद्धि ज्वर विटप (अर्थात् वंक्षण तथा वृषणों के मध्य में होने वाले मर्म की पीड़ा को) कटी की पीड़ा तथा सर्वांग सन्धिगत पीड़ा को हरता है ॥८८-८९॥

---

* कांजास्थि यवैःपडातसी माषारनालकैः ।
पुनर्नवा युतैः खिन्नैः स्वेदे वातार्ति नाशनः ॥ ८६ ॥
इत्यधिकं—ख-पुस्तके ।

१ 'वरावरी' इतिवापाठः ।

त्रिफलारग्वधग्रंथि वृषैः सिद्धं जलं पिबेत् ।
एरण्ड तैल संयुक्तं वातव्याधिहरं क्षणात् ॥ ९० ॥
निर्गुण्डी पुर सिद्धार्थै रास्ना युङ् निम्बपत्रकैः ।
सन्धिगं हन्ति धूपो वा सर्जसिद्धार्थ कुन्दुरैः ॥ ९२ ॥

त्रिफलेति—हरड़, वहेड़ा, आंवला, अमलतास, पिपलामूल, वांसा, इनसे सिद्ध किया हुआ काढ़ा एरण्ड तैल मिला कर पीने से वात व्याधि को हरता है। निर्गुण्डीति—सम्भालु के पत्ते गुग्गुलु, सरसों, रासना, निम्ब पत्र इनका धूप बना कर धूपित करने से सन्धिक सन्निपात को दूर करता है अथवा राल, सरसों, कुन्दरु की गोंद का धूप भी सन्धिग को हरता है ॥ ९०-९१ ॥
इति सन्धिकः ।

अथान्तक माह--

शिरोधुनोति सततमुग्र दाहार्तिरोदन ।
हिक्कां कास कफ श्वासं प्रलापारति मोहकृत् ॥९३॥
ज्वलत् कृशानु वृत्ताय युतोदेहो दिवानिशि ।
दशाहं जीवितं तस्य, अन्तकश्चान्तकारकः ९४॥

अन्यच्च—

दाहं करोति परितापनमात नोति
मोहं दधाति विदधाति शिरः प्रकम्पम् ।
हिक्कां तनोति कसनं च समाजुहोति-
जानीहि तं विबुध वर्जितमन्तकाख्यम् ॥९५॥

शिर इति—रोगी शिर को निरन्तर कम्पाता है दाह, पीड़ा, अधिक होती है रोता है, हिचकी, खांसी, कफ, श्वास, प्रलाप, मन कान लगना, मोह का होना जलती हुई अग्नि के समान शरीर दिन रात जलता हुआ मालूम हो उस रोगी का जीवन दश दिन तक होता है अन्त करने वाला अन्तक सन्निपात कहा है ॥ ९३-९४ ।

औरभी—दाह मिति-दाह को करता है, सारे शरीर में सन्ताप पैदा कर देता है। मोह देता है, शिर को कपाता है। हिक्का को करता है और कास बढ़ाता है। ऐसे "अन्तक" नामक ज्वर को जो बुद्धिमान् वैद्यों से त्याग ने योग्य हो जानना चाहिये ॥ ९५

चिकित्सामाह—

धन्वयास कणा शुण्ठी बृहतीद्वय धान्यकैः ।
क्वाथः सातिविषैः पीतः पाचनोऽन्तक नाशनः ॥ ९६ ॥

धन्वयासेति—धमासा, पिप्पली, सुण्ड, दोनो कटेरी, धनियां इनका काढ़ा अतीस के साथ बना कर पीया हुआ पाचन तथा अन्तक ज्वर नाशक होता है ॥ ९६ ॥

पटोलातिविषाशृंगी त्रायमाणा सपुष्करैः ।
समांशैः साधितं क्वाथं हन्तितीव्रान्तकं ज्वरम् ॥ ९७ ॥
शठी रास्नाऽमृताशुण्ठी शृंगी विषानिदग्धिका ।
पुष्करं कटुकापाठा कषायश्चान्तकापहः ॥ ९८ ॥
रोहिणी धन्वयासश्च सकैरातः कृतोऽपिच ।
नावने नवसारं वा निम्बुकाम्बुविमार्दितम् ॥ ९९ ॥
विहाय वैद्योदित मुष्टिवारि ज्वरादि यूषादि गदापहारि ।
ज्वरं जयेज्जीवित कर्तृ नित्यं मृत्युञ्जयं चेतसिचिन्तयस्व १००

पटोलेति—परवल, अतीस, काकड़ा सिंगी, त्रायमाणा, पोहकरमूल इनको बराबर भाग लेकर क्वाथ करने से पीया हुआ तीव्र अन्तक ज्वर को हरता है ॥ ९७ ॥

शठीति—कचूर, रासना, गिलोय, सुण्ड, शृंगी, अतीस, कटेरी पोहकरमूल, कुटकी, पाठा, इनका काढ़ा अन्तक नाशक है ॥ ९८॥

कटुरोहिणी—धमासा, चिरायता इनका काढ़ा अन्तक को हरता है। तथा नसादर को निम्बु के जल में पीस कर नस्य लेने में भी अन्तक नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

विहायेति—वैद्य के कहे हुए काथादियों को तथा रोग नाशक यूषों को छोड़ कर यदि ज्वर को जीतने की इच्छा होतो मन में मृत्युञ्जय भगवान शंकर की चिन्तना करो ॥ १०० ॥

इति अन्तकः।

अथरुग्दाहमाह

ज्वरातितृड्भूरितापो हनुमन्यागलव्यथः ।
श्वास मोह प्रलापाद्यैश्चालयन् सततं शिरः ॥ १०१ ॥

शूली शल्याकुलो दाही स्थायी विशंति वासरान् ।
सकष्टतर साध्योऽस्मा द्रुग्दाही जीवति क्वचित् ॥ २ ॥

अन्यच्च

प्रलाप परितापन प्रबला मोहमांद्य श्रमः ।
परिभ्रमण वेदना व्यथित कण्ठ मन्याहनुः ॥
निरंन्तरतृषाकरः श्वसनकास हिक्वाकुलः ।
स कष्टतर साधनोभवति हन्ति रुग्दाहकः ॥ ३ ॥

ज्वरेति—अत्यन्त ज्वर अधिक तृष्णा, हनु सन्धि, मन्या नाड़ी तथा गले में पीड़ा हो, श्वास, मोह प्रलाप इन से निरन्तर शिर को चलाये शूल हो जैसे कांटे के लगने से व्याकुलता होती है दाह हो बीस दिन तक ज्वर ठहरे वह कष्ट साध्य होता है और इस से कोई रोगी ही बचसकता है ॥ १०१ ॥

और भी—प्रलापेति, प्रलाप सन्ताप, अत्यन्त मोह, अग्नि मन्द हो जाये, थकावट हो पीड़ा से व्याकुल होकर घूमा करे कण्ठ में हनुसन्धि में, मन्या में पीड़ा हो, निरन्तर तृष्णा को करने वाला, श्वास, कास, हिचकी, से व्याकुल, वह कष्ट साध्य होता है तथा रुग्दाह सन्निपात मार देता है ॥ १०२ ॥

चिकित्सामाह—

घना भीरुब्राह्मी कलितरुबला निम्ब जटिला–
जया द्राक्षा राजद्रुम कुलक पाठाच शकलम् ।
समांशं भूनिम्बाममल दशमूलैरतिबलां-
बलव्याधिवातं शमयति च रुग्दाह मतुलम् ॥ ४ ॥
नृपद्रुकटुकाभया कवच हार हूरा घनैः
शृतं जल मति द्रुतं हरतिदाह मत्यद्भुतम् ॥ ५ ॥
जलधरमलयजनागर सबालकोशीर पर्पटैः क्वथितम् ।
यः पिवति पयः शीतं शाम्यति रुग्दाहकस्तस्य ॥ ६ ॥

घनेति—मुस्तक, शतावरी, ब्राह्मी, बहेड़ा, खरेंटी निंब, जटा· मांसी, हरड़, मुनका, अमलतास, परवल, पाठा, आंवला, चिरयता

दशमूल, अतिबला (कंधी) इसका बराबर भाग ले कर क्वाथ कर पीने से बलवान् रोग को वात को अतुल रुग्दाह को शान्त करता है ॥ ४ ॥

नृपद्रुरिति—अमलतास, कुटकी, हरड़, पितपापड़ा, मुनका, मुस्तक, इनसे किया हुआ काढ़ा पीने से रुग्दाह को शीघ्र नाश करता है ॥ ५ ॥

जलधरेति—मुस्तक, चन्दन, सुण्ड, नेत्रवाला, खस, पित्तपापड़ा, इनसे क्वाथ किया हुआ जल ठण्डा करके पीने से रुग्दाह को शान्त करता है ॥ ६ ॥

योगरत्नाकरात्—

बदरीपल्लवप्रलेपः श्रीखण्डारिष्ट फेन संयुक्तः ।
दातव्यः पदतलयो रुग्दाहक सन्निपातघ्नः ॥ ७ ॥
पर्युषित धान्य सलिलं प्रातः पीतं स शर्करं पुंसाम् ।
अन्तर्दाहं शमयति प्रवृद्धमपि तत्क्षणादेव ॥ ८॥

बदरी इति—बेर के पत्ते, चन्दन रीठे की झाग इन का लेप पैरों के अधोभाग में लगाने से रुग्दाह सन्निपात को नाश करता है ॥७॥

रात में धनिये को भिगो कर प्रातः काल छान ले उस में खाण्ड मिला कर पीने से अत्यन्त बढ़े हुए अन्तर्दाह को शान्त करता है ॥८॥

जयेजया गुहा सहा-युगलगोक्षुरं चापरं ।
किरातं जल कच्छुरा नलद पर्पटाम्भोधरम् ॥ ९ ॥
पैत्तिकज्वरे प्रोक्तः षडंगोऽत्र नियोजयेत् ।
एभिः प्रयोगैर्दोषेषुपक्केष्वपि न शाम्यति ॥ १० ॥
यदि दाहस्ततः कुर्यात्सुचिरं शिशिरं विधिम् ।

जयेदिति—जया (अर्थात् अरनी) पृष्टपर्णी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, गोक्षुरु, चिरायता, नेत्रवाला, कौंचबीज खस, पित्तपापड़ा, मोथा, तथा पैत्तिक ज्वर में कहा हुआ षडंगयोग (मोथ, पित्तपापड़ा, खस, चन्दन, नेत्रवाला, सुण्ड,) भी यहां मिला कर पिलावे । यदि इन प्रयोगों से दोष पक्क होने पर भी दाह शान्त न हो तो शीघ्र शात विधि का उपयोग करना चाहिये ॥ ९—१० ॥

शीतविधिमाह—

हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशांक करशीतले ॥ ११ ॥
मलयोदक संसिक्ते सुप्याद्रुग्दाग पीडितः ।
नभस्योत्तान सुप्तस्य नाभिस्थ कांस्य भाजने ॥ १२ ॥
पतिता शीत तोयस्य धारा दाघं निवारयेत् ॥

हर्म्येति—बड़े श्वेत महल पर यहां आकाश में चन्द्रमा की शीतल किरणे पड़ती हो उस स्थान पर चन्दन के जल से सिक्त की हुई शय्या पर रुग्दाह से पीडितरोगी को सुलाये ॥

नभस्येति—मकान के ऊपर के भाग में सीधे सोये हुए पुरुष की नाभि पर कांसी के पात्र को रखे और उस पर शीतल जल की धार देने से शीघ्र दाह की शान्ति होती है ॥ ११—१२ ॥

पयोधराभ्यां कुशलां सुरूपां नवयौवनाम् ॥ १३ ॥
प्रमदां स्वभुजाश्लेषैर्भजे द्रुग्दाह मूर्छितः ।
प्रह्लादं चास्य विज्ञाय तां स्त्रीमपनयेत्पुनः ॥ १४ ॥
हितं च भोजयेदन्नं येनाप्नोति सुखंमहत् ।

सहस्रधौतघृतमाह

मलयज यवभि श्रितमुद्गसित् सितिवरात्सलिलेनसहस्रशः ।
हृत जलं घनसंग घृतं किल तरुण दारुण दाहमपोहति १५

सुन्दरस्तनों से युक्त सुन्दर रुप वाली नवयौवना स्त्री को भुजायों द्वारा रुग्दाह से मूर्छित आलिंगन करे, जब इसे प्रसन्नता हो गई हो तो स्त्री को पीछे हटा ले, और हित्त अन्न खिलाये जिस से उसे सुख प्राप्त हो ॥

मलजयेति—चन्दन तथा यव मिला हुआ मखन हज़ार वार पानी से धोकर जल निकाल कर मालिश करने से दारुणदाह को हरता है ॥ १३-१५ ॥

चित्तभ्रममाह—

नर्तनं रोदनं गानं हास्यं मोहस्तमोभ्रमः ।
विकटालोचनं चैवं प्रलापो मद एवच ॥ १६ ॥
आपदस्थः नरस्तेन जीवेदेकादशावधि ।

अन्यच्च—

यदि कथ मपि पुंसां जायते काय पीड़ा-
श्रममद परितापो मोह वैकल्यभावः।
विकल नयन हासो गीतनृत्य प्रलापी-
अभिदधति तमसाध्यं केऽपिचित्तभ्रमाख्यम्॥ १७॥

नर्तनमिति—नाचना, रोना, गाना, हसना, मोह, अन्धकार, भ्रम का होना, टेढ़े नेत्र करना, प्रलाप करना, और मद हो, विपत्ति में फंसा हुआ पुरुष इस ज्वर से ग्यारह दिन तक जीता है॥

अगर कभी पुरुष के देह में पीड़ा उत्पन्न हो जाये, श्रम, मद, और सन्ताप, मोह तथा विकल भाव हो जाये, नेत्र भी विकल हो और हंसे, गाये, नाचे, प्रलाप करे तो कोई आचार्य उस चित्तभ्रमाख्य ज्वर को असाध्य कह देते हैं॥ १६—१७॥

चिकित्सा—

चित्तभ्रमं सन्निपातं तीक्ष्णैर्नस्याञ्जनैर्जयेत्।
मृद्विकामर दारुमत्स्य शकलामुस्तामलक्योऽमृता॥
पथ्या रेवत रामसेनक रजो राजि फलाभिर्युतः।
हन्युश्चित्त रुजो दुर्दुर दलाद्राक्षा पटोलीपयः।
पथ्या पर्पट राजवृक्ष कटुकं शंबूक पुष्पाश्रृता॥ १८॥

चित्तभ्रम सन्निपात को तीक्ष्ण नस्य तथा अञ्जन से जीते। मुनका, देवदारु कुटकी, मोथा, इमली, विदारी कन्द, हरड़ वा अमलतास, चिरायता, पित्तपापड़ा, परवल, इन औषधियों का क्वाथ, अथवा ब्राह्मी, मुनका, परवल, नेत्रबाला हरड़, पित्तपापड़ा, अमलतास, कुटकी शंखपुष्पी इन का क्वाथ चित्त भ्रम ज्वर को नाश करता है॥ १८॥

नयनाञ्जनमाह

करञ्जवीज त्रिफला हरिद्रा व्योष सैन्धवैः।
सवचा हिंगु सिद्धार्थैर्वत्स मूत्रविमिश्रितैः॥
पिष्टैर्गुटीयं नयने विधेया सुप्तचेतना।
चित्तभ्रमापस्मृतिघ्ना भूतशीर्षा शिरोगनुत्॥ २०॥

करञ्जवीजेति—करञ्जुये के बीज, त्रिफला, हलदी, मघां, मिर्चां

सुण्ड, सैन्धालूण, बच, हींग, सरसों, इन औषधों को कूट पीस गौ के बच्छड़े का मूत्र मिला कर गोली बनाना और इस गोली का अञ्जन नेत्रों में करने से हीन चेतना वाले व्यक्ति को (अर्थात् मूर्च्छा युक्त को, चित्तभ्रम सन्निपात और अपस्मार को हरता है तथा भूत बाधा और नेत्र रोग का नाश करता है ॥ १६—२० ॥

मुरा मूर्धज मेघाह्व मधुकमलयोद्भवः ।
मरुत्तरु मधून्मिश्रैः पुर पाणिजपांशुभिः ॥ २१ ॥
लोहलामज्जकैलाभि धूपश्चित्तभ्रमापहः ।
ग्रहदोष हरः श्रीदः सौभाग्य करणः परः ॥ २२ ॥

मुरा इति—मुरामांसी, नेत्रबाला, मोथा, मुलहठी, चन्दन, देवदारु, । मधु मिला कर, गुग्गुलु, नख पित्तपापड़ा, अगरु, खस, इलाची, इन सब को मिला कर धूप देने से चित्तभ्रम सन्निपात को ग्रहदोष को हरता है, लक्ष्मी के देने वाला, सौभाग्य कारक होता है ॥ १२—२२ ॥ इति चित्तभ्रमः ॥

अथकर्णकमाहः—

यः शोथः सन्निपातान्ते कर्णाधः स्याद्बहुव्यथा ।
प्रलापमोह वाधिर्य कम्पकण्ठ ग्रहत्व कृत् ॥ २३ ॥
प्रसेकांग व्यथा श्वासोमदश्चैवारति ज्वरः ।
कर्ण कोथकाख्यो हिज्वरः पूर्व तुयोभवेत् ॥ २४ ॥
सोऽसाध्यो मध्य तो यत्न साध्योन्ते सुखसाध्यकः ।
मासैस्त्रिभिः कर्णकाख्यो हन्ति मुञ्चति वा नरम् ॥ २५ ॥

अन्यच्च—

प्रलापश्रुतिह्रास कण्ठ ग्रहांग व्यथा
श्वास कास प्रसेक प्रभावम् ।
ज्वरं ताप कर्णान्तयो र्गल्ल पीड़ा
बुधाः कर्णकं कष्ट साध्यं वदन्ति ॥ २६ ॥

जो शोथ सन्निपात ज्वर के अन्त में कान के नीचे बहुत पीड़ा करने वाला हो प्रलाप, मोह, वैहरापन, कम्प, कण्ठ में पीड़ा करे, मुख से थूकें आवें, अगों में पीड़ा हो श्वास, मद मन का न

लगना, ज्वर, यह कर्णक नामक ज्वर होता है। ज्वर के होने से पहिले जो शोथ कान के नीचे हो जाये वह असाध्य होता है॥ ज्वर के हो जाने पर जो हो वह यत्न साध्य होये, जो ज्वर के अन्त में हो वह साध्य, जानना चाहिये। यह ज्वर तीन मास में मार देता है या छोड़ जाता है॥

प्रलापेति—प्रलाप हो, कान सुन न सके, कण्ठ रुकजाय, अंगों में पीड़ा हो, श्वास, कास, थूकें आवें ज्वर का ताप हो, कानों के अन्त में और गले में पीड़ा हो, इस ज्वर को बुद्धिमान् लोग कर्णक सन्निपात कष्ट साध्य कहते है॥ २५—२६

चिकित्सामाह—

> भ्रमाश्चिकित्सा तुदितोऽस्यधूमः प्रहर्षदः स्यात्कवलग्रहस्य।
> नस्यं सुखं सञ्जनयत्यवश्यं लेपस्तु सर्वे सुघृतावलेपः॥२७
> रक्तावसेचनं कार्यं नीरुजाति मुहुर्मुहुः।
> तथा कार्यं प्रयत्नेन यथा पाको नजायते॥ २८॥

कर्णक की चिकित्सा कहते है—इस ज्वर में धूम तथा कवल धारण कराना प्रसन्नता के देने वाला होता है। नस्य दी हुई अवश्य सुख को पैदा करती है। तथा लेप घृत युक्त किया हुआ हितकारक होता है।

इस ज्वर में पुनः २ रक्त निकालना चाहिये जैसे पीड़ा न हो। तथा ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे शोथ का पाक न हो॥ २७—२८॥

> [1]सेकं समस्तं नयत्यल्पसेकः
> समुद्रिक्तशोफं च रक्तावसेकः।
> विपक्वं च शस्त्रक्रिया पूयजित्स्यात् व्रण-
> त्वंगतं च द्रुतंतच्चिकित्सा॥ २९॥

सेक किया हुआ सारे शोथ का विलयन कर देता है। रक्त निकालने से बढ़ा हुआ शोथ शान्त हो जाता है। और यदि शोथ पक जाये तो पूयनिकालने के लिये शस्त्रक्रिया हित होती है। शोथ यदि व्रणभाव को प्राप्त हो जाये तो व्रणनाशक चिकित्सा करनी चाहिये॥ २९॥

१. 'प्रलेप' इतिवपाठः।

निशैन्द्रीं गुदीमूलैस्तु कुष्टसैन्धव दारुभिः ।
लेपोऽर्क क्षीर वान् व्यस्तः सर्वो वा कर्णकापहः ॥३०॥
निम्बारग्वध मूलानि निमायोक्तं प्रलेपने ।
स्रावणं पूय गन्धीनां रोहणं स्याद्व्रणेषु च ॥ ३१ ॥
तुत्थालसर्षप शिला. नवसार गन्ध
कासीस कुष्ट पटु हंसपदी करंजः ।
लेपात्पलंकष युताश्च सयावशूकः
सस्वर्जिका सपदि कर्णक भेदनाम्ना ॥ ३२ ॥

हलदी, इन्द्रवारुणीमूल, हिंगोटमूल, कुठ, लवण, देवदारु, अर्क-दुग्ध, इन सब द्रव्यों को भिन्न २ अथवा सब मिलाकर लेप करने से कर्णक को हरता है। निंवमूल, अमलतासकामूल हरिद्रायुक्त इन को पीस कर लेप करने से पूय तथा दुर्गन्धी का स्राव करता है। तथा व्रणों के भरने में हित होता है।

नीलाथोथा, हरिताल, सरसों, मनसिल, नवसादर, गन्धक, हीरा कासीस, कुठ, लवण, हंसपदी, करंज, गुग्गल, और सज्जी-खार, मिला कर लेप करने से शीघ्र कर्णक नष्ट होता है।

दशाङ्घ्रि त्रिफला व्योष तिक्ताभू निंबकै कृतः ।
क्वाथो पीतो हरत्याशु कर्णकस्य रुजोऽखिलाः ॥ ३३ ॥
गार्गी व्योष जया क्षुद्रा पुष्करोग्राऽमृताघनैः ।
रास्ना तिक्ता शृंगिकाभिः क्वाथः स्यात्कर्णकापहः ॥ ३४ ॥
घृतं च पाययेत् सिद्धंतिक्तकैर्वा परै रपि ।

दशाङ्घ्रीति—दशमूल, त्रिफला, त्रिकटु, कुटकी, चिरायता, इन से किया हुआ काथ पीने से शीघ्र कर्णक सन्निपात की पीड़ा को हरता है ॥

भिड़ंगी, त्रिकटु, हरीतकी, कटेरी, पोहकरमूल, वच, अमृता, (गिलोय) मुस्तक, रासना, कुटकी, काकड़ासिंगी, इनका काथ कर्णक को नष्ट करता है। तिक्तरस वाले द्रव्यों से अथवा अन्य

---

१. 'निशायुक्तं' इतिपाठः।
२. 'मधुरै रपि' इतिवापाठः।

शोधन तथा ज्वरघ्न औषधियों से सिद्ध किया हुआ घृत भी पान कराना हित है ॥ ३३—३४ ॥

अथ कण्ठकुब्जमाह—

हनुस्तम्भोऽरुचिर्दाहः शिरोरुङ् मोह कम्पनम् ॥ ३५ ॥
प्रलापोष ज्वरश्वासो व्यथा स्याद् गल रोधनम् ।
मूर्च्छा विलपनं चात्र त्रयोदश दिनानि वै ॥ ३६ ॥
कण्ठ कुब्जाभिधानोऽयं सन्निपातस्तु दारुणः ।
शिरोर्त्ति कण्ठग्रह दाहमोह
कम्प ज्वरो रक्त समीरणार्त्ति ।
हनुग्रह स्तापविलापमूर्च्छाः
स्यात्कण्ठकुब्जः खलुकष्टसाध्यः । ३७ ॥

हनुसन्धि जकड़ी जाय, शिर में पीड़ा, मोह कम्पन हो प्रलाप गरमी, ज्वर, श्वास पीड़ा, हो, गला रुक जाय, मूर्च्छा हो, विलाप करे इस में तेरह दिन की अवधि होती है यह कण्ठकुब्जनामक सन्निपात है ॥

औरभी—शिर में पीड़ा, कण्ठरुके, दाह, मोह, कम्प, ज्वर, रक्त, तथा वायु की पीड़ायें हों हनुग्रह, ताप, विलाप, मूर्च्छा, हो यह कण्ठकुब्जनामक सन्निपात कष्ट साध्य होता है ॥ ३५—३७ ॥

चिकित्सामाह

किरात कटुका कणा कुटज कण्टकारी शठी ।
कलिद्रु कलश्यभया कटुका कट्फलाम्भोधरैः ॥ ३८ ॥
विषानलद पुष्करानल कुलीर भृंगी वृषैः ।
महौषध सखैरयं जयति कण्ठ कुब्जं गणः ॥ ३९ ॥
त्रिफला व्योष तिक्ताब्द हरिद्रा वासकेन्द्रजैः ।
अश्वगोमूत्र युङ् मुस्त कङ्की कट्फल वत्सकैः ॥ ४० ॥
क्वाथ एतैर्निहन्त्याशु कण्ठ कुब्जाभिधं ज्वरम् ।
अपनयति कण्ठकुब्जं कृष्णापामार्ग बीजयोर्नस्यं ।
वत्ससलिलेन सहितं त्रिकटु कटुतुम्बिनी नस्यम् ॥४१ ॥

किरातेति—चिरायता, कुटकी, पिपली, इन्द्रजौं, कटेरी, कचूर, बहेड़ा, पृष्टपर्णी, हरड़, पीतकुटकी, कायफल, मोथा, अतीस, खस, पोहकरमूल, चित्रक, काकड़ाश्रृंगी वांसा, सुण्ड, इन सब को इकट्ठा कर काथ पीने से कण्ठकुब्ज को जीतता है ॥

त्रिफला, त्रिकटु, कुटकी, मोथा, हलदी, वांसा, इन्द्रजौं, गोमूत्र, इनका काथ अथवा मोथा, रक्तचन्दन, कायफल, टेंटू इन का काथ पीने से शीघ्र कण्ठकुब्ज नामक सन्निपात को हरता है ॥

अपामार्ग तथा पिपली की नस्य लेने से कण्ठकुब्ज नाश हो बच्छे का मूत्र पिपली, मरिच, सुण्ड, कटुतुम्बी, की नस्य देने से भी कण्ठकुब्ज सन्निपात दूर होता है ॥ ३८—४१ ॥

इति कण्ठकुब्जः

अथशीतांगमाह—

वपुर्हिमं श्लथं कासं वमिं हिक्कां क्लमं कफं ।
व्यथातिसारिणं श्वासं मोहं कम्पं स्वरक्षयम् ॥ ४२ ॥
ज्वरःप्रलापोन्तर्दाहः पक्षैकायु र्हिमाङ्गके ॥

अन्यच्च

हिमसदृशशरीरो वेपथुः श्वास हिक्का
शिथिलित सकलांगो खिन्ननादोग्र तापः ।
क्लमथु दवथु कासच्छर्द्य तीसारयुक्तः ।
त्वरित मरण हेतुश्शीतगात्र प्रभावात् ॥ ४३ ॥

वपुरिति—शरीर ठण्डा हो, और ढीला हो कास हो अत्यन्त वमन हो, हिचकी, थकावट तथा कफ निकले, पीड़ा हो अतिसार, श्वास, मोह, कम्प, स्वर नाश ज्वर, प्रलाप, अन्दरदाह हो तो ऐसे सन्निपात की पन्द्रह दिन आयु होती है ॥

हिमेति—वर्फ के समान ठण्डा देह हो, कम्प, श्वास, हिक्का हो, सारे अंग शिथिल हो जायें, पसीना आवे, शब्द हो, अत्यन्त ताप हो, थकावट, उपताप हो, कास, वमन, अतीसार युक्त हो, शीत गात्र हो जाने से शीघ्र मरण का कारण हो जाता है ॥ ४२-४३॥

अथचिकित्सामाह—

भास्वन्मूलंजीरक व्योष भार्गी
व्याघ्री शृंगी पुष्करं गोजलेन ।
सिद्धं सद्यो गात्रार्त्तिमोह श्वास
श्लेष्मोद्रेक कासान्निहन्ति ॥ ४४ ॥
कर्कोटकाकन्द रजःकुलत्थ कृष्णा
वचा कट्फल कृष्णजीरैः ।
किरात तिक्ताऽग्निक कट्फलाम्बु
पथ्याभिरुद्वर्त्तनमत्रशस्तम् ॥ ४५ ॥

भास्नमूलमिति—आक की जड़, सफेदजीरा, त्रिकुटा, भार्गी, कटेरी, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, गोमूत्र से सिद्ध किया हुआ काढ़ा गात्र की पीड़ा, मोह श्वास, कफाधिक्य को, कास को नाश करता है। कर्कोटकाकन्द्रजेति—खेकसा के मूल का चूर्ण, कुलत्थी पिपली, वच, कायफल, कालाजीरा चिरायता, कुटकी, चित्रक कटफल, नेत्रबाला, हरड़ इन से किया हुआ उबटना शीताङ्ग में हित होता है ॥ ४४—४५ ॥

अथरसप्रयोगमाह—

रसगन्धकद्यमणिताम्रविषा त्रिकटुककणा युतानि मुहुः ।
शिखिमूलकरानिमिषपित्तभरैः परिमर्द्यभावित मथाग्निरसैः ॥
गुटिकी कृतो द्विगुण वल्लमितं घनसार जीरक कणार्द्रकरसैः ।
अतिशैत्यमोह युतमप्यचिराज्जयति ज्वरं तमपिकष्टतरम् ॥४६ ।

पारा, गन्धक, अर्कमूल, ताम्रभस्म, अतीस, त्रिकटु, पिपली, इन सब को मिला कर चित्ते की जड़ मिला कर मछली के पत्ते से भली प्रकार मर्दन कर पीछे चित्रक के रस की भावना दे कर २ रत्ति प्रमाण की गोली बनाये कर्पूर, सफेदजीरा, पिपली, अद्रक इन के रस के साथ देने से अत्यन्त शीत और मोह युक्त ज्वर को भी शीघ्र ही जीतता है ॥ ४६ ॥

इति शीताङ्गः ॥

१· "भास्चन्मूलाजाजीयुक्" इतिवापाठः

अथतन्द्रिकमाह--

ज्वरे प्रथम मुत्पन्ने चक्षुर्भ्यां नैवपश्यति ।
तीव्रतापो ज्वरो जिह्वा कृष्णा स्यात्कण्टकान्विता ॥४७॥
कसनं श्वसनं कण्ठे कण्डू कण्ठरुजा युता ।
क्लम स्तृषातिसरणं तन्द्रास्यात्पञ्चविंशति ॥ ४८ ॥
वासरा स्तान्द्रिके ह्यायु र्युक्तमागमवेदिभिः ।

अन्यच्च—

प्रभूता तन्द्रार्त्तिर्ज्वर कफ पिपासा कुलतरो ॥
भवेच्छ्यामा जिह्वा पृथुल कठिना कण्टक वृता ।
अतीसार श्वास क्लमथु परिताप श्रुतिरुजो ॥
भृशं कण्ठे जाड्यं शयनमनिशं तन्द्रिकगदे । ४९ ॥

ज्वर के उत्पन्न होते ही नेत्रों से देख नहीं सकता तीव्र ताप हो ज्वर हो जिह्वा काली कांटों से युक्त हो। कास, श्वास, कण्ठ में कण्डू तथा पीड़ा हो थकावट, प्यास, अतिसार तथा तन्द्रा हो। तन्द्रिक सन्निपात की आयु पचीस दिन की आयुर्वेद के पण्डितों ने कही है ॥

अथचिकित्सामाह—

शष्पा दारु दुरालभा च रजनी कृष्णा कणा नागरं ।
भार्गी तिक्त श्रेयसी दशजटा मुस्ता बृहत्योपि च ॥
वासा निम्ब पटोल पुष्कर जटा भूनिंब सार्धं समं ।
क्वाथं तन्द्रिक नाशनं ज्वरहरं पानादिभिर्योजितम् ॥५०॥
क्षुद्रा पथ्यामृताविश्व पौष्करं तन्द्रिकापहम् ।
व्योषाऽगस्त्य रसैर्नस्यं वाश्वलालेन्दु सैन्धवात् ॥ ५१ ॥
विषतिन्दु किरातंच कर्पूर करहाटकम् ।
चूर्णं सुरारसै र्लीढं मुहुस्तन्द्रानिवारणम् ॥ ५२ ॥

---

१. 'कर्णरुजोमदः' इतिपाठः ।
२. 'युक्तसमं' इतिवापाठः ।
३. "सैन्धवैः' इतिवापाठः ।

शष्येति—दूबघास, देवदारु, धमासा, और हलदी, पिपली, जीरा, सुगठ, भार्गी, कुटजमुल, हरड़ दशमूल, मोथा, बड़ी कटेरी वांसा निंव परवल, पोहकरमूल, चिरायता सब से आधा इनका काथ पीने से तन्द्रिक सन्निपात का शीघ्र नाश करता है।

क्षुद्रेति--कटेरी हरड़, गिलोय, सुगठ, पोहकरमूल यह भी तन्द्रिक को नाश करता है॥

व्योषेति—पिपली, मरिच, सुगठ, इन को अगस्ती के रस से नस्य ले अथवा घोड़े की लार, कर्पूर, सैन्धालवण इन से की हुई नस्य तन्द्रिक को नसाती है॥

विषतिन्दीति--कुचला, चिरायता, कर्पूर, अकरकरा इन का चूर्ण तुलसी के रस में चाटने से तन्द्रिक सन्निपात को रोकता है ५०-५२

प्रलापकमाह—

प्रलपति कम्पते तिष्ठति विचेतनो वेपते मुहुःपतति।
ज्वरभर[1] दाहाकुलतो यत्र[2]नरः सप्रलापकः प्रोक्तः॥ ५३॥
यामीतिवचनं वक्ति सयात्येव यमालयं।
चतुर्दश दिनान्यायु स्तस्योक्तं पूर्व सूरिभिः॥ ५४॥

अन्यच्च—

कम्प प्रलाप परितापन शीर्ष पीड़ा,
प्रौढ़ प्रभाव पवमानपरोऽन्यचिन्ता।
प्रज्ञाप्रणाश विकलः प्रचुर प्रवादः,
क्षिप्रंप्रयातिपितृपालपदं प्रलापी॥ ५५॥

प्रलाप करता है कांपता है चेतना रहित हो कर पुनः २ काम्पता हुआ गिरता है अत्यन्त ज्वर के दाह से व्याकुल हो तो उसे प्रलापक सन्निपात कहा है। जाता हूं ऐसा कहता है वह यम के घर को जाता है। विद्वानों ने इस की मर्यादा दस दिन की कही है। कम्प, प्रलाप, सारे देह में ताप हो, सिर में पीडा अधिक प्रभावयुक्त हो कर दूसरे की चिन्ता करे बुद्धिनाश विकलभाव अधिक हो विना प्रयोजन बके ऐसा प्रलापी शीघ्र पितृपद को प्राप्त होता है॥ ५३—५५॥

१. 'भव' इतिवापाठः
२. 'येन' इतिवा

चिकित्सामाह—

सतगर वरतिक्ता रेवताम्भोद तिक्ता
नलदतुरग गन्धा भारती हार हूरा ।
मलयज दशमूली शंख पुष्पी सुपक्का-
प्रलपन मपि हन्युः पान तो नाति दूरात् ॥ ५६ ॥
सान्त्वनै रञ्जनै स्तीक्ष्णैर्नस्यै स्तिमिर लोचनैः ।
सर्व तो विकृतं चित्त मस्य प्रकृतिमानयेत् ॥ ५७ ॥

तगर, पर्पट, अमलतास, मुस्तक, कुटकी, खस, अश्वगन्धा ब्राह्मी, मुनक्का, रक्तचन्दन, दशमूल, शंखाहुली, इन ओषधियों से पकाया हुआ काथ पीने से प्रलापक सन्निपात को शीघ्र ही हरता है। हौंसला देने से तीक्ष्ण अञ्जन तथा नस्य से इस सन्निपात वाले के विकृत चित्त को सब प्रकार से प्रकृति में लाने का यत्न करे ५६-५७

अथरक्तष्ठीवीमाह—

पिपासा हृल्लासाऽरुचि दवथु कासा रतिमद-
श्रमश्वासाध्मानाति स्रुति वमि हिक्का ज्वरकरः ।
स्मृतो रक्तष्ठीवी पृथुकठिन कोठोद्गमरुजा-
परिम्लानो रोगी रुधिरयोगाद्गिरतिवा ॥ ५८ ॥
कर्णाक्षि मुखनासाभ्योरक्तस्रावै रसाध्यकः।
आयुरस्य दशाहं स्यात्कुर्याद्रक्त हराःक्रियाः ॥ ५९ ॥

अन्यच्च--

रक्तष्ठीवी ज्वरवमि तृषा मोह शूलातिसाराः ।
हिक्वाध्मान भ्रमण दवथु श्वास संज्ञा प्रणाशाः ।
श्यामारक्ताधिकतर रसना मण्डलोत्थानरूपा ।
रक्तष्ठीवी निगदित इह प्राण हन्ता प्रसिद्धः ॥ ६० ॥

प्यास, उबकाई, अरुचि, ताप, कास, मनका न लगना मद,

---

१. 'सेवने' इतिवापाठः ।

२. 'अरुचि' मदेतिपाठः ।

३. पृथुलतमेतिवापाठः ।

श्रम, श्वास, अफारा, अधिक स्राव हो, वमन हो, हिचकी, ज्वर करे तो उसे रक्तष्ठीवी कहा है जिसमें मोटे, चकते (धप्फड) पैदा हों पीडा हो, रोगी रक्त के अधिक योग होने से म्लान हो जाये। कान, नेत्र, मुख, नासा, से रक्त का स्राव होने से असाध्य होता है इस ज्वर की आयु दश दिन की होती है और रक्त को हरने वाली क्रिया करनी चाहिये। और भी ज्वर, वमन, तृष्णा, मोह पीड़ा अतिसार हिचकी, अफारा, भ्रम उपताप, श्वास, ज्ञान का नाश हो, काली लाल जिह्वा हो, मण्डल (चकते) उत्पन्न हों इन उक्त लक्षणों से रक्तष्ठीवी असाध्य होता है ॥ ५८--६० ॥

चिकित्सामाह—

रोहिषधान्य यवासकवासा, पर्पट गन्धलता कटुकाभिः।
शर्करया समभेष कषायः, सम्भवति रक्तज प्रशमाय ॥ ६१ ॥
पद्मक चन्दन पर्पट मुस्ता, जातिवराऽरुणचन्दनवारि ॥
क्लीतक निम्बयुत परिपक्वं, वारिभवेदिह शोणितहारि॥६२॥
श्याम गैरिक रोध्राब्द सिताक्षौद्राञ्जनान्वितः।
वासकस्वरसः पीतो रक्तं शमयति क्षणात् ॥ ६३ ॥

रोहिषेति--गन्धतृण, धनियां, जवासा, वांसा पित्तपापडा, प्रियंगु, कुटकी, खण्ड, मिला कर पिया हुआ यह कषाय रक्तष्ठीवी सन्निपात की शान्ति के लिये होता है॥ पद्मकेति-पद्माख, श्वेत चन्दन, पित्तपापडा, मोथा, चमेली, त्रिफला, रक्तचन्दन, मुष्कबाला, मुलहठी, निंबपत्र, इन औषधियों से पकाया हुआ जल रक्त-ष्ठीवी को हरता है॥ श्यामेति-गन्धतृण, स्वर्णगेरु, लोध्र, मोथा, मिश्री, शहत, अञ्जन युक्त करके बनाया हुआ चूर्ण वांसे के स्वरस से पिया हुआ शीघ्र रक्त को शान्त करता है ॥ ६१-६३ ॥

अथभुग्ननेत्रमाह—

श्वासप्रलापमोहार्त्तोजन्तुः स्यात्कासहासवान्।
भुग्ननेत्रे सन्निपाते आयुर्दश दिनानिवै ॥ ६४ ॥

अन्यच्च—

ज्वर बलापचयः स्मृतिशुन्यता,
श्वसन भुग्नविलोचनमोहितः।

प्रलपन भ्रम कम्पन शोफवां,

स्त्यजति जीवन माशु सभुग्नदृक् ॥ ६५ ॥

श्वास, प्रलाप, मोह, से पीडित मनुष्य होता है। तथा कास हास्य' अर्थात् प्रलाप करता है। भुग्ननेत्र सन्निपात में दश दिन की अवधि मानी गई है ॥ और भी ज्वर, बलका नाशक, स्मरणशक्ति का ह्रास हो, श्वास, नेत्र भीतर को या टेढ़े हो जायें, प्रलाप भ्रम, कम्प, शोथ, हो जावे इस भुग्न नेत्र सन्निपात से युक्त रोगी शीघ्र प्राणों को छोड देता है ॥ ६४-६५ ॥

चिकित्सामाह

पटोलाब्द वरारिष्टैः क्षुद्रा रजनी दारुभिः।

क्काथः पीतो भुग्न नेत्रं मदमोह ज्वरं जयेत् ॥ ६६ ॥

अवलेहः—

किरात कृष्णोषण राजिकाभिर्मधु-

प्लुताभिः प्रवरोऽवलेहः।

नस्यम्—

मधुक सारोषण रामठेयं[1] नस्ये

ञ्जनेस्यान्मधु सिन्धु कृष्णम् ॥ ६७ ॥

धुपः—

पिचुमन्द वचा रविमूलमरुत्तरुगन्ध वधू तगरागरुभिः।

मृदुमाल्य शठी सह सिन्धुकरुड्मधु सर्षपकैरिहधूपवरः ६८

पटोलेति-परवल, मोथा, त्रिफला, निम्ब, कटेरी, हलदी, देव-दारु इनका क्काथ बना कर पीने से भय तथा मोह युक्त ज्वर को जीतता है ॥ किरातेति-चिरायता, पिपली, मरिच, राई, इन सब द्रव्यों का चूर्ण कर मधु में मिला कर उत्तम चटनी होती है।

मधूकेति-मौआ, विजयसार, मरिच, हींग, इन का नस्य बना कर प्रयोग में लावें। तथा मधु, लवण, मरिच इन द्रव्यों को पीस करअञ्जन करने से भुग्ननेत्र को जीतता है ॥

धूपः—पिचुमन्देति, निम्ब, वच, अर्कमूल, देवदारु, गन्धप-लाशी वा सुगन्धवाला तगर अगरु, मृदुमाल्य (   )कचूर

१ रामठोग्रमिति वा पाठः।

पांशुलवण, सैन्धालवण, कुठ मधु, सरसों इन सब का धूप बनाकर भुग्ननेत्र में प्रयोग करना हित होता है ॥ ६६–६८ ॥

अथजिह्वकमाह--

कठिनतर कण्टका वृतारसना, नश्रृणोतिभाषते नापि ।
ज्वर ताप कास मोह श्वासयुतो जिह्वकाक्रान्तः ॥ ६९ ॥
बलहानिर्भवेदस्य जागरूकोऽपिजायते ।

अन्यच्च—

श्वसन कास परितापन विह्वलाः-
कठिन कण्ठक वृताति जिह्वकः ।
वधिर मूक बलहानि लक्षणो
भवति कष्ट साध्यतर जिहकः ॥ ७० ॥

कठिन कांटों से युक्त जिह्वा हो जाय, न सुने, और बोलता भी नहीं। ज्वर का ताप, कास, मोह, श्वास से युक्त तो जिह्वक से आक्रान्त होता है ॥ बल की हानि जिह्वक में होती है और निद्रा नाश भी हो जाती है--

श्वास, कास, ताप से व्याकुल, कठिन कांटों युक्त जिह्वा हो, बहरापन हो बोले नहीं, बलका नाश हो, इन लक्षणों युक्त कष्ट साध्य जिह्वक होता है ॥ ६९–७० ॥

अथचिकित्सामाह—

तीक्ष्ण द्रव्यैः सलवणै र्मातुलुंग रसाप्लुतैः ।
जिह्वायां शुद्धि कृक्षेपो मूकत्वमुपशाम्यति ः ॥ ७१ ॥
कटुतैलारनालाभ्यां कुर्वीतकवल ग्रहम् ।
केवलेनाथवा सद्यः कांजिके नास्य शुद्धये ॥७२ ॥
किरात तिक्ताकुलकृत कुलिञ्जं
कर्चूर कृष्णा कटुतैल युक्तम् ।
अम्लद्रवः संशमयेद्र सज्ञा
दोषान्स्तुतो दाशरथिर्यथाशु ॥ ७३ ॥
शालूरपर्णी मालूरमूलामयमधुप्लुता ।

शम्बूकपुष्पी सहिता सेव्यावाचां विशुद्धये ॥ ७४ ॥

क्षुद्रा नागर पुष्करामृतलता ब्राह्मी वचासुव्रता ।
भार्गी वासक यास तोय सुरसा क्वाथो जयेज्जिह्वकम् ॥७५॥

तीक्ष्णद्रव्यैरिति--तीक्ष्ण द्रव्यों से सेन्धालवण, विजौरे के रस सहित जिह्वा पर लेप करने से जिह्वा शुद्धि शीघ्र होती है ॥ ७१ ॥

कटुतैलामिति—सरसों का तैल, कांजि मिलाकर कवल धारण करने से अथवा केवल कांजि के कवल से जिह्वा शुद्धि होती है ॥ ७२ ॥

किरातेति--चिरायता, अकरकरा, कुलिञ्जन, पिपली सरसों के तैल से युक्त की हुई तथा बीजपूरादि रस प्लावित हुई जिह्वा के दोषों को ऐसे दूर करता है जैसे रामचन्द्र की स्तुति दोषों को अर्थात् पापों को शीघ्र दूर करती है ॥

शालूरपर्णीति--ब्राह्मी, विल्वमूल, कुठ, मधुयुक्त करके शंखपुष्पी के साथ सेवन करने से जिह्वा की शुद्धि के लिये होता है ॥

क्षुद्रेति-कटेरी, सुण्ड, पोहकरमूल, गिलोय, ब्राह्मी वच, सुगन्धवाला, भार्गी, वांसा, जवासा, मुष्कबाला, तुलसी का किया हुआ क्वाथ जिह्वक को जीतता है ॥ ७३--७५ ॥

अन्यच्च

विश्वावर्मविभावरी युगवरा वत्सादिनी वारिद ।
व्याघ्री निम्बपटोल पुष्कर जटा रुग्दारुभिर्वाकृतः ॥ ७६ ॥

गिलोय, मोथा, कटेरी, निंब, परवल, पोहकरमूल, कुठ, देवदारु से किया हुआ कषाय जिह्वक को जीतता है ॥ ७३ ॥

अथाभिन्यासमाह—

यस्तुविस्फार कादीनां सर्वैर्लिङ्गैः समायुतः ।
विशेषाद्दाह मोहाढ्यःसोऽभिन्यासोऽतिदुःसहः ॥ ७६ ॥.
त्रयः प्रकुपितादोषा उरः स्रोतोऽनुगामिनः ।
आमाभिवृद्धया ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोगताः ॥ ७७ ॥
जनयन्तिमहाघोरं माभिन्यासज्वरं दृढम् ।
प्रस्तब्धगात्रः श्वासिति न चेष्टां काश्चिदीहते ॥ ७८ ॥

न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने ।
न च गन्धरसस्पर्शं शब्दादीन व बुध्यते ॥ ७६ ॥
शिरो लोठयतेऽभीक्ष्ण माहारं नाभिनन्दति ॥ ८० ॥
कूजति तुद्यते चैव प्रतिपत्तिश्च हीयते ।
अलं प्रभाषतेचापि किञ्चित्संदिग्धमाचिरात् ॥ ८१ ॥
नच प्रभाषते किञ्चिद् भिन्यासः स उच्यते ।
प्रत्याख्यातः सभूयिष्टः कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥ ८२ ॥
आयुः पक्षमितं चास्य केप्याहुः सप्तवासरान् ।
स्याच्चतुर्विंश त्यधिक मर्यादा च दिने नहि । ८ ॥

यास्त्विति—जो ज्वर विस्फारकादियों के सर्व लक्षणों से युक्त हो तथा विशेष कर के दाह और मोह से युक्त हो वह अभिन्यास दुःसह होता है

सम्प्राप्तिमाह--त्रयइति—तीनों कुपित हुए दोष छाती के स्रोतो को प्राप्त हो कर आम के बढ़ जाने से गठीले हो कर बुद्धि, इन्द्रिय अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कान, नाक, मुख, नेत्रादि में प्राप्त हो कर महा· घोर दृढ़ अभिन्यास ज्वर को उत्पन्न करते है ॥ प्रस्तब्धेति—गात्र जकड़ जायें, श्वास लेता है। किसी प्रकार की चेष्टा की इच्छा न करे ॥ नचेति—उसकी दृष्टि रूप दर्शन में समर्थ नहीं होती; तथा गन्ध रस तथा स्पर्श ज्ञान भी नहीं होता और शब्दादि विषयों को भी नहीं जानता ॥ शिर इति—बार २ शिर को चालन करता है आहार की इच्छा नहीं होती ॥ कपोत की भान्तिशब्द करता है ॥ सूची नोचने सरीखी अगों में पीड़ा होती है ज्ञान नष्ट हो जाता है अलमिति-थोडा बोलता है कुछ संदिग्ध देर से कभी कुछ भी नहीं बोलता वह अभिन्यास कहाता है ॥

वह अत्यन्त त्याज्य होता है किसी का ही सिद्ध होता है ॥ आयु पन्द्रह दिन की होती है कोई आचार्य एक सप्ताह की कहते हैं ॥ कोई आचार्य चौवीस दिन से अधिक मार्यादा नहीं मानते ॥ ७६—८३ ॥

सप्तम दशमद्वादश दिवसे प्राप्त स्त्रिदोषजस्तापः ।
पुनरपि घोर तरत्वं प्राप्य प्राप्तार्त्ति मभिहन्ति ॥ ८४ ॥

द्विगुणित सप्तम नवमैकादश दिवसा स्त्रिदोष मर्यादा।
एषा बधाय मुक्त्यै भवति नृणां सन्निपात मर्यादा ॥ ८५ ॥

सातवें दशवें बारहवें दिन में प्राप्त होकर सन्निपात ज्वर फिर भी घोर भाव को प्राप्त हो कर पीड़ा को प्राप्त कर मार देता है॥

सातदिन के चौदह नौदिन के अठारह तथा ग्यारह दिन के २२ दिन की मर्यादा सन्निपात की मानते हैं। यह मर्यादा सन्निपात की मनुष्यों को मार देने के लिये वा छोड़ देने के लिये मानी है ॥ ८४—८५ ॥

दुर्गेऽम्भसि यथामज्जं भाजनं त्वरयाबुधः।
गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथाऽभिन्यासपीडितम् ॥ ८६ ॥

गहरे जल में डूबते हुए बर्तन को जैसे बुद्धिमान व्यक्ति तल में पहुंचने से पहिले ही प्राप्त कर लेता है वैसे ही अभिन्यास से पीडित व्यक्ति को शीघ्र ही वैद्य चिकित्सा द्वारा बचाले ॥ ८६ ॥

निद्रोपेत मभिन्यासं क्षीण मेतद्धतौजसं।
सन्न्यस्तगात्रं सन्न्यासं विद्यात्सर्वात्मके ज्वरे ॥ ८७ ॥
अभिन्यासस्तु सप्ताहाद्दशाहेन हतौजसः।
सन्न्यासो द्वादशाहेन मलपाकश्चमुञ्चति ॥ ८८ ॥

निद्रा से युक्त अभिन्यास के क्षीण होने पर "हतौजस" कह देते हैं तथा जिस पुरुष के गात्र चेष्टा रहित हो जायें उसे सन्नि- पात ज्वर में "संन्यास" कहते हैं॥ सातदिन तक अभिन्यास संज्ञा होती है॥ और दश से हतौज तथा संन्यास बारह दिन में होता है यह मलपाकी होने से छोड़ जाता है और धातुपाकी होने से मार देता है यह "च" शब्द से प्रतीत होता है॥ ८७—८८ ॥

भेदास्तु सन्निपातानां सूक्ष्माश्चाल्पतरास्मृताः।
स्वल्प बुद्ध्या न लक्ष्यन्ते तेन किञ्चिचिकि त्स्यते ॥ ८९ ॥
अतएव विशेषज्ञै र्मुनिभिश्चरकादिभिः।
एक एवायमु द्दिष्टं सन्निपातात्मको ज्वरः ॥ ९० ॥

सन्निपातों के भेद सूक्ष्म तथा अल्पतर कहे हैं। थोड़ी बुद्धि वालों से यह नहीं जाने जाते और नाहीं वह चिकित्सा कर सकते

हैं । इस लिये चरकादिमुनियों ने जो महान् पुरुष हैं उन्होंने सन्निपात रूप एक ही ज्वर वर्णन किया है ॥ ८९-९० ॥

अथाचिकित्सामाह--

सिंही व्याघ्र्यमृता द्राक्षाऽजाजी च सकटु त्रिकम् ।
शृंगी विडंगं च समं पक्त्वा निष्क्वा[1]प्य साधयेत् ॥ ९१ ॥
घृताक्तै स्तण्डुलैर्भृष्टैः पेया मूष्णां ज्वरे पिबेत् ॥
हिक्का श्वासी च कासी च तथाऽभिन्यास पीडितः ॥ ९२ ॥

बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गिलोय, मुनक्का, जीरा, पिपली, मिरच सुण्ड, काकड़ासिंही, वायविडंग इनको बराबर भाग लेकर पका कर छान ले फिर इस में घी से चावलों को भून कर पेया सिद्ध कर गरम २ ज्वर में पीवे तो हिक्का, श्वास, और कास तथा अभिन्यास शान्त होता है ॥ ९१-९२ ॥

स्नेहोवलीढ़ः सितसर्षपाणां सहिंगुभृंगद्रव भृंगबेर ।
हन्यादभिन्यास मदोग्रशक्ति यथाविरक्तो विषयाभिलाषाम् ९३

गौरीसरसों, हींग, भंगरे का रस तथा अदरक घृत से मिला कर चाटने से उग्र अभिन्यास का एसे नाश करता है जैसे विरक्त पुरुष विषयों की इच्छा का नाश करता है ॥ ९३ ॥

अजञ्नमाह—

शरीष बीजं मरिचं वत्स मूत्रंचतत्[2]समम् ।
अञ्जनं तद भिन्यासे संज्ञा बोधनमिष्यते ॥ ९४ ॥

नस्यमाह—

मातुलुंगार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितं ।
सर्वंच सिद्धं निहतं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ९५ ॥

सरीह बीज, मरिच, बच्छड़े के मूत्र से बराबर पीस कर अभिन्यास ज्वर में संज्ञा बोधन के लिये कहा है ॥

बिजौरा तथा अदरक का रस, सैन्धालवण, सौंचललवण, विड़लवण इन तीनों लवणों से युक्त कर सब को भली प्रकार पीस नस्य प्रयोग करें ॥ ९४—९५ ॥

---

१ विस्राव्यमिति वा पाठः ।

२ 'मूत्रेणभावितं' इति वा ।

भार्गी पुष्कर मूलं च रास्नाविल्वं समुस्तकं ।
नागरं दशमूलंच पिप्पली तच्चसाधितम् ॥ ९६ ॥
हिंग्वार्द्रक रसोपेतः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
सन्निपातं महाघोरमभिन्यासं च दारुणम् ॥ ९७ ॥
हृत्पार्श्वशूलमानाहं सद्यःपीतो नियच्छति ।

भारंगी पुहकरमूल, रासना, विल्व, मोथा, सुएड, दशमूल पिपली इन से सिद्ध किया हुआ काथ तथा हींग अदरक रस मिला कर पिपली चूर्ण सहित पीया हुआ महाघोर सन्निपात, और दारुण अभिन्यास को और हृदय, पसवाड़े की शूल को अफारे को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ९६–९७ ॥

स दन्ती रुदन्ती वृहतीमैरण्डबीजपूरकं ।
श्यामा व्याघ्री च निष्काथ्याऽभिन्यासेवद्धवर्चसि ॥ ९८ ॥
कूटपाकलके सन्निपाते च प्रोक्तः कषायकाः ।
ते सर्वेऽत्र प्रदातव्याः सद्योऽभिन्यासकापहाः ॥ ९९ ॥
चिकित्सिते कृतेप्येवं यदि संज्ञान जायते ।
पादेतला[1]लिके मूर्ध्नि दहेल्लोहशलाकया ॥ १०० ॥

दन्तीमूल, रुद्रवन्ती, कटेरी, एरण्डमूल, बिजौरा, तिरवी छोटी कटेरी इनका काथ मल के रुकने पर अभिन्यास ज्वर में दे। कूट पाकल आदि सन्निपातों में जो कषाय वर्णन किये हैं वह सभी इस अभिन्यास में देने से शीघ्र इसका नाश करते है ॥ कोई आचार्य इन उपायों से यदि संज्ञा न हो तो, पैर, मस्तक, तथा सिर में लोहे की सलाई से दाह करे। ऐसा वर्णन करते हैं ॥ ९८—१००

भ्रमर्याजलसर्पैर्वा वृश्चिकैर्वापि दंशनं ।
औषधैर्येनशाम्यन्ति रसैर्नानाविधैश्चये ॥ १ ॥
विषयोगात्प्रणश्यन्ति सन्निपाताः सुदारुणाः ।

भ्रमरी से, जलसर्प से अथवा वृश्चिक आदि से दंशन करे, जो सन्निपात औषधों अर्थात् काथादि से तथा नाना प्रकार के रसों

---

१ पादयोस्तं ललाटे वा इति वा पाठः ।

से नहीं शान्त होते वे विष के प्रयोग से दारुण सन्निपात नष्ट हो जाते है ॥ १ ॥

अथ हतौजसमाह चिकित्सा—

विश्वशठी दशमूली छिन्ना पाठेभपिप्पलीन्द्रयवैः ।
सकिराતविल्ववासा शमयति हतौजसंसद्यः ॥ २ ॥

सुएठी, कचूर, दशमूल, गिलोय, पाठा, गजपिप्पली, इन्द्रजौ, चिरायता, विल्वमूल, वांसा, इन का क्वाथ किया हुआ शीघ्र हतौजस को हरे ।

अथ सन्न्यासमाह—

शृंगी भार्गी शठी द्राक्षा रास्ना दुस्पर्श पौष्करैः ।
संज्ञाच्युतिहरः क्काथस्तीक्ष्णनस्याञ्जनेन वा ॥ ३ ॥
आकल्लकौषधं कृष्णातिक्तकच्छुरकट्फलम् ।
चैतन्यन्तरः क्वाथः सन्न्यासे सन्निपातहा ॥ ४ ॥
धूमः प्रखरतरोदेयः सूचीभिर्नखान्तकैः ।
केशानां लुञ्चनं दाहो दंशोदशनवृश्चिकै ॥ ५ ॥

काकड़ासिंही, भारंगी, कचूर, मुनक्का, रासना, धमासा, पोहकरमूल इन से बनाया हुआ क्काथ संज्ञा की च्युति के (अर्थात् संज्ञा नाश) हरने वाला होता है और तीक्ष्ण नस्य तथा अञ्जन के प्रयोग से संज्ञा लाभ कराये ।

अकरकरा, शुएठी, पिपली, परवलपत्र, कौंचबीज, कायफल, इनका क्काथ चैतन्य करने वाला संन्यास सन्निपात को हरता है ॥

तेज़ धूम देना चाहिये तथा सूई चुभोना, नखों से काटना केशों का खेचना दाह करना, अथवा वृश्चिकादियों का दंश करना भी हित होता है ॥ ३—५ ॥

अथान्तर्दाहादि त्रयोदशसन्निपातानाह—

अन्तर्दाहादिकायेतु सन्निपातास्त्रयोदश ।
भवन्ति भाग्यहीनस्य मितजीवनरस्य च ॥ ६ ॥
विष्णुर्नारायणस्तस्य भेषजं जाह्नवीजलम् ।

---

१ प्रधमनमिति वा पाठः ।

२ "वैद्यो" इति वा पाठः ।

तथापि तेषां ज्ञानार्थं क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥ ७ ॥

अन्तर्दाहादिकामिति—अन्तर्दाहादि सन्निपात जो तेरह प्रकार के हैं वह भाग्यहीन पुरुषों को तथा थोड़ी आयु वालों को होते हैं। उनके लिये विष्णु भगवान् ही रक्षक है और औषध गंगाजल कहा है क्योंकि वह असाध्य ही होते हैं॥ तब भी उनके ज्ञान के लिये क्रम से यहां लक्षण कहते है॥ ६—७॥

अन्तर्दाहमाह—

अन्तर्दाहो वहिः शैत्यं यस्याति संततः श्वासः।
अंगमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहार्दितः कथितः ॥ ८ ॥

अन्दर जिस के दाह हो वाहिर त्वचा जिस की ठण्डी हो जिस का निरन्तर अधिक श्वास हो, अंगभी जलें, वह अन्तर्दाह से पीडित कहा है॥

अन्तकमाह--

सम्पूर्यते शरीरं ग्रंथिभिरभितस्तथोदरं मरुता।
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यांतकार्त्तस्य ॥ १० ॥

सारा शरीर जिसका गांठों से भर जाये तथा उदर में वायु रहे श्वास रोग से व्याकुल हो कर निरन्तर जो चेतना रहित हो जाये उसे अन्तक सान्निपात से पीडित जानना॥ १०॥

कुंभीपाकमाह—

यो घ्राणविवराद्बहु शोणितमतिलोहितं स्रवति।[1]
विलुठन्मस्तकमभितः कुम्भीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥१०॥

जो नासा छिद्र से बहुत रक्त अत्यन्त लाल वर्णका स्राव करता है तथा मस्तक को चारों तरफ हिलाता है उसे कुम्भी पाक से पीडित जानना॥ १०॥

पौर्णनावमाह—

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितान्तमुच्छ्वसति।
तं पौर्णनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ ११ ॥

---

१ 'घ्राणविवरवहद्बहुशोणासितनीललोहितस्रात्तिं' इति वा पाठः।

जो अपने अंगों को ऊपर उठा कर नीचे फेंकता है तथा निरन्तर श्वास लेता है उसको विचित्र कष्ट देने वाले पौर्णनाव से ग्रसित जानना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ प्रलापिनमाह—

स्वेदभ्रमांगभेदाः कम्पोद्वथुर्वमिर्व्यथाकण्ठे ।
गात्रश्च गुर्वतीव प्रलापजुष्टस्यजायते लिंगम् ॥ १२ ॥

स्वेद हो, भ्रम, अंग टूटें, कम्प हो, उपताप हो, वमन और कण्ठ में पीड़ा हो गात्र अत्यन्त भारी हो जायें यह लक्षण प्रलापयुक्त के होते हैं ॥ १२ ॥

अथैणीदाहमाह—

परिधावतीव गात्रे भुजङ्ग पतंग हरिणगणाः ।
वेपथुमत्तः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्तस्य ॥ १३ ॥

गात्रों में मानों सर्प, पतंग, हरिण आदियों के समूह दौड़ें, कम्प हो, दाहयुक्त होने से उसे एणी दाहज्वर पीड़ित जानना ॥१३॥

अथभूतह्रमाह—

शब्दादीनाधिगच्छति सस्वान्विषयादिन्द्रियग्रामैः ।
हसति प्रलपति परुषं सज्ञेयोभूतहासार्तः॥ १४ ॥

जो शब्द, स्पर्श, रूप, गन्धादि विषयों को अपने इन्द्रिय समूह से प्राप्त होता है, हंसता है, कठिन प्रलाप करता है उसे भूतह्रास ज्वर से पीड़ित जानें ॥ १४ ॥

अथाजघोषमाह—

अक्षिगलशिरोगन्धश्च स्कन्धरुजावान्निरुद्ध गलरन्ध्रः ।
अजघोष सन्निपातादाताम्राक्षो वैभवति पुमान् ॥ १५ ॥

नेत्र, गल, शिर में गन्ध तथा स्कन्ध (मोढे) में पीड़ा हो तथा गल का छिद्र रुक जाये, अजघोष सन्निपात से पुरुष लालवर्ण नेत्र हो जाता है ॥ १५ ॥

अथ हारिद्रकमाह—

यस्यातिपीतमङ्गं नयने सुतरां मलस्ततोऽप्यधिकम् ।

---

१ मर्दः इति वा पाठः ।

२ छगलकसमानगन्धः इति वा पाठः । 'छगलक शरीरगन्धः' इति ग. पुस्तके ।

दाहोऽतिशीतता वा वहिरस्य हारिद्रको ज्ञेयः ॥ १६ ॥

जिस पुरुष के अंग अत्यन्त पीत हो जायं नेत्र तथा मल भी अत्यन्त पीत हो, दाह हो, तथा बाहिर अत्यन्त शीतता हो वह हारिद्रक जानना ॥ १६ ॥

ग्रन्थान्तरात्—

रूक्षशीत दिवास्वप्नव्यायाम मलनिग्रहात् ।

हारिद्रकसम्प्राप्तिमाह—

कफात्सम्मूर्च्छितो वायुस्तीक्ष्णं पित्तं वहिः क्षिपेत् ॥ १७ ॥
तत्पश्चाद्दूषयेद् रक्तं ततो हारिद्रको भवेत् ।

रूक्ष, शीत, अन्न सेवन से, दिन के सोने से, अति व्यायाम करने से, मल के रोकने से, कफ से मूर्च्छित हुआ वायु तीक्ष्ण पित्त को बाहर फेंकता है उसके पीछे रक्त को दूषित करता है तब हारिद्रक होता है ॥ १७ ॥

लक्षणमाह—

भवेत्साटोप विष्टम्भो बध्नात्यामाशयं हृदि ॥ १८ ॥
वेपथुः श्वसनं हिक्का तथा तन्द्रारुचिर्ज्वरः ।
गुरुत्वं सर्वगात्राणां शीतत्वं सर्वसन्धिषु ॥ १९ ॥
हारिद्रकेङ्गितैरेतैः सन्निपातज्वरोमतः ।

उदर में गुड़गुड़ शब्द हो, विष्टम्भ हो तथा आमाशय और हृदय को बांध देता है, कम्पन हो, श्वास, हिक्का, तन्द्रा, कास, अरुचि, ज्वर, सब गात्रों में भारीपन हो जाय सब संधियों में शीत हो। इन लक्षणों से हारिद्रक सन्निपात कहा है ॥ १८—१९ ॥

असाध्यत्वमाह—

दोषे विवृद्धे[1] नष्टेऽग्नौ सर्व सम्पूर्ण लक्षणः ॥ २० ॥
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ।

अर्थात् दोष के बढ़ जाने पर, अग्नि के नाश हो जाने पर सब लक्षण जो सन्निपात ज्वरों में कहे हैं उनके सम्पूर्ण हो जाने पर सन्निपात असाध्य होता है इससे विपरीत थोड़े लक्षण हों तो कष्टसाध्य होता है ॥ २० ॥

---

१ 'विबद्धे' इति वा पाठः ।

ज्वराणां संक्रामकत्वमाह—

प्रसङ्गाद्गात्र संश्लेषान्निश्वासात्सहभोजनात् ॥ २१ ॥
ज्वरा हारिद्रकाद्याश्च संक्रामन्तिनरान्नरम् ।
अष्टाहान्मनुजं हन्ति यदि सम्पूर्ण लक्षणः ॥ २२ ॥

ज्वर वाले के साथ प्रसङ्ग करने से, आपस में मिलने से श्वास के संयोग से, एक साथ भोजन करने से हारिद्रकादि ज्वर एक पुरुष से दूसरे पुरुष में चले जाते हैं।

हारिद्रक सन्निपात यदि सम्पूर्ण लक्षणों युक्त हो तो आठ दिन में मार देता है ॥ २१—२२ ॥

चिकित्सामाह—

आदौ विरेचनं कुर्याद्वेधयेच्च तदुत्तरं ।
जलौकाभिर्विषाणैर्वा मोक्षयेद्दुष्टशोणितम् ॥ २३ ॥
तथा लौहेन संदह्याद्हृदये दृष्टिकर्मवित् ।
मध्यदाहाद्यकृन्मूर्ध्नित्रींन्वारान् द्व्यंगुले दहेत् ॥ २४ ॥

ऐसे ज्वर में प्रथम विरेचन दे इसके अनन्तर वेधन करे अर्थात् शिरावेध करे, अथवा जौकों से वा सींग से दुष्ट रक्त का स्राव करे। तथा लौह फलक से दाह करे हृदय में, दृष्टिकर्म के जानने वाला मस्तक के मध्यभाग में तीन बार दो अंगुल दाहादि करे ॥

मध्याधोदाहमेकन्तु मध्यादौ प्लीह्नि योजयेत् ।
श्यामाभयाकणाशुण्ठी कंपिल्लगुड़युग्गुटी ॥ २५ ॥
पीता शीतजलेनाशु हारिद्रकविरेचने ।
गुडूची कटुका रक्तोशीर बालक संयुतैः ॥ २६ ॥
भूनिंबाब्दामृतानिंब द्राक्षा त्रायन्तिका वृषा ।
मधुक ग्रन्थिका क्वाथः क्षौद्राद्धारिद्रकं जयेत् ॥ २७ ॥

प्लीहा के मध्य तथा नीचे एक बार दाह देना और मध्य में पहिले ही देना। तिरवी, हरड़, पिपली, सुण्ड, कंबीला इनके साथ गुड़ मिला कर गोली बनाय ठण्डे जल के साथ पीने से हारिद्रक में विरेचन के लिये हित है ॥

गुडूची इति—गिलोय, कुटकी, लाल चन्दन, खस, नेत्रवाला,

इनसे चिरायता, मोथा, हरीतकी, निम्बपत्र, मुनक्का, त्रायमाणा, वांसा, मुलठी, पिपलामूल, इनका क्वाथ मधु मिला कर पीने से हारिद्रक को जीतता है ॥ २५—२७ ॥

वर्षाभूपाटलोशीर दार्वी निंबाभयाऽमृता ।
कटुका पर्पटैश्चैव क्वाथोहारिद्रकापहः ॥ २८ ॥
श्वेतमूलशतावर्या वासा च कटुरोहिणी ।
क्वाथो गुड़समायुक्तो हन्ति हारिद्रकं ज्वरम् ॥ २९ ॥
लोहचूर्ण सितापथ्या श्रृंगवोदारसंयुतं ।
लेहमधुसमायुक्तं हरेद्धारिद्रकं ज्वरम् ॥ ३० ॥
रसैस्तु रूक्षकट्वम्लैः शिखितित्तिरदक्षजैः ।
शुष्कमूलकजैर्यूषैः कुलुत्थैः सहभोजयेत् ॥ ३१ ॥

वर्षाभूरिति—इटसिट, पाटला, खस, दारुहारिद्रा, निंब, हरड़, गिलोय, कुटकी, पित्तपापड़ा इनका क्वाथ हारिद्रक का नाश करता है सफेद जड़ वाली शतावरी, वांसा, कुटकी इनका क्वाथ गुड मिला कर पीने से हारिद्रक को नाश करता है ॥

लौह की भस्म, मिश्री, हरड़, मुर्दासंग इनको पीस कर मधु में मिला कर चाटने से हारिद्रक ज्वर हटता है ॥

रूक्ष कटु तथा अम्ल (खट्टे) द्रव्यों का तथा मोर, तित्तिर, मुर्गा इनके रसों का यूष कुलथी के साथ भोजन के लिये देना ॥ २८-३१ ॥ इति हारिद्रकः ॥

अथ संशोषिणमाह—

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोमलोत्सर्गात् ।
संशोषिणिसितपिड़िकामण्डलयुक्तोज्वरेनरोभवति ॥३२॥

सुघोरकलक्षणमाह—

ज्वरो दाहो भ्रमो मूर्च्छा चातिसारोवमिस्तृषा ।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालुजिह्वे च शुष्यतः ॥ ३३ ॥
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ।
ग्रीवामध्ये च दृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः ॥ ३४ ॥

एतच्चिह्नं भवेद्यस्य स संशोषण उच्यते ।

जिसकी देह का वर्ण कृष्ण रक्त तथा पीतादि हो और दोनों नेत्र भी ऐसे ही हो जायें मल के त्यागने से और देह को सुखाने वाली सफेद पिडिका (फुन्सीयें) हो जायें तथा चकते भी पड़ जायें उसे संशोषण ज्वर कहते हैं ॥—

अन्थान्तरादयं विशेषः—

विशेषरक्ते कुप्यन्ति व्रणा लोके सुघोरकः[1] ।
अश्विन्यावूचतुः पूर्वं सर्वदेहे[2] विनाशनम् ॥ ३३ ॥
निदानं ब्रूहि देवेश ! सुघोरक गदस्य च ॥
प्रत्यश्विनौ रविःप्राह शृणुतं गदकारणं ॥ ३४ ॥
दक्षप्रजापतिर्यज्ञो ध्वंसितः शम्भुना पुरा ।
रुद्रकोपात्समुत्पन्नो गदःसुघोरकस्तदा ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चाण्डाल एव च ।
प्रथितः पञ्चधा वर्णैरयं रोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ३६ ॥
ब्राह्मणः श्वेतवर्णश्च क्षत्रियो रक्तवर्णधृक् ।
वैश्यः पीतश्च विज्ञेयः कपिलः शूद्र एव च ॥ ३७ ॥
कृष्णवर्णश्च चाण्डालो रोगिप्राणान्तकृद्बहुः ।
सर्वकासो रुचिस्तृष्णा प्रलापो दाहवान् ज्वरः ॥ ३८ ॥
अंगानां गौरवं ग्लानिरस्थिभेदोऽतिनिद्रता
पूर्वलिंगं तु सर्वेषामेषामिदमुदीरितम् ॥ ३९ ॥

अधिकतर रक्त के कुपित हो जाने से व्रण हो जाते हैं लोक में उसे "सुघोरक" कहते हैं। पूर्वकाल में सर्व रोगों के नाशक सूर्य के प्रति अश्विनीकुमार कहने लगे कि हे देवेश ! सुघोरक रोग के निदान को कहो । ऐसा सुनकर सूर्य ने अश्विनीकुमारों के प्रति कहा कि इस रोग का कारण सुनो। शंकर ने पहिले समय में दक्ष प्रजापति के यज्ञ का नाश किया । उस समय रुद्र के कोप से यह सुघोरक रोग उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा

१ सुघोरक इति वा पाठः ।
२ 'व्याधी" इति वा पाठः ।

चाण्डाल आदि वर्णों से पांच प्रकार से लोक में यह रोग प्रसिद्ध हुआ। ब्राह्मण श्वेत वर्ण का और क्षत्रिय रक्त वर्ण धारण करने वाला। वैश्य पीले वर्ण का जानना तथा शूद्र कपिल वर्ण वाला और चाण्डाल काले रंग का होता है और रोगियों के प्राणों का नाश कर देता है ॥

सब में कास, अरुचि, तृष्णा, प्रलाप, दाहयुक्त ज्वर, अंग भारी, ग्लानि, हड्डियों का टूटना और निद्रा का अधिक होना होता है। यह सब पांच प्रकार के उक्त ज्वरों के पहिले लक्षण (पूर्वरूप) कहे हैं ॥ ३३—३९ ॥

शेष लक्षण १४१ पृष्ठ पर देखें ॥

तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—

ब्राह्मणः सुखसाध्यः स्यात्कष्टसाध्यो हि क्षत्रियः।
वैश्यः कृच्छ्रतरः साध्यो द्वावसाध्यपरौ नृणाम् ॥ ४० ॥

एतेषामुपद्रवाः—

श्लेष्मा श्वासो ज्वरः कासश्छर्द्यतीसारहृद्ग्रहः।
सघोरकभवा ह्येते निघ्नन्ति सहसा नरम् ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण ज्वर सुखसाध्य होता है क्षत्रिय ज्वर कष्टसाध्य होता है। वैश्य कष्टतर और अन्त के दोनों शूद्र और चाण्डाल असाध्य होते हैं। अब इनके अरिष्ट लक्षण ये हैं—

श्लेष्मा का अधिक होना, श्वास, ज्वर, कास, छर्दि, अतिसार और हृदय में पीड़ा का होना इन उपद्रवों से युक्त सुघोरक सहसा मनुष्य को मार देता है ॥ ४०—४१ ॥

चिकित्सामाह—

तदाश्विनौ तं भगवंस्तमाहतुः श्रुतं निदानं भवतो दिवाकरात्।
अस्योपतापस्य चिकित्सितं च पुनर्वभाषे स च हृष्टचेताः ॥४१॥
एभिः प्रकारैर्बहुदानपुण्यैः सुघोरको वैशमतामुपैति।
सरुद्रजाप्यैः स्तुतिभिर्भवान्या मिष्टान्नभोज्यैर्द्विजपुंगवानाम् ॥४२॥

फिर उस सूर्य भगवान् को अश्विनीकुमार कहने लगे कि हे भगवन्! आप से निदान तो सुना है अब इस रोग की चिकित्सा जो आपने अनुभव की हो वह वर्णन कर कहें ॥

अनेक प्रकार के दान तथा पुण्य कर्म करने से तथा रुद्र के जाप और भवानी दुर्गा की स्तुति करने से सुघोरक शान्त हो जाता है तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन कराने से भी शान्त हो जाता है ॥ ४२—४३ ॥

किरातेन्द्रयवारिष्ट त्वक्तोयैर्घनपर्पटैः ।
सविश्वचन्दनैः क्वाथः कृतः सुघोरकं जयेत् ॥ ४४ ॥
रात्रिवृकी चातिविषा मुस्ताशुण्ठी च धान्यकं ।
पद्मारजश्च सोदीच्य शतपत्री प्रसूनकं ॥ ४५ ॥
औषधानि प्रयोज्यानि श्लेष्मघ्नानि च यानि च ।
यक्ष्मणश्चमसूर्यादि ज्वरे प्रोक्ताः कषायकाः ॥ ४६ ॥
ते सर्वेऽत्र प्रदातव्याः सद्यः सुघोरकापहाः । इति

चिरायता, इन्द्रजौ, निंब छाल, नेत्रवाला, मोथा, पित्तपापड़ा, सुण्ड, लालचन्दन इनका क्वाथ सुघोरक को जीतता है। हलदी, पाठा, अतीस, मोथा, सुण्ड, धनियां, पद्माख, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, गुलाब के फूल और भी जो कफनाशक औषधियें हों उन्हें प्रयोग करें। यक्ष्मा और जो मसूरिका ज्वर में कही हैं उनके प्रयोग से भी सुघोरक ज्वर का नाश होता है ॥ ४४—४६ ॥ इति क्षेपकः ।

और भी—ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, निद्रानाश मुख लाल हो, तालु और जिह्वा सूखे, कण्ठ, ओष्ठ, मुख, नासा पक जाये, पसीना आये, ग्रीव के बीच पिडका सरसों बराबर दिखाई दें यह लक्षण जिसको हों वह संशोषण ज्वर कहा जाता है।

संन्यासमाह—

अतिसरति वमति कूजति गात्रान्यभितश्चिरं नरः क्षिपति ।
सन्न्यास सन्निपाते प्रलपति भग्नाक्षिमण्डलो भवति ॥ ३५ ॥

अतिसार होता है, वमन करता है, कपोत की तरह कण्ठ से आवाज करता है मनुष्य गात्रों को चिरकाल तक इधर उधर फेंकता है सन्न्यास सन्निपात में प्रलाप करता है तथा नेत्रमण्डल टेढ़ा या अन्दर घुस जाता है ॥ ३५ ॥

यन्त्रापीडमाह—

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यन्त्रेणेवावपीड्यते गात्रं ।

रक्तं पीतश्च वमेद् यन्त्रापीड़ः स विज्ञेयः ॥ ३६ ॥

जिस ज्वर के वेग से रोगी के यन्त्र में पीड़न करने सरीखी गात्रों में पीड़ा हो तथा लाल और पीला वमन करे वह यन्त्रापीड़ जानना ॥ ३६ ॥

अथ दण्डपातमाह—

नक्तं दिवाननिद्रामुपैतिगृह्णातिमूढधीनभसः ।
उत्थाय दण्डपातो भ्रमातुरः सर्वतोभ्रमति ॥ ३७ ॥

दिन रात जो निद्रा को प्राप्त नहीं होता, मूर्ख बुद्धि वाला आकाश से हाथ फैलाकर कुछ ग्रहण करता है । दण्डपात ज्वर में भ्रम से व्याकुल हुआ उठकर चारों तरफ घूमता है ॥ ३७ ॥

महाभैरवरसमाह—

रसेभ[1] विषशुल्वाभ्रलौहैर्वासा रसलुप्तैः ।
सप्तकृत्व स्त्रिदोषांतकृत् रसोभैरवोमहान् ॥
वल्लैकं वा सदादद्याज्जाति फलानुपानतः ।
रोगी वैद्योत्तमैस्त्यक्तः सोऽपि जागर्तितत्क्षणात् ॥

रससिन्दूर, नागकेशर, ताम्रभस्म, लोहभस्म इनको सात बार वासारस की भावना देना यह रस १ रति वा दो रति मात्रा में जायफल के अनुपान के साथ दिया हुआ उत्तम वैद्यों से त्याग किया हुआ रोगी भी उसी क्षण जाग उठता है ॥

लघुभैरवोरसः—

सूतंगन्धं शिला तालं मर्द्यनिम्बुकजैर्द्रवैः ।
लिप्त्वातेनार्क पत्राणि यन्त्रेभस्माभिधेक्षिपेत् ॥ ३९ ॥
यामाष्टौ ज्वालयेदग्निं स्वांगशीतं समुद्धरेत् ।
विषोषणं तुतुर्यांशं कृत्वा वल्लमितागुटीः ॥ ४० ॥
देवदाली रसैर्बद्धो रसोऽयं भैरवाभिधः ।
दत्वार्द्रकरसैः सर्वान् सन्निपातान् विनाशयेत् ॥ ४१ ॥
भूमौगतं विसंज्ञं च शीतार्तं तन्द्रितं नरं ।
तत्क्षणात् बोधयेद् व्याधेः कुर्याच्छीतोपचारकान् ॥ ४२ ॥

---

१ "इभ"—इत्यत्र नागस्य ग्रहणमपियुक्तम् ॥

पारदशुद्ध, गन्धकशुद्ध, मनसिलशुद्ध तथा हरितालशुद्ध इन चारों को निम्बु के रस से मर्दन करना, फिर उस कल्क से ताम्बे के पत्तों पर लेप कर देना; पीछे उसे वालुकायन्त्र में रख कर आठपहर की अग्नि देना, ठण्डा हो जाने पर निकाल ले उन सब औषधियों को पीसे उनसे चौथा भाग मीठा तेलिया और मरिच मिला कर घघरवेल के रस से १ रत्ति भर की गोली बनाना तो इस रस का नाम भैरव रस है। इसकी एक रत्ति की मात्रा अदरक के रस के साथ दी हुई सब प्रकार के सन्निपातों का नाश करती है। और पृथ्वी पर मृत के समान पड़े हुए रोगी को तथा ज्ञानशून्य व्यक्ति को और शीत तथा तन्द्रा से पीड़ित रोगी को शीघ्र ही जगा देता है इसके देने के बाद शीतोपचार ही करना चाहिये अर्थात् अन्य कोई गरम औषधियां पथ्यादि नहीं देना चाहिये। इति लघु भैरवो रसः ॥ ३९—४२ ॥

ताम्रभैरवो रसः

काकमाच्यारसैः शुद्धान् कृत्वा तन्वर्क पत्रकान् ।
गन्धकाल शिलासूत क्रमेणैकं द्वि चन्द्र भू ॥ ४३ ॥
एकी कृत्यांधमूषायां पचेद्याम चतुष्टयम् ।
एकांशेन विष व्योषं स्नुक् पयो भाविता गुटी ॥ ४४ ॥
गुटी मध्य सिता देया रसोऽयं ताम्रभैरवः ।
सन्निपातज्वरान्हन्ति पथ्ये शीतोपचारकान् ॥ ४५ ॥

ताम्र के पतले पत्र कर के मकोय के रस से दोलायन्त्र में स्वेदन द्वारा शुद्ध करना फिर गन्धक एक भाग, हरिताल दो भाग मनसिल एकभाग शुद्ध पारद एक भाग लेकर सब इकट्ठा कर मकोय के रस में पीस ताम्र पत्रों पर लेप कर, सुखाय, अन्धमूषा में रख, चारपहर की आग से पकाये। फिर निकाल कर उसमें एकभाग विष तथा त्रिकटु देकर थोहर के दूध से पीस कर गोली बना लें इस गोली को मिश्री के बीच रख कर दें तो यह ताम्रभैरव रस सन्निपात ज्वरों का नाश करता है इसमें पथ्य के लिये शीत प्रयोग करना चाहिये ॥ ४३—४४ ॥

चैतन्यभैरवो रसः—

विषार्कं दरदं फेनं कृष्णां पञ्चक पित्तयुक्।
राजिकामात्रतोदद्याद्रसश्चैतन्यभैरवः ॥ ४६ ॥
सन्निपातान्नि हन्त्याशु घोररूपाननेकशः।
रसतापे समुत्पन्ने कुर्य्याच्छीतोपचारकम् ॥ ४७ ॥
रसाञ्जनौषधैर्दाहैः कृतैः संज्ञा न जायते।
शीतार्ते चान्तके कण्ठकुब्जे हारिद्रजिह्वके ॥ ४८ ॥
अभिन्यासेषु सर्वेषु तदाऽयं युज्यते रसः।

शुद्ध वत्सनाभ विष, ताम्रभस्म, हिंगुलशुद्ध, अफीम, पीपल इन सब को समान भाग लेकर पञ्चपित्तों की भावना देना, इस चैतन्य भैरव की राई बराबर गोलीयें बनाकर यथोपयुक्त अनुपान से दी हुई भयंकर अनेक रूपों वाले सन्निपातों को नष्ट करता है। रस देने से ताप उत्पन्न होने पर शीत पदार्थों से उपचार करना। यदि रस, अञ्जन, औषधी तथा दाहादि क्रिया करने पर संज्ञा न हो तो, शीतांग से पीड़ित और अन्तक में, कण्ठकुब्ज में, हारिद्रक में, जिह्वक में सर्व प्रकार के अभिन्यास सन्निपातों में यह रस प्रयुक्त करना ॥ ४६—४८ ॥

सूचिकाभरणो रसः—

तदर्कमनलैर्भाव्याच्छाया शुष्का तु सप्तधा ॥ ४९ ॥
सूचिकाभरणं ह्येवं प्रच्छन्नमूर्ध्निदापयेत्।
सन्निपाते महाघोरे घटैः सिञ्चेच्छतं मितैः ॥ ५० ॥
दक्षिणे लोचने रक्ते साध्यः वामेत्वसाध्यकः।
पश्चात्सचेतनं तं तु योगैः विषहरैश्चरेत् ॥ ५१ ॥

वही ताम्रभस्म चित्रकमूल के रस में सात बार भावना देकर छाया में सुखा ले ऐसा करने से वह सूचिकाभरण रस होता है उसको सिरपर उस्तरे से पच्छ लगाकर मल दे तो सन्निपात जो अत्यन्त भयंकर हो उसमें सौ पानी के घटों से उसके सिर को तर करे ऐसा होने पर दहिना नेत्र लाल होने पर साध्य तथा बांया नेत्र लाल हो जाय तो

१ पञ्चकपित्तमिति—यथा—"वाराहच्छागमाहिष मत्स्यमायूर पित्तकं। पञ्चपित्तमिति ख्यातं सर्वेष्वेव हि कर्मसु;" इति।

असाध्य जानना। रोगी को पीछे से चैतन्य हो जाने पर विषहर योगों से उपचार करे ॥ ४६—५१ ॥

ज्वालानलो रसः—

विषोषणैः पञ्चपित्तैः कृतामुद्गमिता गुटी ।
जैपालेन युता वापि रसोज्वालानलो महान् ॥ ५२ ॥
शीतार्दिते सन्निपाते तन्द्रिते मूर्छिते नरे ।
कफेकण्ठगते देयः क्षणा जागर्तिमानवः ॥ ५३ ॥
दाम्भिकैः भिक्षुकैः सेव्योदिग्जलाकाशवासिभिः ।
भवेदत्युष्णदेहोऽसौ शीतं तस्य न बाधते ॥ ५४ ॥

मीठा तेलिया, मिरच इन दोनों को पञ्चपित्तों से भावना देकर मूंगी के दाने के समान गोली बना अथवा जैपाल के शुद्ध बीज मिलाने से यह ज्वालानल नामक रस तैयार होता है। इसे शीत से पीड़ित सन्निपात में, तन्द्रिक में, मनुष्य के मूर्च्छित होने पर तथा कण्ठ में कफ के प्राप्त हो जाने पर देने से क्षण में रोगी जाग उठता है इस रस के सेवन से जो दिशाओं में जल में आकाश में रहने वाले हटी संन्यासी हैं—उनके भी गात्र गरम हो जाते हैं और उनको शीत बाधा नहीं देता ॥ ५२—५४ ॥

भूतभैरवो रसः—

रसोविषोषणार्कश्च पञ्चपित्तयुता गुटी ।
सन्निपातान्निहन्त्याशु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ ५५ ॥

रससिन्दूर, विष वत्सनाभ, मरिच, ताम्रभस्म इनको पञ्चपित्त से भावना देकर गोली बना ले तो यह भूत भैरव रस शीघ्र ही सन्निपातों का नाश करता है ॥ ५५ ॥

उपसंहारः—

सन्निपातं समुत्तीर्य यदि जीवतिमानवः ।
क्षीणायुर बलाग्निश्चशीर्ण गात्र शिरोरुहः ॥ ५६ ॥
स्वरवर्ण स्मृतिभ्रष्टः क्षीणशुक्रोनिरिन्द्रियः ।
अव्यक्त वाग् विवर्णश्च मन्दाग्निर्भवत्यसौ ॥ ५७ ॥
सन्निपातेन दग्धश्च चिरादाप्यायते नरः ।

दृष्ट्वा सम्भोजनीयश्च पुनर्जन्महि तस्य तत् ॥ ५८ ॥

इति श्री ज्वरतिमिरभास्करे सन्निपातज्वरप्रभेदोनाम
सप्तमोऽध्यायः ।

अर्थात् सन्निपात को तैर कर यदि मनुष्य जीता है तो वह क्षीण आयु, अल्प बल तथा अल्पाग्नि और उसके गात्र तथा केश गिर जाते हैं। स्वर, वर्ण तथा स्मृति नष्ट होती है, क्षीणवीर्य तथा कोई एक इन्द्रिय नष्ट हो जाती है अस्पष्ट बोलता है वर्णहीन, मन्दाग्नि होती है सान्निपात से जला हुआ होने से चिरसे वृद्धि को प्राप्त होता है ऐसा देखकर भली प्रकार पथ्यादि प्रयोग कराना चाहिये क्योंकि उसका पुनर्जन्म ही होता है ॥ ५६—५८ ॥

इतिश्री ज्वरतिमिरभास्करे सन्निपातज्वरप्रभेदोनाम
सप्तमोऽध्यायः ।

अथाष्टमोऽध्यायः ।

आगन्तुज्वरमाह—

ये भूतविषवाय्वाऽग्निक्षतभंगादिसम्भवाः ।
रागद्वेषभयाद्याश्च ते स्युरागन्तवो गदाः ॥ १ ॥
आगन्तुरष्टमो यो हि स ज्वरस्तु चतुर्विधः ।
अभिघाताऽभिषंगाभ्यामभिचाराभिशापतः ॥ २ ॥

जो भूत, प्रेत आदि के आवेश से, तथा विष, वायु और अग्नि से, चोट लगने से अंग के टूटने आदि से होते हैं। और राग (अर्थात् किसी के प्रेमासक्त होने से) द्वेष से, भय से होता है वह ज्वर आगन्तुक कहा है (अर्थात् वह आगन्तुक रोग होते हैं) आगन्तुज जो आठवां ज्वर कहा है वह चार प्रकार का होता है अभिघात से (अर्थात् चोट आदि लगने से) अभिषंग (अर्थात् भूतादियों के आवेश से) अभिचार अर्थात् विरुद्ध अनुष्ठान करने से) अभिशाप (अर्थात् देवता गुरु आदि के शाप) से होते हैं ॥ ॥ १—२ ॥

अथाभिघातजमाह—

शस्त्रलोष्टकशाकाष्ठमुष्ट्य रत्नि तल द्विजैः ।

तद्विधैश्च हतं गात्रमग्निदग्धं च खिद्यति ॥ ३ ॥
जायते हि ज्वरो यस्य ज्ञेयो साव भिघातजः ।
तत्राभिघातजो वायुः प्रायोरक्तं विदूषयेत्[1] ॥ ४ ॥
सव्यथाशोफ वैवर्ण्यं सरुजं कुरुते ज्वरम् ।

शस्त्रादि के लग जाने से, लोष्ट (पत्थर का ढेला), कशा (चाबुक) लकड़ी मुष्टी अरत्नि (अर्थात् छोटी अंगुलि रहित मुठ को कहते हैं) तल (अर्थात् हथेली) द्विज (अर्थात् दांतों से काटने से) इसी प्रकार की चोट से गात्र के चोट लगने पर और अग्नि से दग्ध होने से खेद होता है। ऐसे जो ज्वर उत्पन्न हो उसे अभिघात जनित जानना। वहां चोट लगने से बढ़ा हुआ वायु प्रायः रक्त को दूषित कर देता है, फिर पीड़ा, शोथ, विवर्ण, पीड़ा सहित ज्वर को करता है ॥ ३—४ ॥

प्रक्रियामाह—

अभिघातज्वरे कुर्यात् क्रियामुष्णविवार्जितां ॥ ५ ॥
कषायमधुरास्निग्धां यथादोषमथापि वा ।
अभिघातज्वरो यः स्यात्पानाभ्यंगेन सर्पिषा ॥ ६ ॥
मेध्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ।
कृतानां व्रणितानां च कृतव्रणचिकित्सया ॥ ७ ॥
वधबन्धभ्रंशभङ्गचेष्टितादि[2] समुद्भवान् ।
ज्वरानुपचरेत्पूर्वं मदिराक्षीरभोजनैः ॥ ८ ॥

अभिघात से उत्पन्न ज्वर में उष्ण द्रव्यों से रहित क्रिया करनी चाहिये। कसैले, मीठे तथा चिकने द्रव्य तथा जैसा दोष हो उसके विपरीत चिकित्सा करे। जिसे अभिघात ज्वर हो उसे घृत पिलाये तथा मर्दन कराये, मेध्य द्रव्य जो सात्म्य हो, तथा मांसरस चावल आदि को दे जिन्हें चोट लगने से व्रण हो गया हों उन्हें व्रण चिकित्सा करके ठीक करे। मारने से, बांधने से, अंग की सन्धि आदि टूट गई हों उनमें ज्वरियों को पहिले मद्य, दूध आदि भोजन कराना चाहिये ॥ ५—८ ॥

---

१ 'विदूषयन्' इति वा पाठः ।
२ 'चेष्टनादि' इति वा पाठः ।

अभिषंगजमाह—

अभिषंगभवः सप्तप्रकारः परिकीर्त्यते ।
ग्रहावेशात्तथाक्रोधादौषधैर्विषतः शुचेः ॥ ९ ॥
कामाद्भयाच्चविज्ञेयस्तस्य लक्षण मुच्यते ॥
भूताभिषंगादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥ १० ॥

अभिषंग से होने वाला ज्वर सात प्रकार का कहा है। जैसे ग्रहादि के आवेश से, क्रोध से, विषयुक्त औषधी के सेवन से अथवा गन्ध से, तथा शोक से, काम से, भय से जानना चाहिये उसके लक्षण कहते हैं। भूत के आवेश होने से रोगी को उद्वेग (अर्थात् उठ २ कर दौड़ने) आदि का वेग होता है हंसना, रोना, कम्पन होता है ॥ ८—१० ॥

प्रक्रिया—

भूतविद्या समुद्दिष्टैर्बंधावेशन ताडनैः ।[1]
जयेद् भूताभिषंगोत्थं कृष्णाष्टतुलसीरसैः ॥ ११ ॥
सहदेव्या जटां कण्ठे बद्ध्वाभूतज्वरं जयेत् ।

भूतविद्या में कहे हुए उपायों से, कारागार में प्रवेश करके तथा ताड़न से भूतावेश ज्वर को जीते तथा इटासिद् तुलसी के रस से, सहदेवी का मूल लेकर गले में बांध कर भूत ज्वर को जीते ॥ ११ ॥

ग्रहजनितमाह—

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनां यथा ॥ १२ ॥
स्वमार्णि भास्करार्चिश्च यथादेहं च देहधृक् ।
विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ १३ ॥
ग्रहजे भूतमन्त्रोक्तं[2] बलिमन्त्रादि साधनम् ।
दानस्वस्त्ययनातिथ्यै रुत्पातग्रहपीडनैः[2] ॥ १४ ॥
शिरीष बिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थार्जुनपल्लवैः ।
सपुरः[3] शल्लकैर्धूपः सर्वज्वरग्रहापहः ॥ १५ ॥

---

१ 'बंध्यावेशन' इति वा पाठः ।

२ विद्योक्तमिति वा पाठः । २ पीडिते इति वा । ३ सकुन्दरुपुरैरिति वा ।

शीशे, जल, घृत, तैल में जैसे मनुष्य की छाया प्रवेश करती हुई दिखाई नहीं देती और सरदी, गरमी प्राणियों को लगती हुई भी प्रतीति नहीं होती, सूर्यकान्तमणि में सूर्य की किरणें प्रवेश होती हुई नहीं दीखती और जैसे देह में आत्मा का प्रवेश दिखाई नहीं देता इसी प्रकार मनुष्यों के देह में भूत तथा ग्रह आदिओं का प्रवेश भी दिखाई नहीं देता।

ग्रह आदि से होने वाले ज्वर में मन्त्रविधि से कहा हुआ बलि आदि का प्रयोग करना मन्त्रसाधन, दान, स्वस्तिवाचन, अतिथिपूजनादि कर्म से ग्रह आदि ज्वरों को जीते।

सरींह के बीज, बिल्व, जंबू, आम्र, अर्जुन इन वृक्षों के पत्ते, गुग्गुलु शिलारस इन द्रव्यों से धूप बना कर धूपित करने से सब प्रकार के ग्रह ज्वरों को हरता है॥ १२—१५॥

क्रोधजमाह—

क्रोधात्कम्पः शिरोरुक्च पित्तज्वरसमाकृतिः।
क्रोधजो याति कामेन सद्वाक्यैः पित्तजित्क्रमैः॥ १६॥
मनोवाञ्छित लाभैश्च सद्यःशान्तिमवाप्नुयात्।

क्रोध से कम्प, शिर में पीड़ा और पित्त ज्वर के समान लक्षण हो जाते हैं क्रोध से उत्पन्न ज्वर इच्छा की पूर्ति होने से युक्त वाक्यों से पित्त के जीतने वाले उपचार से, मन में जो अभिलाषा हो उसके लाभ हो जाने से शीघ्र शान्त हो जाता है॥ १६॥

औषधिगन्धजमाह—

औषधिगन्धजे मूर्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः॥ १७॥
वैगन्ध्यं वमनं कम्पोभ्रमः स्यादितिलक्षणम्।
औषधिगन्धजे पित्तं शमनीयैरुपाचरेत्॥ १८॥
निम्बदारुकषायो वा हितसौमनसं तथा।

औषधिगन्ध से उत्पन्न ज्वर में मूर्छा, शिर में पीड़ा, वमन, छींक आना, दुर्गन्धि हो जाना, कम्प, भ्रम यह लक्षण होते हैं।

औषधि के गन्ध से होने वाले ज्वर में पित्त की शान्ति के उपाय करे। निम्ब, तथा देवदारु का काढ़ा तथा जो प्रसन्नता करने वाला उपाय हो वह हित होता है॥ १७—१८॥

विषजमाह—

विषजे तृट् क्लमो मूर्च्छा मोहःश्यावास्यतारुचिः ।
अतिसारो वमिश्चैव ज्ञात्वा चैवं चिकित्सयेत् ॥ १६ ॥
विषजं शमयेच्छीघ्रं विषं पित्तप्रसादकृत् ।
जयेत् कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ २० ॥

विष से उत्पन्न ज्वर में, प्यास, थकावट, मूर्च्छा, मोह, मुख का काला होना, अतिसार, वमन, ऐसे लक्षण जानकर चिकित्सा करे।

विष से पैदा हुए ज्वर को पित्त के जीतने वाले उपायों से शीघ्र शान्त करे। तथा सर्व गन्धादि द्रव्यों के क्वाथ का बुद्धिमान वैद्य प्रयोग करे ॥ १६—२० ॥

शोकजमाह—

पुत्र मित्र कलत्राणां धननाशेष्टनाशने ।
जन्तूनां जायते पीड़ा सोऽसाध्यो मानसो ज्वरः ॥ २१ ॥
शोकाद्रक्तातिसरणं ग्लानिश्चित्तभ्रमस्तथा ।
प्रलापश्चाति बहुलो निश्वासश्चेति लक्षणम् ॥ २२ ॥
ह्रीवेरचन्दनोशीर धान्याकं मुसली सिता ।
द्रव्यैरेभिः कृतः क्वाथः शोकज्वरविनाशनः ॥ २३ ॥
मिष्टाशनं रुचिकरं व्यञ्जनैर्विविधैर्हितं ।
गव्यं भव्यं च बल्यं च देयं पित्तज्वरापहम् ॥ २४ ॥

पुत्र, मित्र, स्त्री, धन आदि के नष्ट होने पर तथा प्रिय द्रव्य वा प्रिय मित्रादि के नाश होने पर मनुष्यों को पीड़ा होती है वह असाध्य होता है। शोक से रक्त का अतिस्राव होता है, ग्लानि, चित्त भ्रम हो, प्रलाप अत्यन्त हो जाये, अधिक श्वास निकले यह लक्षण होते हैं। शोक ज्वर की चिकित्सा कहते हैं यथा—

ह्रीवेरमिति—सुगन्धबाला, रक्तचन्दन, खस, धनियां, मुसली, मिश्री, इन द्रव्यों से क्वाथ बना कर पीने से शोक ज्वर नष्ट होता है। तथा अन्य मीठे भोजन जो रुचि करने वाले हों नाना प्रकार के शाक भाजी आदि जिसके साथ हों वह हित होते हैं। गौ के दूध

से बने हुए मन को प्रिय और बलकारक पदार्थ देने योग्य हैं जिनसे पित्तशमन हो जाय ॥ २१—२४ ॥

कामजमाह—

कासोभ्रमोऽरुचिर्दाहोह्री निद्राधीर्धृतिःक्षमा ।
हृद्व्यथाध्मान निश्वासो नृणां कामज्वरे भवेत् ॥ २५ ॥

कास भ्रम, अरुचि, दाह, आदि हों लज्जा, निद्रा, बुद्धि, धैर्य, सहनशीलता इनका अभाव होता है, हृदय में पीड़ा, अफारा, श्वास यह लक्षण मनुष्यों को कामज्वरों में होते हैं ॥ २५ ॥

प्रक्रिया—

हृद्यैः शीतोपचारैश्च चिकित्सेत्कामपीड़ितं ।
सुरूपाचार नयना पीनोन्नत पयोधरा ॥ २६ ॥
योक्तव्या प्रमदा कामं कामज्वरनिपीड़िते ।

हृदय को जो हित पदार्थ हों उनसे और शीत उपचार द्वारा काम से दुःखी पुरुष की चिकित्सा करे । तथा सुन्दर रूप युक्त अच्छे आचार और नेत्रों वाली, कठिन और ऊपर को उठे हुए स्तनों वाली स्त्री को इच्छा होने पर काम ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के लिये नियुक्त करना चाहिये ॥ २६ ॥

स्त्रीषुकामज्वरमाह—

मूर्च्छांगमर्दस्तृण नेत्र चापल्यं कुचवक्त्रयोः ॥ २७ ॥
स्वेदः स्यात् हृदि दाहश्च स्त्रीणां कामज्वरेभवेत् ।
बालकं शतपत्राणि गन्धसारमुशीरकम् ॥ २८ ॥
चोच धान्येयकं मांसी क्वाथः काम ज्वरापहः ।
शय्यायां संस्तरः कार्यः सुगन्धैः कुसुमैर्भृशम् ॥ २९ ॥
क्रीड़नीयं स्वकान्तेन सहरात्रौ तथास्त्रिया ।

मूर्छा, अंगों का मर्दनवत् पीड़ा, तृष्णा, नेत्र, कुच, तथा मुख पर चपलता दिखाई दे, पसीना हो, यह लक्षण स्त्री को यदि कामज्वर हो तो जानने ।

प्रक्रिया—मुष्कबाला, गुलाब के फूल, चन्दन रक्त, खस, तज, धनिया, जटामांसी इनका काढ़ा कामज्वर को हरता है ।

शैय्या को सुगन्धि युक्त फूलों द्वारा बिछाकर उसके ऊपर

रात के समय अपने पति के साथ काम से पीड़ित स्त्री क्रीडा करे तो कामज्वर शान्त हो जाता है ॥ २७–२९ ॥

भयजमाह—

भयात्प्रलापोऽतीसारश्चेतस श्चानवस्थितिः ॥ ३० ॥
आश्वासेनेष्ट लाभेन वायोः प्रशमनेन च ।
हर्षणैश्च शमं याति सद्योभीतिभवोज्वरः ॥ ३१ ॥

भय से प्रलाप अतिसार, मन का स्थिर न रहना ये लक्षण होते हैं हौंसला देने से, प्रिय वस्तु के लाभ से तथा वायु के शान्त करने से प्रसन्नता से शीघ्र शान्त हो जाता है । भय से उत्पन्न हुआ ज्वर ॥ ३०–३१ ॥

शापजमाह—

शापोद्भूते ज्वरे ज्ञेयं लक्षणं सन्निपातवत् ।
मोह स्तृष्णा रतिश्चैव विशेषणविवर्धते ॥ ३२ ॥
वृक्षा राम तड़ागेषु देवता पत्तनेषु च ।
गो ब्राह्मण यतीनां च पीड़ां कुर्वन्तिये नराः ॥ ३३ ॥
तेषां दैवप्रकोपेण विज्ञेया दैविका ज्वराः ।
तत्राभिचारकैर्मन्त्रैः क्रिया यन्त्रौषधैरपि ॥ ३४ ॥
प्रयुक्तैः पुरुषस्यापि हूयमानस्यतप्यते ।
पूर्वं चेतस्ततो देह स्ततोविस्फोटतृड्भ्रमैः ॥ ३५ ॥
सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ।
शापजैर्दैविकोप्युक्तो ह्यभिचारभवो ज्वरः ॥ ३६ ॥
जपनात्पूजना द्धोमा द्बलि दानादिकैर्जयेत् ।

शाप से उत्पन्न हुए ज्वर में सन्निपात ज्वर की भान्ति लक्षण जानने चाहिये । मोह, तृष्णा, अरति आदि अधिक बढ़ते हैं । वृक्ष, बाग, तालाब तथा देवता के मन्दिर में, गौ ब्राह्मण, संन्यासी इनको जो लोग पीड़ा देते हैं । उनको दैव के कोप से दैविकज्वर जानना । और उलटे मन्त्रों के प्रयोग से, यन्त्र, औषधी आदि की विरुद्ध क्रिया करने से, और पुरुष के विरुद्ध हवनादि करने से पहिले मन

---

१ 'आशु' इति वा पाठः ।

तपता है अर्थात् दुःखी होता है पीछे देह तपता है फिर फिनसियें हो जाती है प्यास, भ्रम होते हैं दाह और मूर्च्छा से ग्रस्त होने से नित्य प्रति ज्वर बढ़ता है । शाप से, दैव से अभिचारक ज्वर होता है । वह ज्वर जप करने से, पूजन करने से, होम से, बलि देने से, और दानादि के करने से शान्त होता है ॥३२-३६॥

इति श्री ज्वरतिमिर भास्करे आगान्तुज्वरो-
नामाष्टमोऽध्यायः ॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

अथ विषमज्वरानाह—

सम्प्राप्तिमाह—

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतोज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषम ज्वरम् ॥ १ ॥

जो दोष ज्वर मुक्त होनेसे पीछे अल्प शेष रह गया हो वह अपने काल में लब्ध बल होकर ज्वर कर दे, अथवा मिथ्याहारादि करने से बलवान् दोष नित्य ज्वर को कर दे, तथा आरम्भ से ही जो विषमता को प्राप्त होकर ज्वर को अन्य धातुओं में (अर्थात् रस, रक्तादि धातुओं में से किसी एक धातु में प्राप्त होकर ज्वर को कर दे) तो उसे विषमज्वर कहते हैं ।

भेदानाह—

सन्ततादि विभेदेन ज्वरः पञ्चविधः स्मृतः ।
संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ २ ॥

सन्ततादि भेद से ज्वर अर्थात् विषमज्वर पांच प्रकार का कहा है जैसे सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चतुर्थक यह भेद है ।

(सन्तत‌ज्वरे कारणं) सन्ततमाह—

यश्चाऽततायी भवतीहसोऽयं सुवृत्तविद्वेषणसक्तचित्तः ।
[1]ससन्ततेन ध्रुव दुर्जयेन ज्वरेण दुष्येत सुदुर्धरेण ॥ ३ ॥

सम्प्राप्तिः—

स्रोतोभिर्विसृतादोषागुरवो रसवाहिभिः ।
सर्व देहानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ॥ ४ ॥

---

१ ' यश्चाततायी भवती हमायी ' इति वा पाठः ।

यथाधातूंस्तथामूत्रं पुरीषं चानिलादयः ।
युगपच्चानुपद्यन्ते नियमात्सन्तते ज्वरे ॥ ५ ॥
सप्ताहं वादशाहं वा द्वादशाहं सुदुःसहः ।
स शीघ्रं शीघ्रकारित्वात्प्रशमं याति हन्ति वा ॥ ६ ॥
विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्त लक्षणं ।
दुर्लभोपशमः कालं दीर्घमप्यनुवर्त्तते ॥ ७ ॥

"अग्निदो गरद श्चेत्याद्युक्त रीत्या षट् प्रकारक आततायी, पत्कृते "आततायीनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्" इति स्मार्त्तै र्दण्डः पात्यते ॥

जो व्यक्ति आततायी अर्थात् मारने की इच्छा वाला होता है और भले मनुष्यों के साथ द्वेष करने में हमेशा मन जिसका लगा हो वह पुरुष निश्चय से बड़ी कठिनता से जीते जाने वाले तथा अत्यन्त कठिनता से धारण योग्य सन्तत ज्वर से दूषित होता है ॥ ३ ॥

रसवाहन करने वाले स्रोतों से फैलाते हुए दूषित दोष अर्थात् वृद्ध हुए दोष सारे देह में घूमते हुए स्तब्ध होकर सन्तत ज्वर को करते हैं ॥ ४ ॥

वातादि दोष रस रक्तादि धातु तथा मूत्र और मल स्रोतों में एक ही काल में नियम से सन्तत ज्वर में प्राप्त हो जाते हैं ॥५॥

सात दिन अथवा दश दिन वा बारह दिन तक अत्यन्त कष्ट से सहन करने योग्य वह शीघ्रकारी होने से शीघ्र ही मार देता है अथवा शान्त हो जाता है ॥ ६ ॥

बारहवें दिन में प्रत्यक्ष लक्षण हो त्याग करके (अर्थात् वास्तव में न छोड़कर) दुर्लभ शान्ति को प्राप्त होकर दीर्घकाल अर्थात् तेरहवें दिन से पुनः दोष ज्वर करने वाले हो जाते हैं ॥ ७ ॥ •

चिकित्सामाह—

पटोलीन्द्रयवं दारु गुडूची निम्ब पल्लवैः ।
क्वाथो हन्ति नियतोयं सहसा सन्ततं ज्वरम् ॥ ८ ॥
निंबामृताभया द्राक्षां पटोलीन्द्रयवाः समाः ।

शर्करा मधुसंयुक्तः क्वाथो वैसन्ततापहः ॥ ६ ॥
पटोलैकटुकत्रय वीजानां कुटजस्य वा ।
एतैः प्रक्वाथितः क्वाथः सन्तत ज्वर नाशनः ॥ १० ॥

परवल के पत्ते, इन्द्रजौ, देवदारु, गिलोय, निंबपत्र, यह काथ निश्चय से सन्तत ज्वर को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

निम्बपत्र, गिलोय, हरड़ मुनक्का, परवल, इन्द्रजौ यह द्रव्य बराबर भाग लेकर काथ करके चीनी और मधु मिलाकर पीने से सन्तत को हरता है ॥ ६ ॥

परवल, मघा मिरच, सुएड, कुड़ा के बीज (इन्द्रजौ) इनसे किया हुआ काथ सन्ततज्वर का नाश करता है ॥ १० ॥

ज्वराः पञ्च मयोक्तार्ये पूर्वं सन्ततकादयः ।
चत्वारः सन्ततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः ॥ ११ ॥

पांच प्रकार के सन्ततादि ज्वर जो कहे हैं इनमें से सन्तत को छोड़कर शेष चार विषम ज्वर जानना (अर्थात् सन्तत को सान्निपातिक जानना चाहिये ॥ ११ ॥

सर्वेषां विषमज्वराणां सन्निपातविधानम्—

ज्वराश्च पञ्च[२]भाः सर्वे सान्निपात समुद्भवाः ।
यथोल्वणस्यदोषस्य तेषां कार्यं चिकित्सितम् ॥ १२ ॥

जो यह पांच विषमज्वर हैं इन्हें सन्निपात से उत्पन्न हुए जानकर यथादोष (अर्थात् जो दोष वढ़ा हुआ हो वैसी ही) उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

अन्य सम्प्राप्तिमाह—

श्लेष्म पित्ते विदह्येत रस स्थाने यदानिलः ।
तस्मिन् काले मनुष्याणां जायते विषमज्वरः ॥ १३ ॥

भालुकी मजेन विषम ज्वरस्यलक्षणमाह—

यः स्यादनियतात्कालाच्छीष्णोभ्यां तथैव च ।
वेगतश्चापि विषमो ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ १४ ॥
क्वचिदुष्णेन शीतेन क्वचिद्रात्रौ क्वचिद्दिवा ।

---

१ 'पटोलपत्र कटुक' इति व पाठः ।
२ 'विषमा' इति व पाठः ।

प्रशमं याति कोपं च ज्वरः स विषमः स्मृतः ॥ १५ ॥

जबवायु रस स्थान में कफ तथा पित्त को विदाह (कुपित) कर देता है उस समय मनुष्यों को विषमज्वर (अर्थात् सन्ततज्वर) उत्पन्न करता है ॥ १३ ॥

जिसके काल का निश्चय हो नहीं (अर्थात् उसके आने का समय निश्चित न हो) तथा कभी शीत से कभी गरमी लगकर ज्वर हो तो और जिसका वेग कभी अधिक कभी न्यून हो जाये वह ज्वर विषम कहा है ॥ १४ ॥

कभी सरदी कभी गरमी लगकर आवे और कभी दिन में कभी रात्रि में शान्त हो जाये या बढ़ जाय वह ज्वर विषम कहा है ॥१५॥

सन्ततेन सततकादिभ्यः परिवर्त्तनमाह—

त्यक्त्वा स्वरूपमात्मीयं सन्ततः सततादिकान् ।
कफस्थानविभागेन यथा संस्थान् करोतिहिः ॥१६॥
सततान्येद्युस्तृतीय चतुर्थक प्रलेपकान् ।
अहोरात्रादहोरात्रात् स्थानात्स्थानं प्रपद्यते ।
दोष आमाशयं प्राप्य करोति विषमज्वरान् ॥ १७ ॥

अपने स्वरूप को छोड़ कर सन्तत कफ स्थानों में अर्थात् अमाशय, छाती, कण्ठ, शिर, सन्धियें इनपांच स्थानों में ठहरता हुआ क्रम से दोष अर्थात् सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, और चतुर्थक को करता है वहां आमाशय में स्थित दोष सततक को दिन रात में दो वार करता है क्योंकि दिनरात में दो वार दोष के कोप होने से होता है। तथा हृदय में स्थित हुआ दोष आमाशय में आकर अन्येद्युष्क को करता है दिन रात्रि में एक ही काल में कुपित दोष अन्येद्युष्क का कारक होता है ॥

इसके अनन्तर कण्ठ स्थित हुआ दोष दिन रात्रि में हृदय को प्राप्त होकर दूसरे दिन आमाशय में प्राप्त हो तृतीयक को करता है एक ही काल में करता है यह स्वभाव से ही होता है इसी तरह शिर में स्थित हुआ दोष दिन रात्रि में कण्ठ में आकर हृदय में दूसरे दिन प्राप्त हो चौथे दिन आमाशय में प्राप्त होकर चतुर्थक को करता है।

इसी लिये कहा है कि दिनरात्रि में एक स्थान से दूसरे स्थान में प्राप्त होकर दोष आमाशय में प्राप्त होकर विषम ज्वरों को करता है ॥ १६—१७ ॥

आमाशयस्थाः सततं खुरस्थो[1]ऽन्येद्युष्कसंज्ञं कुरुते गलस्थाः ।
तृतीयकं मूर्धगतंश्चतुर्थं स्थानादिति स्थान मुपैति दोषः ॥१८ ॥

सतत का हृदय से दोष आमाशय में प्राप्त होकर करता है तथा गल में स्थित दोष एक दिन में हृदय में प्राप्त हो दूसरे दिन आमाशय में पहुंच कर तृतीयक को करता है इसी प्रकार मस्तक में स्थित दोष क्रम से गल तथा हृदय में होकर आमाशय में पहुंच कर चतुर्थक को करता है ॥ १८ ॥

सततं तु ज्वरं कुर्य्याद्दोषः शोणित संस्थितः ।
सत्वहोरात्र मध्ये तु द्वौ कालावनुवर्तते ॥ १९ ॥
आमाशये मरुत्प्रायो दोष स्तिष्ठति हि ज्वरे ।
अत्यर्थ संभवे तीक्ष्णे द्वौ कालौ गतिरस्यतु ॥ २० ॥

दोष रक्त से उत्पन्न होकर सतत ज्वर को कर देता है वह दिन रात्रि में दो काल में प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

आमाशय में प्रायः वायु के प्राप्त होने पर ज्वर में दोष ठहरता है अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर इसकी दो काल में गति होती है ॥२०॥

संततविपर्ययमाह—

कफस्थाने यदादोषास्तिष्टद्दित्रि चतुर्ष्वा ।
विपर्ययाख्यान् कुरुते विषमान्कृच्छ्र साधनान् ॥ २१ ॥
पञ्चाशन्नाड़िका भूत्वा आद्यन्ते पञ्चपञ्च च ।
जहाति स ज्वरोज्ञेयः संततस्यविपर्यय ॥ २२ ॥

कफ स्थान में जब दो तीन वा चार दिन तक दोष ठहरता है तो विपर्य संज्ञक विषम ज्वरों को जो कष्ट साध्य होते हैं ऐसे विषमज्वरों को करता है ॥ २१ ॥

पांच घड़ी आदि और अन्त को छोड़कर पचास घड़ी दिन रात में जो ज्वर होता है उसे संतत जानो ॥ २२ ॥

---

१ ' उरस्थो ।

चिकित्सामाह—

पाठा पटोल कटुका शारिवा मुस्तकान्वितः ।
एतैः सिद्धः कषायस्तु सतत ज्वर घातकः ॥ २३ ॥
शारिवा द्वितयं पाठा त्रायन्ती कटुरोहिणी ।
शर्करा मधु संयुक्तः क्वाथो वा सततापहः ॥ २४ ॥
विषमे सतते दोषे ज्वरे प्रोक्तं चिकित्सितम् ।
तत्तदुक्त विपर्यस्त ज्वरेऽपिच तदेवहि ॥ २५ ॥

पाठा, परवल के पत्ते, कुटकी; अनन्तमूल, इन से सिद्ध किया काढ़ा सतत ज्वर का नाश करता है ॥ २३ ॥

दोनों प्रकार का अनन्तमूल, पाठा, त्रायमाणा, कुटकी इनका काढा बनाकर खाण्ड और शहद मिलाकर पीने से सतत ज्वर को हरता है ॥ २४ ॥

सतत विषम ज्वर के दोष में जो चिकित्सा कही हे वही उपचार सतत विपर्य में करना चाहिये ॥ २५ ॥

अन्येद्युष्कमाह—

अन्येद्युष्कं ज्वरं कुर्याद्दोषोयःपिशिताश्रितः ।
सत्वहोरात्र मध्येन एककालं प्रवर्त्तते ॥ २६ ॥

दोष मांस के आश्रित होकर अन्येद्युष्क ज्वर को करता है । वह दिन रात्रि के मध्य में एक समय होता है ॥ २६ ॥

अन्येद्युष्कविपर्यमाह—

कफ प्रायो हृदिस्थो यो दिनादामाशयं व्रजेत् ।
ज्वरं कृत्वा पुनर्याति शीघ्रं स्वस्थानकं प्रति ॥ २७ ॥
रात्र्यह्नोः षट्सुकालेषु एक कालं विमुञ्चति ।
सोऽन्येद्युष्क विपर्यासः कृच्छ्रसाध्यः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

जो कफ हृदय में स्थित होकर आमाशय में जाये और ज्वर को करके फिर वह कफ अपने स्थान के प्रति शीघ्र आ जाये तथा रात दिन के छः कालों में एक समय छोड़ दे वह अन्येद्युष्क का विपर्य कष्ट साध्य कहा है ॥ २७—२८ ॥

चिकित्सा—

मृद्वीका त्रिफला निंब पटोली मुस्त वत्सकैः ।
कृतः क्वाथो निहन्त्येव ज्वरमन्येद्युसम्भवम् ॥ २६ ॥

पटोलारिष्ट मृद्वीका शम्पाक त्रिफलामृता ।
शर्करामधुसंयुक्तः क्वाथो वेला ज्वरापहः ॥ ३० ॥
मूलं श्वेत तुरंगारेः काकजंघोद्भवंहि वा ।
रवौ कुमारिका सूत्रे बद्धं वेलाज्वरापहः ॥ ३१ ॥

मुनक्का, त्रिफला, निम्ब, परवल, मोथा, कुड़ासक, इससे किया क्वाथ अन्येद्यु ज्वर का नाश करता है ॥ २६ ॥

परवल, निम्ब, मुनक्का, अमलतास, त्रिफला, गिलोय इनका क्वाथ शक्कर मधु से मिलाकर पीने से बेला ज्वर को हरता है ।
सफेद कनेर की जड़ अथवा काकजंघा की जड़ कुमारी कन्या के कते हुए सूत से बांधे तो बेलाज्वर नाश होता है ॥ ३१ ॥

तृतीयकमाह—

प्रणयति सुतरांयश्चत्वराम्भः श्मशान प्रभृतिषु–
शिवसद्मन्युग्र देवालये वा ।
प्रलपनमलमूत्रोत्सर्ग निष्ठीवनादि–
ज्वरमहतरवेगः[1] पीडयेत्तं तृतीयः ॥ ३२ ॥
मेदोगतस्तृतीयेन्हि तृतीयक इति स्मृतः ।
त्र्यहाद्व्यहं ज्वरयति दिनमध्ये विमुञ्चति ॥ ३३ ॥
प्रायः पित्तोद्भवः सोऽयं द्वन्दजोऽन्यमतेमतः ।
वातपित्ताच्छिरोग्राही पृष्ठे वातकफात्मकः ।
कफपित्तात्रिक ग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ३४ ॥
दोषौ गलस्थौ घस्रेण हृदयं गच्छत स्ततः ।
दिनेनामाशयं प्राप्य कुर्यातां तौतृतीयकम् ॥ ३५ ॥

---

1 बहुतर–इतिपाठः शुद्धः ।

ज्वरस्य विरतौ वेगात्पुनरायाति वेगतः ।

विपर्ययमाह—

मध्ये त्वेक दिनं भूत्वा आदावन्ते विमुञ्चति ॥ ३६ ॥
स तृतीयक विपर्यासः कथितो वृद्धसौश्रुते ।

जो पुरुष निरन्तर चौराहे में, जल में, श्मशान में, शिवालय में अथवा उग्र देवता के मन्दिर आदि में मल मूत्र अथवा थूकादि त्याग करता है उसको अत्यन्त वेग से तृतयिकज्वर से पीड़ा होती है।

मेदा में होने वाला तृतीयकज्वर कहा है वह तीसरे दिन ज्वर करता है अथवा दो दिन ज्वर करके बीच के दिन में छोड़ता है ३३

प्राय: यह पित्त से होता है, द्वन्द्वज अन्य मत में माना है । कफपित्त से त्रिक में पीड़ा करता है, तथा वात कफ से पृष्ठ में करता है और वातपित्त से शिर में पीड़ा करता है इस प्रकार तृतीयक तीन भेदों से होता है ॥ ३४ ॥

दोष गल में स्थित होकर एक दिन में हृदय में जाकर फिर दूसरे दिन आमाशय में प्राप्त होकर वह दोनों दोष तृतीयक को करते हैं। ज्वर शान्त वेग हो जाने पर फिर वेग से आ जाता है ।

मध्य में एक दिन ज्वर होकर आदि का दिन थता अन्त का दिन छोड़ देता है वह तृतीयक का विपर्य वृद्ध सुश्रुत ने कहा है ।

चिकित्सामाह—

शुण्ठी गुडूची भूनिंब चन्दनै रुपकल्पितः ।
क्वाथो निहन्ति न चिरात्तृतीयादिभवं ज्वरम् ॥ ३७ ॥

समाक्षिक सिता शीतः शीतमुस्तमहौषधैः ।
धान्यछिन्नारुहोशीरैः क्वाथ एकान्तरं जयेत् ॥ ३८ ॥
*अभया क्वथिता पेया शर्करा मधुसंयुतः ।
ज्वरे तृतीयके पुंसां तृष्णादाह समन्विते ॥ ३९ ॥

---

*षोडाष्ट चतुर्भागवातपित्तकफादिषु । क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीतन्तु शर्करा। पिप्पली चन्दनं मुस्तं नागरो शीरधान्यकं शर्करामधुसंयुक्त: क्वाथः एकान्तर जयेत्। इत्यधिक: ख. पुस्तके ।

सुण्ड, गिलोय, चिरायता, रक्तचन्दन से बनाया हुआ काढ़ा शीघ्र ही तृतीयक ज्वर को हरता है ॥ ३७ ॥

मधु, शर्करायुक्त पित्तपापड़ा, नागरमोथा, सुण्ड, धनिया, गिलोय, खस इनका काढ़ा ठण्डा करके पीने से तृतीयक को जीतता है। हरीतकी का काढ़ा मधु शर्करा युक्त करके पिया हुआ तृतीयक ज्वर में तृष्णा दाह युक्त जो हो उसे जीतता है ॥ ३८—३९ ॥

आयुर्वेदोदितं[1] रुद्रसूक्तं मृत्युञ्जयं जपेत् ।
पुर सिद्धार्थ सर्पीषिजुह्वन्नेकान्तरं जयेत् ॥ ४० ॥
ज्वरस्य दिवसे प्राप्ते रवेरथ शिवं जलैः ।
अभिषिच्यच तं देवं तद्वियालिङ्गयेत्पुनः[2] ।
प्रदक्षिणमनुभ्रमन्नमलयामुहुः श्रद्धया ।
तृतीयकनिपीडतः सपदि सम्पदं[3] विन्दति ॥ ४१ ॥
कलशैरेकविंशत्या तत्र कुर्वीत तर्पणं ।
मन्त्रेणानेन विधिवत्तिलपुष्पकुशान्वितम् ॥ ४२ ॥

आयुर्वेद में कहे हुए रुद्रसूक्त को और मृत्युञ्जय को जपे । गुग्गुल, सरसों, घृत इनसे हवन करता हुआ एकान्तर अर्थात् एक दिन छोड़कर होने वाले तृतीयक को जीते ॥ ४० ॥

ज्वर का वेग जिस दिन आना हो उस दिन अथवा रविवार के दिन शंकर की मूर्त्ति को पर्याप्त जल से अभिषेक करके फिर उसे आलिंगन करे शुद्धमन होकर प्रदक्षिणा करता हुआ श्रद्धा से युक्त होकर पूजन करने से तृतीयक से पीड़ित व्यक्ति शीघ्र ही कल्याण को प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

वहां शिवलिंग के ऊपर इक्कीस घटों को जल से पूरित कर विधि से तिल फूल और कुशा से नीचे लिखे मन्त्र से तर्पण करे ।

---

१ यजुर्वेदोदितमिति वा पाठः ।

२ हरधिया समालिंग्य इति वा पाठः ।

३ 'समुदं' इति वा ।

मन्त्रः—ओं नमो बोधरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः।
ज्वरंहर महाभाग तृतीयं समबाधकम् ॥ ४३ ॥
ज्वरमेतन सन्तर्प्य समाश्लिष्य इमं जपेत्।
महाज्वर महाभागः महाबल पराक्रमः ॥ ४४ ॥
रुद्रोसि रुद्ररूपोसि तृतीयक महाज्वर।
त्यजमांभूतभव्येश पिप्पलेऽस्मिन् स्थिरो भव ॥ ४५ ॥
ज्वरमश्वत्थे मुक्त्वा तन्मूले जलभृतं नवं घटम्।
असित करम्भ सम्भृत शरावपिहितं ततो दद्यात् ॥ ४६ ॥
प्रगृहाण बलिं चेमं तृतीयक महाज्वर।
आतुरस्य सुखं सिद्धिं प्रयच्छस्व महाबल ॥ ४७ ॥
अप्येकविंशतिर्विप्रान् सप्तवा त्रीन्यथासुखं।
भोजयित्वागृहं गच्छेन्मौनी पश्यन्निजौपदौ ॥ ४८ ॥

ओं नमो बोधरूपायेति—मन्त्र से शिव लिंग पर तर्पण करता हुआ जाप करे।

महाज्वरेति—मन्त्र से पीपल के वृक्ष में ज्वर को स्थापन करता हुआ उसके मूल में नवीन घट को जल से भरकर काले कपड़े से लपेटे उसके ऊपर चप्पनी देकर फल पुष्प चावलादि रखे प्रगृह्य-स्वेति मन्त्र से प्रार्थना करता हुआ बलि प्रदान करे। इसके अन-न्तर २१ वा ७ वा तीन ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन कराकर अपने पैरों की ओर देखता हुआ मौन व्रत धारण कर अपने घर को चला आवे ॥ ४३—४८ ॥

ततस्तु शंकर स्तस्मात्प्रीतोवैविप्रभोजनात्।
देहात् गच्छति रौद्रोयं त्रिविधोयस्तृतीयकः ॥ ४९ ॥
मण्डलिका दन्त काष्टं दातव्यं रविवासरे।
आमन्त्र्य संख्यायां कृतमेकान्तरं जयेत् ॥ ५० ॥

---

१ 'निमन्त्रयेत्' इति वा २ 'रुद्रोस्थ' इति वा।

३ "आतङ्कात्' इति वा पाठः। ४ मन्त्र सन्ध्यायां इति वा। सम स्थाने-भूरि-शब्दोपयोगायुक्ततरः।

तब ऐसा करने से ब्राह्मण भोजन कराने से प्रसन्न हो जाने पर शंकर का भयंकर जो तीन प्रकार का तृतीयक है देह से चला जाता है ॥ ४६ ॥

वट वृक्ष की दातन रविवार के दिन अभिमन्त्रित सात वार कर के देने से एकान्तर ज्वर को जीता है ॥ ५० ॥

धूपमाह—

रुद्रजटा गो शृगं विड़ाल विष्ठोरंगस्य निर्मोकः ।
मदन फल भूतकेशी वंशत्वक् शिग्रु निर्माल्यम् ॥ ५१ ॥

घृत यव मयूर चन्द्रक छाग रोमाणि सर्षपः स वचः
सहिंगुर्निंबपत्राः समभागः छागमूत्र संपिष्टाः ॥ ५२ ॥
धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वज्वरान्निपतम् ।
ग्रहडाकिनी पिशाचात्प्रेतविकारांश्च धूपोऽयम् ॥ ५३ ॥

रुद्दन्ति, गौ का सींग, बिल्ली का मल, सांप की कैंचुली, मैनफल (राड़ा) जटामांसी, बांस की छाल, सुहाञ्जना, शिव के ऊपर के फूल, घृत, जौ, मोरपुच्छ, बकरे के रोम, सरसों, वच, हींग, निम्बपत्र, इनको समभाग लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर धूप की विधि से वरताव में लाने से सब ज्वरों का नाश करता है यह धूप ग्रह डाकिनी, पिशाच, प्रेत आदि के विकारों को भी नाश करता है ॥ ५१—५३ ॥

चातुर्थकमाह—

सतत काम जनित भ्रममोहिता,
भ्रमति व्याघ्र वधू रनिशं यथा ।
मुहुरधिष्ठितधाम रजस्वला
निज रजः स्वदते तदुपागता ॥

व्याघ्रीय सततं मकरध्वज जनितो भ्रमतिभ्रममोहिता ।
साबहुधा शुभधाम रजस्वलामथतदुत्थ तमति पिवत्यपि ॥
हसति रोदिति चैत्य तरोरधः शमलमुज्झतिफूत्कुरुतेऽपि च ।
कुपितभूतभवज्वरपीडिताविरसमाश्रयतीह चतुर्थकी ॥ ५४ ॥

---

१ "रुद" इति वा।

अधिशेते यथाभूमिं बीजं काले च रोहति ।
अधिशेते तथाधातून्दोषः काले च कुप्यति ॥ ५५ ॥
सवृद्धिं बलकाले च दोषः प्राप्यतृतीयकम् ।
चतुर्थकं च कुरुते प्रत्यनीकं बलक्षयात् ॥ ५६ ॥
अस्थिमज्जगतो दोषः कुर्याच्चातुर्थकं ज्वरम् ।

जिसप्रकार व्याघ्री निरन्तर कामदेव से पैदा हुए भ्रम से मोहित होकर घूमती है वह अनेक वार रजस्वला होकर मोह को प्राप्त होती हुई उस स्थान को चाटती है। हसती है रोती है और वृक्ष के नीचे आकर मल को त्याग करती है और फू फू शब्द करती है इसी प्रकार कुपित भूतादि से हुए चतुर्थक ज्वर से पीड़ित मनुष्य शीघ्र ही विरसता को प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥

जैसे पृथिवी पर पड़ा हुआ बीज जौं इत्यादि वर्षा काल के अनन्तर स्वयं ही पैदा होजाता है इसी प्रकार धातुओं में प्राप्त अर्थात् लीन हुए दोष अपने काल में बल को प्राप्त होजाते हैं।

ये अपने काल में बल को प्राप्त होकर वृद्ध हुए तृतीयक और चतुर्थक को बलनाश होने से कर देते हैं। अस्थि और मज्जा में प्राप्त दोष चतुर्थक को कर देते हैं ॥ ५५—५६ ॥

हारीतोऽप्याह—

चतुर्थको नामगदो दारुणो विषमज्वरः ॥ ५७ ॥
शोषणः सर्वधातूनां बलवर्णाग्निनाशनः ।
दिन द्वयं योविश्रम्य प्रत्येति स चतुर्थकः ॥ ५८ ॥
प्रायस्त्रिदोषजः प्रोक्तो ग्रन्थान्तर मथोच्यते ।
गृह्णत्यूर्ध्वमध्याधश्च कफ वातादिभिः क्रमात् ॥५९॥

चतुर्थक नामक व्याधि दारुण विषमज्वर होता है सब धातुओं को सुखाने वाला बल वर्ण अग्नि का नाश करने वाला माना है जो दो दिन रुक जाये फिर ज्वर को करे वह चतुर्थक होता है ग्रन्थान्तर में इस ज्वर को त्रिदोषज कहा है ऊपर मध्य तथा नीचे देह के भाग को क्रम से कफ वायु और पित्त से ग्रहण करता है। ग्रन्थकार का यह वाक्य असङ्गत प्रतीत होता है क्योंकि इसने मध्य स्थान में होने वाला क्रम से वातजनित वर्णन किया है वास्तव में

मध्यकाय में पित्त का स्थान है इस लिये यह वाक्य असङ्गत मालूम होता है और कहा भी है यथा—

' नागभर्तृतन्त्रे स्थानमप्युक्तमेव-
ऊर्ध्वकायं तुयः पूर्वं गृह्णाति सोऽनिलात्मकः।
मध्यकायं तु गृह्णाति पूर्वं यस्तु स पित्तजः।
पूर्वं गृह्णात्यधः कायं श्लेष्मवृद्धचतुर्थक ॥' इति

अर्थात् ऊपर के भाग में जो पहिले हो वह वायु से होता है मध्यभाग में पहिले जो ग्रहण करता है वह पैत्तिक होता है पहिले जो नीचे के शरीर में होता है वह कफ की वृद्धि से जानना। वास्तव में चतुर्थक दो ही प्रकार का होता है यतः चरकादियों ने पैत्तिक चतुर्थक वर्णन नहीं किया और कहा है-'जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः। अर्थात् कफ से पहिले जंघा में हो और शिर में वायु से होता है ॥ ५७—५९ ॥

दोषः शिरस्थो घस्रेण कण्ठं प्राप्यततः परं।
दिनेन हृदयं प्राप्य दिनेनामाशयं गतः ॥ ६० ॥
चातुर्थिकं ज्वरं कृत्वा विनाशं याति मस्तके।

शिर स्थित दोष होने से वह कण्ठ को प्राप्त होता है इससे परे एक दिन में हृदय को प्राप्त होकर एक दिन में आमाशय में जाता है और चातुर्थक ज्वर को करके मस्तक में नाश को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

चातुर्थकविपर्ययमाह—

दिनमादौ दिनं चान्ते मुक्त्वा मध्ये द्वहं भवेत् ॥ ६१ ॥
चातुर्थक विपर्यासो दुःसहोह्यस्थिमज्जगः।
धात्वान्तरस्थोलीनत्वात्सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ ६२ ॥
सचापि विषमो देहं न कदाचिद्विमुञ्चति।
वेगे तु समतिक्रान्ते गतोयमिति लक्ष्यते ॥ ६३ ॥
ग्लानि गौरव वैवर्ण्य कार्श्येभ्यो नैव मुञ्चति।

पहिले दिन तथा अन्त के दिन में छोड़कर मध्य के दो दिन जो ज्वर करे वह चतुर्थक का विपरीत कहा है वह दुःख से सहने योग्य अस्थि तथा मज्जा में होता ह। धातुओं के अन्दर ठहरा

हुआ लीन होने से और सूक्ष्मता से दिखाई नहीं देता । और वह भी विषमज्वर देह को कभी नहीं छोड़ता । वेग के चले जाने पर चला गया ऐसा दिखाई देता है ॥ ६१—६३ ॥

चिकित्सामाह—

धात्रीधान्याभया वासा स्थिरा दारु स नागरैः ॥ ६४ ॥
सितामधुयुतो हन्ति क्वाथश्चातुर्थिकं ज्वरं ।
गुडूच्यामलकी मुस्ता क्वाथो मधुसमन्वितः ॥ ६५ ॥
ज्वरं निवारयत्याशु चतुर्थं दिनसम्भवम् ।
विदारीक्षु रसैः सर्पिर्मधु तैलैः शृतं पयः ॥ ६६ ॥
पिवेच्चातुर्थिको कास श्वास वात ज्वरापहं ।
कल्कः शिरीष पुष्पस्य रजनी द्वयमिश्रितं ॥ ६७ ॥
नस्यं सर्पिस्समायोगाज्ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ।

आंवला, धनियां, हरड़, बांसा, पृष्ठपर्णी, देवदारु, सुण्ड, इनका क्वाथ मिश्री और मधु मिलाकर पीने से चातुर्थक ज्वर का नाश करता है ॥ ६४ ॥

गिलोय, आंवला, मोथा इनका क्वाथ मधु मिलाकर पीने से चौथे दिन होने वाले ज्वर को नाश करता है ॥ ६५ ॥

विदारीकन्द, गन्ने का रस, घृत, मधु, तैलतिलका इन से मिश्रित गरम दूध पीनेसे चतुर्थक को और कास श्वास को हरता है

सरींह के फूल दोनों हल्दी (अर्थात् हल्दी और दारुहल्दी) इनका कल्क बनाकर घृत के साथ नस्य देने से चतुर्थ को जीतता है

धूहमाह—

शैलूष मण्डनरजः पुरुषानुरूपं,
शुभ्राङ्गवत्ससुरभी पयसानिपीतं ।
आदित्यवार भवपालदिनेशषष्ट्यां[1]
चातुर्थिकं सुचिरजं जयतिक्षणेन ॥ ६८ ॥

अर्थात् बिल्व के चूर्ण को सफेद बछड़े वाली गौ के दुग्ध से जो पुरुष रविवार के दिन अथवा रविवार षष्ठी तिथि हो तो इस दिन पीवे तो चिरकाल से होने वाले चतुर्थक ज्वर को शीघ्र ही जीतता है६८

१ पा० वि दिनेशतथ्यं । इति वा पाठः ।

धूपमाह—

अजाव्योश्चर्म रोमाणि वचा कुष्टं पलंकषा।

क्षौद्रयुङ् निंबपत्राणि धूपश्चातुर्थिकापहः ॥ ६९ ॥

बकरी तथा भेड़ का चर्म तथा रोम, वच, कुठ, गुग्गुल, मधु, निंबपत्र मिलाकर धूप देने से चातुर्थक को हरता है ॥ ६९ ॥

त्रिफला चूर्ण मिश्रं वा पेयं चातुर्थिकापहम्।

अगस्त्य पत्र स्वरसैर्नस्यं चातुर्थिका पहम् ॥ ७० ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला का चूर्ण मधु मिलाकर पीने से भी चतुर्थक को हरता है। अगस्त के पत्रों के स्वरस की नस्य भी चतुर्थक ज्वर को हरती है ॥ ७० ॥

इति तदातुर आशु तदागमे अभिलषेद्यदितद्ध्रुवमर्पयेत्।

स रुचिर चन्दन चम्पकं माल्लिका कुसुममांस सुरा कृशरादिकम्।

अर्थात् वेग के आने पर जो इच्छा करे आतुर को वही देना चाहिये, रुचिकारक चन्दन चंपे के फूल, मालती के फूल, मांस, मद्य, खीचड़ी आदि जो मांगे वही दे ॥ ७१ ॥

अथधेनुदानमाह—

असितधेनुमशेष मुपस्कृता विपुलसद्युति मुत्तमलक्षणां।

द्विजवराय ददीत सदाजनः प्रमुदिताय हिताय सदक्षिणाम् ७२

सकल संस्कृति[1] दुःखहरं हरं व्रजिनसन्तति[2] दोषहरं हरिम्।

अहरहः प्रयतः स्वयमर्चयन्नयति नाशमिमं विपदन्वयम् ७३

अब ज्वर नाश करने के लिये गौदान की विधि वर्णन करते हैं—बड़ी सुन्दर काले रंग की गौ को जो शुभ लक्षणों वाली हो उसे सब सामग्री सहित (अर्थात् सोने के सींग, चांदी के खुर, ताम्र की पीठ तथा ऊपर कपड़े से ढककर गले में घण्टी और पूंछ में पवित्र मोती बांधकर) किसी योग्य ब्राह्मण के लिये जो प्रसन्नता से उसे ग्रहण करे उसे वस्त्रादि और दक्षिणा साथ देकर दान करे और सम्पूर्ण संसार के दुःखों के हरने वाले महादेव तथा समस्त विघ्नों के नाशक विष्णु भगवान् का नित्य नियम से पूजन करने वाला पुरुष विपत्तियों को समूलोन्मूलन कर देता है। यह तृतीय

---

१ 'संसृति' इति वा पाठः। २ वृजिनतमसौघ' इति वा पाठः।

तथा चतुर्थ ज्वर को शान्त करने का उपाय है। (और नित्य प्रति बड़े यत्न से नारायण का पूजन करने से दुःखों की कुल को शीघ्र नाश करता है यह तृतीयक तथा चतुर्थक आदि ज्वरों को नाश करने वाली विधि कही है) ॥ ७२—७३ ॥

बलिदानमाह—

प्रविदधीत रवेर्द्दिवसे सुधीरपहृतवक्करे ॥
पुरचत्वेररुचिर मृण्मय कुम्भ कपालके ॥ ७४ ॥
शुचिरनुत्तम धूप सुगन्धिनि पृथुलसूपयुतां कृशरां सुरां।
[1]सतिमिपक्व पलाल कुशोत्पलां पृथुपृथक् विरच्य विभासुरं
[2]शुभंदशं ज्वलेन्दुश्वशिखाधरां कमलकन्दलनिर्मित माल्लिकां ।
घृतभृतं विदधीत प्रदीपिकां सुरभि शोणतरैः करवीरजैः ।
रपिजपाकुसुमैः कृतशेखरोनिशितशस्त्र करस्तुत्तदुद्धरन् ॥७६॥
ज्वरचयार्त्ति हिताय हि योजयेत्[3] ॥ ७७ ॥
प्रगृह्णीष्ववलिं चेमां वाधकस्त्वं महाज्वरः ।
आतुरस्य सुखं सिद्धिं प्रयच्छस्वमहावल ॥ ७८ ॥

बुद्धिमान् वैद्य रविवार के दिन मिट्टी का एक कपाल लेकर नगर के बाहिर चौराहे में रखकर सुगन्धित धूप तथा खिचड़ी बनी हुई, पका हुआ फल रहित काण्ड, कुशा, और कमल सूर्य की धूप में जलती हुई अग्नि को रखकर, कमल कन्द से बनी हुई माला को उस कपाल के ऊपर रखे और घृत का दीपक वहां जलाये तथा सुगन्धि युक्त लाल कनेर के फूल और जपा के फूल रखे और तेज शस्त्र हाथ में धारण कर संचित ज्वर की पीड़ा को जीतने के लिये इस बलि को प्रदान करे और आगे कहा हुआ मन्त्र पढ़े। अर्थात् हे महाज्वर इस उक्त बलि को ग्रहण कर, तू बाधक है आतुर को सुख तथा सिद्धि प्रदान कर हे महाबल ॥ ७४-७८ ॥

तृतीयकादिज्वरे—

हनुमतोपासनाविधि—

हनुमतः स्नपनं प्रणयेत्ततः सततमुतमतैलघटीशतैः ।

१ 'सतिमिपक्वफलं लकुचात्फलं' इति वा पाठः ।
२ 'तदुपरि स्फुरदुच्चशिखाधरं' इति वा पाठः। ३ निवेदयेदिति वा पाठः ।

वरजपाकरवीरभवैर्नवैरविरलं प्रसवैः परिपूजयेत् ॥ ७६ ॥
सुरभिधूप सदन्ननिवेदनात्त्वनुपठे दतिभक्ति परःस्तुति ।
पवनसम्भवसामयसश्चयं प्रबलभूतभयाद हितं जह्वि । ८० ॥

स्तोत्रमाह—

अञ्जनी गर्भ सम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणं ।
दृष्टिदोष विनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम् ॥ ८१ ॥
अञ्जन्या स्तनयः समीरण सुतो यः फाल्गुणीजोद्भवः ।
श्रीराम प्रणयैक धाम बलवान्सत्यप्रतिज्ञानिधिः ।
पिंगाक्षोऽद्भुत विक्रमो जलनिधे रुल्लंघने धीरधीः ।
हेलोत्पाटित शैलशृंग घटित प्रत्यग्र हेतु स्थितिः ॥ ८२ ॥
लङ्काधीश्वर दर्पहा जनकजा शोकान्तकल्लक्ष्मण ।
प्राणत्राण करो जितेन्द्रियगणः स श्री हनूमान्भटः ।
एतैर्नामभिरादरादुषसियैर्निद्रात्त्ययैः कीर्त्तित-॥ ८३ ॥
स्तेषां मुत्तमसिद्धिदः क्षणगतोनित्यस्तृतीयोज्वरः ।

इति हनुमत्स्तुतिः। प्रणिपत्य प्रचुरान्नदानतृप्तंप्रविधायैक कपाल-भञ्जनं कार्यं गृहमागत्य यथासुखं रमेत इति चतुर्थकम् ॥

हनुमान् की मूर्त्ति को सौ तैल के घड़े से स्नान कराये तब निरन्तर प्रणाम करे, सुन्दर, जपा, कनेर के नवीन अर्थात् ताजे फूलों से पूजन करे तथा सुगन्धित धूप और अच्छे अन्न निवेदन करने से तथा अत्यन्त भक्ति युक्त होकर आगे कही स्तुति को पढ़ने से वात युक्त भयंकर रोगों को और अहित जो प्रबल भूतादि का भय उसका नाश करता है। आगे यह स्तुति अर्थात् अञ्जनीगर्भादि का पाठ निरन्तर करना योग्य है इन स्तुति पूर्वक नामों को प्रातःकाल निद्रा को त्याग कर कीर्त्तन करने से उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है तथा तृतीकादि ज्वर क्षणभर में चले जाते हैं।

यह हनुमान् की स्तुति करके तथा विशेष अन्नादि का दान करने से हनुमान् को तृप्त कर प्रणाम करता हुआ पुरुष पूर्वोक्त

---

१ 'मानवदुजंय' इति वा।
२ 'पदो' इति वा।

चौराहे में रखे हुए घट कपाल को तोड़कर अपने गृह में आकर सुख से रहे । इति चतुर्थकज्वरविधिः ।

पञ्चमादिवसभवविषममाह—

अति लीनोऽति मन्दत्वाद् भवत्यहनिपञ्चमे ।
चन्दनं धान्यकं मुस्ता गुडूची विश्वभेषजम् ॥ ८४ ॥
पञ्चाह सम्भवं हन्ति ज्वरं क्वाथो निषेवितः ।

दोषों के धातुओं में अति लीन होने से और अत्यन्त मन्द होने से पांचवें दिन ज्वर होता है । उसमें चन्दन लाल, धनियां, मोथा गिलोय और सुण्ड इनका क्वाथ देने से पांचवें दिन होने वाले ज्वर को नष्ट करता है ॥ ८४ ॥

षष्ठाहमाह—

अतिलीनोरतिश्चातिमन्दा षष्ठेऽह्नि सम्भवः ॥ ८५ ॥
यवासो देवजो दारु शुण्ठी वासासमांशतः ।
क्वाथो निषेवितो हन्ति ज्वरं षष्ठदिनोद्भवम् ॥ ८६ ॥

अतिलीन, अरति अर्थात् मन विकल करने वाला अतिमन्द ज्वर छुठे दिन में होता है उसमें जवासा, देवदारु, सुण्ड, बांसा समभाग लेकर क्वाथ कर पीने से छुठे दिन में होने वाले ज्वर का नाश करता है ॥ ८५-८६ ॥

पिबेत्पर्पटकक्वाथ गुडूच्या वासकस्य च ।
त्रिफला स्वरसं वापि श्लैष्मिके विषमज्वरे ॥ ८७ ॥

पितपापड़ा का काढ़ा और गिलोय और बासे का काढ़ा अथवा त्रिफला का काढ़ा पीने से कफ के विषम ज्वर में हित होता है ॥ ८७ ॥

वातबलासकमाह—

नित्यंमन्द ज्वरोरुक्षः शूनः[1] कृच्छ्रेणासिध्यति ।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्म भूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ८८ ॥
वात बलासमेके तु वदन्ति कुम्भ कामलां ।
कफ वातज्वरे प्रोक्ता क्रिया वात बलासके ॥ ८९ ॥

---

१ 'शूनकस्तेन सीदति' इति वा पाठः ।

नित्यं प्रति मन्द ज्वर हो देह रूक्ष हो जाये तथा शोथ हो, अंग जकड़े जाये कफ अधिक हो वह ज्वर वात तथा कफ से वात-बलासक नाम से कहाता है और कष्ट से सिद्ध होता है कहीं शूनक-स्तेन सीदति' ऐसा भी पाठ है वहां शोथ होने से रोगी अवसन्न होता है। कोई आचार्य अर्थात् गयदास इस ज्वर को 'कुम्भकाम-लारोग विषयक मानते हैं। यह ज्वर वात तथा कफ से आरम्भ होता है परञ्च यहां पित्त का संसर्ग भी जानना चाहिये क्योंकि वात पित होने से ही रूक्षता होती है। 'परञ्च कफ का इसमें नित्य सम्बन्ध होता है ऐसा जेज्जट कहते हैं।' वात कफ ज्वर में जो चिकित्सा कही है वही वात बलासक में हित होती है॥८८-८९॥

प्रलेपकमाह—

आमाशये च सन्धिस्थो दोषः कुर्यात्प्रलेपकं।
प्रलिंपन्निवगात्राणि गौरवेण तपेन वा ॥ ९० ॥
ज्वरो मन्दः सुशीतः स यक्ष्मणि स्यात्प्रलेपकः।
तथा प्रलेपको ज्ञेयः शोषिणां प्राणनाशनः ॥ ९१ ॥
दुश्चिकित्स्यतमोमन्दः स कष्टो धातु शोषकृत्।
प्रयुञ्जीत भिषक् श्लेष्म ज्वरघ्नींतु प्रलेपके ॥ ९२ ॥

आमाशय तथा सन्धियों में स्थित हुआ दोष प्रलेपक ज्वर को करता है उससे गात्र लिप्त हुए की भान्ती गुरुता से अथवा आतप से (घर्म से) रहते हैं हलका २ ज्वर नित्य रहता है शीत प्रतीत होता है वह ज्वर प्रलेपक यक्ष्मा में होता है तथा उसका प्रकोप शोषियों के लिये प्राणनाशक होता है वह कष्ट से चिकित्सा करने योग्य मन्दवेग तथा कष्टसाध्य और धातुओं को सुखाने वाला होता है। वैद्य प्रलेपक में कफनाशक औषधि और ज्वर नाशक औषध का प्रयोग करे तो हित होता है॥ ९०-९२॥

तृणपुष्पकज्वरमाह—

पुष्पेभ्यो गन्धरजसी तेजस्विन्यां यथानिलः।
उपादाय मनुष्यस्य प्राणापानौ नियच्छति ॥ ९३ ॥
सौक्ष्म्यादनुष्टितो धातून्मन्दानपिचतेजसा।
कर्म चित्तं बलं ज्ञानं सन्निरुध्याशुमारुतः ॥ ९४ ॥

कर्म्मादिषु निरुद्धेषु स्वपितीह सुहृज्जनः ।
मन्यते हृदि कृत्वादौ तेजस्यपहृते सति ॥ ६५ ॥
तस्यादितः शिरोरोगः स संज्ञस्यैव जायते ।
विदग्ध विद्कासं स सुगन्धं च मूर्च्छति ॥ ६६ ॥
तृणपुष्पक मित्येवं ज्वरं विद्याद्विचक्षणः ।

इति तृणपुष्पकः ।

प्रातःकाल फूलों से जैसे वायु—(पुष्प नक्षत्र में जब वायु तेज) गन्ध युक्त रज को लाकर मनुष्य के प्राण तथा अपान में मिला देता है, सूक्ष्म होने से (स्थित होकर धातुओं को और अग्नि को मन्द करके) तेज से मन्द भी धातुओं के पीछे स्थित हुआ वायु कर्म, मन, बल और ज्ञान को रोककर ठहरता है । कर्मादियों के रुक जाने पर अच्छे हृदय वाला मनुष्य सोता है, और तेज के नष्ट होने पर सोने से पूर्व ही अपने हृदय में ज्वर को मानता है, क्योंकि उसकी आदि में चैतन्य होते ही उस रोगी के शिर में रोग हो जाता है । अतः चतुर मनुष्य पित्ताधिक्य से जले हुए मल, कास, सुगन्धादि चिन्हों से तृण पुष्पक ज्वर को जाने । (हृदय को मानता हुआ तेज के दूर होने पर तो उसको आरम्भ में संज्ञा युक्त होने पर भी शिरोरोग हो जाता है और अन्न विदग्ध होता है द्वेष की इच्छा से खांसता हुआ सुगन्धि को प्राप्त हो मूर्च्छा से युक्त होता है उस ज्वर को बुद्धिमान् वैद्य तृणपुष्पक नाम वाला जाने) ।

ओजो निरोधजमाह—

ओजो विस्रंसते यस्य पित्तानिल समुच्छ्रयात् ॥ ९७ ॥
सगात्रस्तब्धशीताभ्यां शयनेऽपुरचेतनः ॥ ९८ ॥
अपि जाग्रत्स्वपञ्जन्तु स्तन्द्रालस्य प्रलापवान् ।
संहृष्ट रोमा सस्ताङ्गो मन्द सन्तापवेदनः ॥९९॥
ओजोनिरोधजं विद्यात्तं ज्वरं भिष गुत्तमः ।

जिस पुरुष की ओज का विस्रंसन पित्त तथा वायु के बढ़ जाने से हो जाये वह गात्रों के स्तब्ध तथा शीत होने से सोने में मनुष्य चेतन होने पर भी जागता हुआ और सोता हुआ तन्द्रा, आलस्य और प्रलाप युक्त होता है रोमाञ्च होते हैं अंग ढीले ताप मन्द और

पीड़ा भी मन्द होती है उसे उत्तम वैद्य ओजो निरोधज ज्वर जाने।

वक्ष्यामि विविधान्योगान् विषमज्वरनाशनान्।
प्रयोक्तव्या मतिमतां दोषादीन् प्रविभज्य च ॥ १०० ॥
वातप्रधानं विषमं सर्पिभिः सानुवासनैः।
स्निग्धैस्तदनुपानैश्च शमये द्विषमज्वरान् ॥ १ ॥
विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च।
विषमं तिक्त शीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ॥ २ ॥
वमनं पाचनं रूक्षमन्नपानं विलंघनं।
कषायोष्णं च विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ ३ ॥

विषमज्वर के नाश करने वाले अनेक प्रकार के योगों को कहता हूं जो बुद्धिमान् वैद्य को दोषादियों के भेद को जानकर प्रयोग करने चाहिये। स्नेह युक्त अन्न तथा पानों से और घृत तथा अनुवासन बस्ति से वातप्रधान विषमज्वर को शान्त करे। विरेचन से दुग्ध से और औषधियों से संस्कृत किये हुए घृत से तिक्तरस वाली औषधियों से तथा शीत द्रव्यों से पित्त प्रधान विषम ज्वर को जीते। वमन, पाचन तथा रूक्ष अन्न पान से विशेष लंघन करा कर कषाय रस वाली औषध तथा उष्ण द्रव्यों को देकर कफोत्तर ज्वर को शान्त करे ॥ १००-३ ॥

पटोल कटुका मुस्ता विजया कटुकैः कृतः।
त्रिः चतुस्क षट् क्वाथाः विषमज्वर नाशनाः ॥ ४ ॥
प्रयोक्तव्यामतिमता दोषादीन् प्रविभज्य च।
जयापटोलमधुकं मुस्तातिक्तापटोलकम् ॥ ५ ॥
मुस्तापटोलमभया अभयामधुकं घनं।
अभया कटुका मोघा यष्टिचैवस रोहिणी ॥ ६ ॥
पथ्यायष्टी सकटुका पथ्यायष्टी पटोलकं।
दशैते त्रिक् संयोगाः विषमज्वरनाशनाः ॥ ७ ॥

परवलपत्र, कुटकी, मोथा, हरड़, कौड़ इनसे किया हुआ काढ़ा तथा तीन,चार,वा छः औषधियों के जो काथ कहे जांयगे वह विषम ज्वर को नाश करने वाले हैं। बुद्धिमान् वैद्य को दोषों का विभाग

करके प्रयोग करना चाहिये। हरड़, परवल, मुलहठी तथा मोथा कुटकी परवल, मोथा परवल हरड़, हरड़, मुलहठी मोथा, हरड़ कुटकी विडंग, मुलठी, विडंग कुटकी, हरड़ मुलठी, हरड़ मुलठी परवल, यह दश योग तीन औषधियों के संयोग से विषमज्वर के नाशक कहे हैं ॥ ४—७ ॥

मुस्तं पटोल मधुकं मधुकं सतिक्ता ऽभयामुस्तपटोलकानि।
पटोलपथ्यामधुका मुस्त पटोलपथ्या कटुकी सयष्टी ॥ ८ ॥
पयोदपथ्या कटुकसयष्टयः चतुष्कयोगो विषमज्वरघ्नः।
तिक्ताभया मेघपटोलयष्ट्या पञ्चात्मकोऽयं विषमे प्रदिष्टः।

मोथा, परवल पत्र, मुलहठी, कुटकी यह एक योग, कुटकी, हरड़, मोथा, परवल यह दूसरा, परवल, हरड़, मुलठी, मोथा, यह तीसरा परवल, हरड़, कुटकी, मुलहठी, मोथा, हरड़, कौड़ मुलठी यह चार द्रव्यों के योग विषमज्वरनाशक कहे हैं तथा परवल, मोथा, कुटकी, हरड़, मुलठी यह पांचों औषधियों का पञ्चात्म संज्ञक योग भी विषम ज्वरों में लाभदायक कहा है ॥ ८ ॥

द्रोण पुष्पी जटां चुर्णां निष्काथ प्रपिवन्पुमान्।
उमापतिमनुध्यान्मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ९ ॥
विश्वाब्दामलकच्छिन्ना क्षुद्रा कृष्णा समाक्षिका।
विषमज्वर हृत्काथो यद्वा छिन्नावरा वृषैः ॥ १० ॥

पञ्चसारमाह—

मधुः सर्पिः सिता कृष्णा शृतः क्षीर विलोडितः।
पिवेत् खजेन मथितं पञ्चसार मिति स्मृतम् ॥ ११ ॥
विषम ज्वर हृद्रोग श्वास कास क्षयापहः।

पिप्पलिवर्द्धमानमाह—

त्रिपञ्च सप्तमगताः प्रपक्व पयसा सह ॥ १२ ॥
पिवेत् वृद्ध्याक्रमात्क्षीतं पित्तवात कफामयी।
यावत्पूर्ण शतं तत्स्यात् ततश्चैवापकर्षयेत् ॥ १३ ॥
वातास्रश्वासपाण्डुवर्शो गुल्म शोथोदरापहम्।
विषमज्वरेषु तद्वृष्यं पिप्पली वर्द्धमानकं ॥ १४ ॥

द्रोणपुष्पी (गोमा) की जड़ लेकर उसे कूट काढ़ा कर के पीने वाला व्यक्ति महादेव को मन में स्मरण करता हुआ विषमज्वर से मुक्त हो जाता है।

सुण्ड, नागरमोथा, आंवला, गिलोय, छोटी कटेरी, मद्य इन को समान भाग लेकर काढ़ा करके मधु मिलाय पीवे तो विषम ज्वर को हरता है अथवा गिलोय, त्रिफला और बांसा से किया काढ़ा भी विषमज्वर को हरता है।

शहत तथा घृत मिश्री इनसे पिपली चूर्ण दुग्ध यह पञ्चसार कहाता है इसको मथकर सेवन करना चाहिये। इसके सेवन करने से विषमज्वर हृद्रोग, श्वास, और क्षय को नाश करता है।

वर्द्धमान पिप्पली का प्रयोग कहते हैं। यथा—

वर्द्धमान पिप्पली सेवन करने के लिये पहिले दिन तीन दूसरे दिन पांच तीसरे दिन सात चौथे दिन दश पिप्पली दुग्ध के साथ खाये इसी प्रकार घटाता जाये तो पित्त कफ और वातरोगी जब तक सौ पिप्पली तक संख्या न हो जाये सेवन करे और फिर इसे घटाये तो वातरक्त, श्वास, पाण्डुरोग, बवासीर, गुल्म, शोथ और उदर रोगों को नष्ट करती है विषमज्वरों में वह वृष होती है यह पिप्पली वर्द्धमान की विधि है॥ ६-१४॥

अक्षधात्र्यभयाहन्ति त्रिफला विषमज्वरम्।
गुड़ेन सहिता क्कापि क्कापि दुग्धेनसंयुता॥ १५॥
स तैलं लशुनं वात विषम ज्वर नाशनम्।
रसोन बीजं सन्ध्यायां तैलमध्ये विनिक्षिपेत्॥ १६॥
प्रभाते घृत संयुक्तं सेवितं ज्वर वातनुत्।
पयसा वृष दंशस्य शकृद्वेगागमे पिबेत्॥ १७॥
गोमयोत्थरसोपेतं पयो वाप्यथ विश्वयुक्।
पक्कपीतमजाक्षीरं विषम ज्वर नाशनम्॥ १८॥
सगुड़ं जीरकं खादेदभयां वा गुडान्विताम्।
गुडूचीमुस्तधात्रीणां क्काथो विषमं जयेत्॥ १९॥

बहेड़ा, आंवला, हरड़, यह त्रिफला कहीं गुड के साथ कहीं दूंध के साथ सेवन किया हुआ विषमज्वर का नाश करता है।

तैल युक्त लशुन सेवन करने से वात को तथा विषमज्वर को नष्ट करता है। लशुन की गिरियों को सायंकाल तैल में रख छोड़े और प्रातःकाल घृत से युक्त करके खाने से विषमज्वर को नाश करता है। दुग्ध के साथ बिल्ली के मल को ज्वर आने के समय पीवे तो विषमज्वर में हित होता है अथवा गोबर से निकाला हुआ रस सुण्ड के साथ अथवा दुग्ध के साथ सुण्ड सेवन करना भी हित होता है। पका हुआ बकरी का दूध पीने से विषमज्वर का नाश करता है गुड के साथ सफेद जीरा अथवा गुड के साथ हरड़ सेवन करने से तथा गिलोय, मोथा, आंवले इनका काढ़ा विषमज्वर को जीतता है॥ १५-१६॥

विषमज्वरेऽञ्जनम्—

सैन्धवं पिप्पलीनां च तण्डुलाः समनः शिलाः।
नेत्राञ्जने तैलपिष्टं शस्यते विषम ज्वरे॥ २०॥

लेपः—

चीर पाठा जटाहस्ते बद्धा सर्व ज्वरा पहा।
सहदेवी वचा भद्रानाकुलीभिः प्रलेपनम्॥ २१॥
प्रदेहोद्वर्त्तनं कुर्यादेभिर्वा विषमापहं।

धूपः—

निंबपत्र वचा कुष्ठं पथ्या सिद्धार्थकं घृतं॥ २२॥
विषम ज्वरनाशाय गुग्गुलुश्चेति धूपनं।

लवण, पिपली के चावल तथा मनसिल इनको तैल में पीसकर अञ्जन करने से विषमज्वर शान्त होता है।

पाठे की जड़ को कपड़े में बांधने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं। सहदेवी, वच, कठूमर, न्योलीघुटी इनसे लेप वा उबटना बनाकर प्रयोग कराने से विषमज्वर को हरता है। निम्बपत्र, वच, कुठ, हरड़, सरसों, घृत तथा गुग्गुलु मिलाकर धूप देने से विषम ज्वर के नाश के लिये हित है॥ २०-२२॥

ज्वर वेगं च कालं च चिन्तयञ्ज्वरितस्य यः॥ २३॥
तस्येष्टैरद्भुतैर्वापि विषमे नाशयेत्स्मृतिं।
निर्विषै सर्पनागैर्विनीतैः कृत तस्करैः॥ २४॥

त्रासयेदागमे चैन मनर्ह भोजनेन च ।
सततं विषमं चापि क्षीणस्य तु चिरोत्थितम् ॥ २५ ॥
ज्वरं सुभोजनैः पथ्यैर्ज्वरघ्नैस्समुपाचरेत् ।
ज्वराः कषायैर्वमनै लंघनैर्लघु भोजनैः ॥ २६ ॥
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग् जितम् ।

ज्वर के वेग को और उसके काल को चिन्ता करने वाला ज्वर वाले व्यक्ति के हित पदार्थों से अथवा आश्चर्यजनक द्रव्यों से विषमज्वर में स्मृति का नाश करे। यथा बिना विष वाले सर्पों से तथा बड़े नम्र हाथियों द्वारा और बनावटी चोटों द्वारा विषम ज्वर वाले को वेग के आगम में (अर्थात् जिस समय वेग आता हो उसे डराये पुनः उसे अयुक्त भोजन सामने रखकर भय दे। निरन्तर विषमज्वर से जो क्षीण व्यक्ति हो तथा चिरकाल से विषम ज्वर हो तो उसे उत्तम भोजन तथा पथ्य और ज्वरनाशक भोजनों से चिकित्सा करे।

जो ज्वर काढ़ों से वमन देने से, लंघन कराने से हलके पथ्यादि देने से शान्त न हो तो ऐसे रुक्ष व्यक्तियों के लिये घृत प्रयोग करना हित होता है ॥ २३-२६ ॥

षट्पलादिघृतमाह—

शुण्ठी कणा चित्रकं च चव्य ग्रन्थिक मेव च ॥ २७ ॥
कुर्यात्पंच पलान्भागाने कैकस्य तु कुट्टितान् ।
जलद्रोणे सुपक्वव्यं यावत्पादाव शोषितम् ॥ २८ ॥
एतै स्तुपलकैः कल्कैः सैन्धवेन समन्वितैः ॥
षट्पलं नाम विज्ञेयं विषम ज्वरनाशनम् ॥ २९ ॥
स श्वासाग्नि वैषम्यं घृतमेनं व्यपोहति ।

सुण्ड, पिप्पली, चित्रक, चव्य, पिपलामूल इन द्रव्यों के पांच पल भागों को लेकर भिन्न २ कूटना तथा उसमें १६ सेर जल डाल कर पकाना जब शेष ४ सेर रह जाये तो उसमें १ सेर घृत और उक्त औषधियों का कल्क एक २ पल और सैन्धव एक पल डाल कर सब को एकत्रित कर सिद्ध करना तो इसका षट्पलघृत नाम है इसके सेवन करने से विषमज्वर नाश होता है तथा श्वास, अग्निमान्द्य इन रोगों का यह घृतनाशक है ॥ २७-२९ ॥

चन्दनादिघृतम्—

चन्दनं चित्रकं सिंही वत्सकं मुस्त नागरम् ॥ ३० ॥
कटुका त्रायमाणा च धात्र्युशीरे द्विसारिवे ।
द्रव्यार्धं पलमात्राणि सौम्य वारे च संहरेत् ॥ ३१ ॥
क्षीराढकेन संयुक्तं सर्पिषोर्द्ध तुलां पचेत् ।
चातुर्थिकं हरत्येतदुन्मादं विषमज्वरम् ॥ ३२ ॥
त्र्याहिकं श्वास कासौ च सर्वापस्मारभेदनम् ।

रक्तचन्दन, चित्रक, कटेरी, कुड़ासक्, मोथा, सुण्ड, कुटकी, त्रायमाणा आंवला, खस, दोनों सारिवा इन द्रव्यों का आधा २ पल सोम्यवार में अर्थात् शनि मंगल आदि वार छोड़ कर इकट्ठा करें और इसमें ४ सेर दुग्ध और घृत ॥ २ ॥
सेर डालकर पकावे तो इसके सेवन से चातुर्थक ज्वर, उन्माद तथा विषमज्वर तृतीयकज्वर, श्वास, कास और सब प्रकार के अपस्मार का नाश करता है ॥ ३०—३२ ॥

महाषट्कट्वरतैलमाह—

शुक्तारनालैर्दधिमस्तु तक्रैःफलाम्लभागेन समं हि तैलं ।
कृष्णादि कल्कैर्मृदुवह्नि सिद्धमभ्यञ्जनं वात कफ ज्वराणाम् ।३३॥
एकाहिकाद्वित्रि चतुर्थकानां मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम् ।
निवारणं तद्विषमज्वराणां तैलन्तु षट कट्वरकं महत्स्यात् ॥३४॥

सिरका, कांजि, दधि, दही का पानी और तक्र तथा अम्ल फलों के जल से (अर्थात् मातुलुङ्ग दाडिम रस से) बराबर सिद्ध किया तैल जिसमें कृष्णादिगण (अर्थात् पिपली, चित्रक, वच, बांसा, हलदी, मोथा, पिपलामूल, इलाची, अतिविषा (अतीस) रेणुका. त्रिकटु, अजवायन, मुनक्का, कटेरी, चिरायता, विल्व, रक्तचन्दन, भार्गी, तिरवी, हरड़, आंवला, पृष्टपर्णी, मूर्वा, सफेद जीरा, सरसों, हींग, कुटकी, विडंग यह सब द्रव्य कृष्णादिगण के हैं) इनका कल्क डालकर हलकी अग्नि से सिद्ध करके मालिश करनी चाहिए। वातकफ ज्वरों को तथा एकाहिक अन्येद्युष्क, तृतीयक, चतुर्थक आदियों को और एक महीने में होने वाले पाक्षिक ज्वर को दो मास में होने वालों को तथा विषमज्वरों को नष्ट करने वाला यह महाषट्कट्वरतैल होता है ॥ ३३—३४ ॥

रसप्रयोगानाह—

पुरा वातज्वरे प्रोक्तः शीतभञ्जी रसोहियः ।
समाषं प्रमितो देयो नाग वल्लीदलान्वितः । ३५ ॥
एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं चातुर्थकं ।
विषमं वा त्रिदोषं वा ज्वरंहन्ति नसंशयः ॥ ३६ ॥

पहिले जो वातज्वर में शीतभञ्जी रस कहा है वह एक मासा मात्रा से पान के रस में दिया हुआ एकाहिकादि ज्वरों का नाश करता है ॥ ३५—३६ ॥

महाज्वराङ्कुश रसः—

शुद्धं सूतं विषं गन्धं धूर्त बीजं त्रिभिः समं ।
सर्वतो द्विगुणं व्योषं मर्दनं वीरक द्रवैः ॥ ३७ ॥
दद्याद्द्विगुञ्ज मात्रेण ज्वर नाम महाङ्कुशं ।
एकाहिकादींश्च पूर्वोक्तान् ज्वरान् शीघ्रं विनाशयेत् ॥३८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक इन तीनों के बराबर शुद्ध धतूरे के बीज तथा सबसे दूने मघां मिरचां सुण्ड मिलाकर सफेद कनेर के रस में मर्दन करके दो रत्ति की गोली बनाकर यह महा-ज्वराङ्कुश नामक रस पहिले कहे हुए एकाहिकादि ज्वरों का शीघ्र नाश करता है ॥ ३७—३८ ॥

इति ज्वरतिमिरभास्करे सततादि ज्वर प्रभेदो नाम नवमोऽध्यायः।

अथ दशमोऽध्यायः ।

अथातः शीताद्याज्वराये च स्युः द्वन्द्व दोषजाः ।
विषमास्तेपि विज्ञेयाः तेषां भेदान्पृथक् शृणु ॥ १ ॥

ये पूर्व जन्मसुजनाः पिशुनः नृशंसाः
संसारिणस्तइह दुःख जुषो भवन्ति ।
शीतज्वरेण च भृशं परि बाध्यमाना
नाना विधां जगति दुर्गतिमाप्नुवन्ति ॥२॥

बलासो वायुना युक्तः शीतादीन्षडहेज्वरान् ।

जनयेन्नयनस्रावं हृत्पीडां मधुरास्यताम् ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर शीत पूर्वक ज्वर जो कहे हैं। वे प्रायः दो दोषों से होते हैं उनको भी विषम ही जानना चाहिये उनके भिन्न २ भेदों को सुनो। जो लोग पूर्वजन्म में एक दूसरे में लड़ाई कराते है तथा जो नरघातक होते हैं वे इस जन्म में आकर दुःख भोगने वाले होते हैं और वे शीतज्वरादियों से अत्यन्त पीड़ित होते हुए जगत् में नाना प्रकार की दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

कफ वायु से मिलकर शीत ज्वरों को छठे दिन पैदा कर देता है और आंखों से जल बहता है, हृदय में पीड़ा तथा मुख मीठा होता है ॥ १—३ ॥

चिकित्सामाह—

गर्भभूवेश्म शयनं कुथ कम्बलरल्लकान् ।
निर्धूमदीप्ते रङ्गारे र्हसन्तिश्च हसन्तिका ॥ ४ ॥
धात्र्यक्षारिष्ट तिक्ताभिः शिव वर्म्म मसूरिभिः ।
क्वाथः शीतज्वरंहन्ति एकाद्वित्रि चतुर्थकम् ॥ ५ ॥
द्रोण पुष्पीरसः पीतः पयसा शीतमुल्वणं ।
हरेन्माक्षिक संयुक्तो वार्त्ताक स्वरसोऽथवा ॥ ६ ॥
मधुकं नाग लतागुरु पीतं मधु मधु युग्घरति प्रसह्यहि ।
गदहरं मधुदूर्विकागुडूची सहचर शक्रयवोग्निशैर्यकं वा ॥७॥

गर्भेति—शीतज्वर पीड़ित व्यक्ति को मकान के भीतर जहां वायु न पहुंच सके वहां कुशादि घास बिछा कर उसके ऊपर नीचे कम्बल दे सुला देना और उसके पास बिना धूम जलते हुए कोयलों की अंगीठीको रखना ऐसा करने से उसका शीत शान्त होजायेगा।

आंवला, बहेड़ा, निंबपत्र, कुटकी, वांसा, पित्तपापड़ा, मसूर इनके काथ को पीने से शीत ज्वर तथा एकाहिकादि ज्वर शान्त होते हैं ॥

द्रोण पुष्पी (अर्थात् गोमा) के रस को दुग्ध के साथ पीने से अथवा वताऊं के रस को मधु के साथ पीने से शीत ज्वर दूर होता है

मुलठी, पान की जड़, अगरु, महुआ इनका क्वाथ मधु सहित शीघ्र ही शीत ज्वर को हरता है तथा शहत, दूब, गिलोय, वांसा, इन्द्रजौं, चित्रक, झिएठी इनका क्वाथ पीने से ज्वर दूर होता है ४—७

क्षुद्राधान्यकशुण्ठीभिगुडूचीमुस्तपद्मकैः ।
रक्त चन्दन भूनिम्ब पटोल वृष पौष्करैः ॥ ८ ॥
कटुकेन्द्रयवाऽरिष्ट भार्गी पर्पटकैःसमैः ।
सिद्धः क्वाथो हरेदाशु शीतज्वर व्यथां भृशम् ॥ ९ ॥
एला जातिफले व्योष त्रिफला जीरकं घनं ।
स विड़गं सितायुक्तं चूर्ण शीतज्वरापहम् ॥ १० ॥
श्वेतास्यकाकजंघायाः पञ्चांगस्य प्रदीयते ।
वातशीतज्वरं हन्ति क्वाथ स्तन्मूलजोऽथवा ॥ ११ ॥

कटेरी, धनियां, सुण्ड, गिलोय मोथा, पद्माख, लालचन्दन, चिरायता, परवल, बांसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजौ निम्ब, भार्गी, पित्तपापड़ा इनको बराबर लेकर क्वाथ बना पीने से शीघ्र शीत ज्वर को हरता है इलायची, जायफल, त्रिकुटा, त्रिफला, जीरा, मोथा, विडंग मिश्री इन सब का चूर्ण कर खाने से शीतज्वर को दूर करता है ।

सफेद काकजंघा का पञ्चांग (अर्थात् फल, फूल, पत्ता, शाखा तथा मूल इन) का काथ अथवा केवल जड़ का काथ वात ज्वर तथा शीतज्वर का नाश करता है ॥ ८—११ ॥

कायस्था नाकुली तिक्ता पयस्यापुर चोरकैः ।
सहदेवी वचा कुष्ट लवण क्षारसंयुतैः ॥ १२ ॥
साम्लैर्विपाचितं तैलमभ्यंगाच्छीतनाशनम् ।

हरीतकी, नाकुली, कुटकी क्षीरकाकोली, गुगुलुः ग्रन्थिपर्ण सहदेवी, वच कुठ, लवण, जौ खार, इनद्रव्यों में कांजी मिला कर तैल पाक करने से मालिश करे तो शीतज्वर का नाश होता है ॥ १२ ॥

शीतज्वरस्य सुरसार्जकाशिग्रुपत्र-
लेपः कवोष्ण सलिलै प्रशमायशस्तः ।
तुषाम्बु सुरभिजलमस्तु सूक्तै—
रभ्यञ्जनं लवण पुंगव सूक्ततैलैः १३ ॥

शीतज्वर के लिये, लालतुलसी, वनतुलसी, सुहांजने के पत्तों

का लेप थोडे गरम पानी के साथ करने से हित होता है। तुषों का जल गो मूत्र, दधि का पानी, सिरका, लवण तैल पकाकर मालिश करने से हित होता है ॥ १३ ॥

शीतज्वरे शिलातैल लेपनं परमौषधं ।
हिंगु सैन्धव संयुक्तं देयं शीतज्वरापहम् ॥ १४ ॥

तिल का तैल तथा शिला (अर्थात् मनसिल) सिद्धकर लेप करने से शीतज्वर में उत्तम औषध है। हींग लवण मिलाकर देने से शीतज्वर को हरती है ॥ १४ ॥

अथ शीतादिरसः—

रसगन्ध शिलातालं ताम्रमेकत्र निर्मितं ।
पुटेन पाचयेच्चारु कारवेल्ली रसै रपि ॥ १५ ॥
भावयेद् बटनीरेण सप्तकृत्वा तु तद्रसः ।
शीतज्वरं हरेत्तर्ण मरिचं सुरसा रसैः ॥ १६ ॥

पारा, गन्धक, मनशिल, हरिताल, ताम्र यह सब द्रव्य शुद्ध लेकर पीस एक सम्पुट में रख भली प्रकार अग्नि में रख पुट दे पीछे निकाल कर करेला तथा बटजटा के क्वाथ से सात वार भावना दे तो यह रस तुलसी का रस मरिच का चूर्ण मिलाकर देने से शीघ्र ही शीतज्वर को हरे ॥ १५-१६ ॥

निम्बजैपालजैर्वीजैर्व्योषाम्ल लशुनैः समैः ।
कारवेल्ली रसैर्भाव्यं नस्याच्छीतज्वरान् हरेत् ॥ १७ ॥
मरिचं सप्तधाभाव्यं कारवेल्ली रसैर्प्लुतं ।
तेन नेत्राञ्जनाद्याति शीघ्रं शीत भवोज्वरः ॥ १८ ॥

निंब के बीज, जमालगोटे के बीज, मघ, मिरचां, सुण्ड, अम्ल-वेतस लहसन इन सब को बराबर लेकर करेले के रस की भावना देकर नस्य देने से शीत ज्वरों को हरे है ॥

मरिच को करेले के रस की सात भावना देकर अञ्जन करे तो शीत से होने वाला ज्वर शीघ्र शान्त हो जाता है ॥ १७-१८ ॥

सहस्रसंख्यैः कलशैः सुतीर्थ तोयैः पूर्णैस्तर्पयेन्मुरारिम् ।
अभ्यर्चयेच्चन्दन पुष्पधूप दीपैः शुभैर्ब्राह्मण भोजनैश्च ॥१९॥
जप्त्वाथ जातवेदस मष्टाधिक मयुत मालये विष्णोः ।

हुत्वा च तद्दशांशं शीतज्वरतो विमुच्यते जन्तुः ॥२०॥
महेशमेव मभ्यर्च्य मुच्यतेऽपि महागदात् ।
आधयस्तं न बाधन्ते व्याधयः कल्प साधनात् ॥ २१ ॥

हजार कलशों को उत्तम तीर्थ के जल से भरकर मुरारि (अर्थात् विष्णु) का तर्पण करे तथा चन्दन पुष्प धूप दीप आदिओं से पूजन करे और ब्राह्मण भोजन कराकर भगवान् को प्रसन्न करे। इसके अनन्तर विष्णु के मन्दिर में दस हज़ार आठ जातवेदस (अर्थात् अग्नि विष्णु) का जप करके उससे दशमांश हवन करे तो मनुष्य शीतज्वर से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार महादेव के मन्दिर में शंकर पूजन करके महारोगों से मुक्त हो जाता है तथा उसे आधि व्याधि बाधा नहीं देती उक्त विधि के साधन करने से नीरोग हो जाता है ॥ १९—२१ ॥

दाहज्वरमाह—

यः सत्फलेषु शुभकर्मसु कोपनः स्यात्-
तस्यानिल प्रभृतयस्सुभवन्ति देहे ।
दाह ज्वर स्तमपहर्तु मलं तदंगात्
गंगाधरांघ्रियुग पूजनजः प्रसादात् ॥ २२ ॥

जो पुरुष अच्छे फल देने वाले शुभ कर्म में क्रोध करता है उस के देह में वातादि दोष बढ़कर दाहज्वर को कर देते हैं। उस दाह ज्वर के दोष को निकालने के लिये गंगाधर शिव के दोनों चरणों की पूजा नित्यं प्रति करे ॥ २२ ॥

अन्यत्र सन्निपातोत्थं पित्तं यत्र पृथक् स्थितं ।
त्वचि कोष्ठेऽथवादाहं विदधाति पुरोतिगं ॥ २३ ॥
यो वर्णितः पित्तहरो दोषोपक्रमणे क्रमः ।
तं च शीलयतः शीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः ॥ २४ ॥
स्वादु स्तिक्तं कषायानां क्वाथं स्यात्सर्पपायुतैः ।
सुशीतैः शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धं दाह मेवच ॥ २५ ॥
तथारनाल सलिलै क्षीर शुक्त घृतादिभिः ।
कपित्थमातुलुंगाम्ल विदारी रोध्र दाडिमैः ॥ २६ ॥

बदरी पल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य वा ।
लिप्तेऽङ्गे दाहरुङ्मोह छर्दिस्तृष्णाप्रशाम्यति ॥ २७ ॥

सन्निपात से भिन्न जहां पित्त पृथक् त्वचा में कोष्ठ में ठहरकर दाह को करता है । उसमें जो पित्त के हरने वाला क्रम पहिले वर्णन किया है उसी को वर्ताव में लाने से शीघ्र ही दाहज्वर शान्त हो जाता है । स्वादु और तिक्त कषाय रस युक्त द्रव्यों के काथ में सरसों मिलाकर ठण्डे करके पीने से बढ़ी हुई तृष्णा को और ज्वर को शान्त कर देता है । कांजी का पानी दुग्ध, सिरका, घृत, कैथा, बिजौरा, विदारीकन्द, लोध, अनारदाना, वेर के पत्तों की तथा रीठे की झाग आदि से अंगों को लेप करने पर दाह, पीड़ा, मूर्छा, छर्दि, तृष्णा आदि शान्त हो जाते हैं ॥ २३–२७ ॥

दाहे सहस्रधौतेन सर्पिषाभ्यंगमाचरेत् ।
सिताज्य मधुखर्जूर मृद्वीकाभिः शृतं पयः ॥ २८ ॥
शीतं मधुयुतं पीतं तृड् दाह ज्वरनाशनं ।
देवदारु नागरं च धान्यकं बृहती द्वयम् ॥ २९ ॥
एतत्क्वाथस्य पानेन याति दाहज्वरः शमम् ।

दाह होने पर हजार बार धोये हुए घृत की मालिश करे । मिश्री, घृत, मधु, खजूर, मुनका आदि से पका हुआ दूध ठंडाकर मधु सहित पीने से तृष्णादाह और ज्वर का नाश करता है । देव· दारु, सुण्ड, धनियां, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी इनका क्काथ पीने से दाहज्वर शान्त होता है ॥ २८–२९ ॥

धान्यकं चतु, क्षीरस्य द्विगुणं च जलं तथा ॥ ३० ॥
क्वाथं क्षीरावशेषं च पाययेच्चसशर्करं ।
उष्ण ज्वरं निहन्त्याशु मन्दाग्निं विषम ज्वरम् ॥ ३१ ॥
हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशांक कर शीतले ।
मलयोदक संसिक्ते सुप्याद्दाह विनाशनम् ॥ ३२ ॥
नाभौ चोत्तान सुप्तस्य धृत कांस्यादि भाजने ।
शीताम्बु बहला धारा पतन्तीदाह नाशिनी ॥

धनिये से चार गुणा दुग्ध दो गुणा जल मिलाकर क्वाथ करे

और दूध शेष रहने पर शक्कर मिलाकर पीवे तो गरम ज्वर को अर्थात् दाहज्वर, मन्दाग्नि, तथा विषमज्वरों को शीघ्र ही नष्ट करता है।

बड़े ऊंचे महल पर जहां निर्मल आकाश हो और जो चन्द्रमा की किरणों से शीतल हुआ हो ऐसे मकान पर सुन्दर कोमल शय्या बिछावे जिस पर चन्दन छिड़का हो उस पर सोने से दाह शान्त हो जाता है। सीधे सोये हुए पुरुष की नाभी पर कांसे का पात्र रखकर ठण्डे जल की धारा डालते जाने से वह धारा दाह को शान्त कर देती है॥ ३०—३२॥

शीतादिज्वरमाह—

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च॥ ३३॥

त्वचा में स्थित हुए कफ और वायु ज्वर में पहिले शीत अर्थात् कंप और ठण्डापन पैदा करते हैं इन दोनों के शान्त हो जाने पर अन्त में पित्त कुपित हो दाह को करता है॥ ३३॥

चिकित्सामाह—

पटोल कटुका पथ्या यष्टयाह्वैः साधितं जलं।
शीत दाह ज्वरं हन्ति बटच्छिन्ना वृषः रसः॥ ३४॥

परवल, कुटकी, हरड़, मुलठी से सिद्ध काथ शीत पूर्वक ज्वर को हरता है इसी भान्ति वट की जटा, गिलोय, वासा इनका रस अर्थात् काथ भी शीत दाहज्वर को हरता है॥ ३४॥

दाहादिज्वरमाह—

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थंदाह मतीवचः।
तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः॥ ३५॥

चिकित्सामाह—

दाहशीत ज्वरं हन्ति सिता तिक्तांबुकल्पितः।
पटोलधान्ययोः क्वाथः सगुड़ो ह्यमृता रसः॥ ३६॥

वैसे ही त्वचा में स्थित हुआ २ पित्त अत्यन्त दाह को करता है उसके शान्त होने पर 'इतर' अर्थात् कफ और वायु अन्त में शीत कर देते है।

मिश्री, कुटकी, मोथा, परवल, धनिया, इनका काढ़ा तथा

गिलोय का रस गुड सहित सेवन किया हुआ दाह शीत ज्वर को हरता है ॥ ३५-३६ ॥

नृसिंहज्वरमाह—

यस्योर्ध्वगं रक्तपित्तं मध्ये वात कफौ ततः ।
ऊर्ध्वे दाह मधः शीतं स्यान्नृसिंहशरीरवत् ॥ ३७ ॥
वृषा वर्म्मा मृतादारु रास्नैरण्ड कषायकः ।
ऊर्ध्वोष्णमधः शीतं ज्वरं पीतो व्यपोहति ॥ ३८ ॥

जिस व्यक्ति का रक्त पित्त से दूषित होकर ऊपर चला जाये और देह के मध्य भाग में वात और कफ कुपित होकर ठहरें तो उसका ऊपर का भाग उष्ण और नीचे के भाग ठण्डा हो अर्थात् नृसिंह की तरह होता है ।

बांसा, पित्तपापड़ा, गिलोय, देवदारु, रासना, एरण्डमूल इनका काढ़ा ऊपर दाह और नीचे शीत वाले ज्वर का नाश करता है ।

अर्द्धनारीश्वरज्वरमाह—

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ।
अर्धं शीतं चार्धमुष्णं मर्द्धनारीश्वराकृतिः ॥ ३९ ॥

तस्यैवरूपान्तरमाह—

कायेदुष्टं यदापित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ।
उष्णत्वं तेन देहस्य शीतत्वं करपादयोः ॥ ४० ॥
पित्तज्वरोक्तं द्राक्षादि क्वाथं तत्प्रतियोजयेत् ।

अन्न रस के देह में विदग्ध हो जाने पर तथा कफपित्त के कुपित होने पर आधा देह ठण्डा और आधा उष्ण होता है जैसे मस्तक से लेकर पैर तक एक तरफ ज्वर हो दूसरी ओर शीत हो जाये ।

शरीर में यदि पित्त दुष्ट हो जाये तो उससे देह तो गरम हो जाता है और अन्त में अर्थात् हाथ पैरों में शीत होता है पित्तज्वर में कहा हुआ 'द्राक्षादि' काथ यहां प्रयुक्त करें ॥ ३९-४० ॥

तद्विपरीतमाह—

काये श्लेष्मायदा दुष्टाः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् ॥ ४१ ॥
शीतत्वं तेन गात्राणा मुष्णत्वं करपादयोः ।

पूर्वोक्तमत्ररास्नादि प्रयुंजीत भिषग्वरः ॥ ४२ ॥

जब शरीर में श्लेष्मा कुपित हो और अन्त में पित्त हो तो उस से देह ठण्डा हो जाता है और हाथ पैर उष्ण होते हैं।

इस ज्वर में पहिले कहा हुआ रास्नादि काथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

अन्तर्दाहज्वरमाह—

मध्ये पित्तं यदादुष्टं ह्यन्ते श्लेष्मसमीरणौ।
तदान्तर्दाहः शोथः स्याद्वहिः सस्वेद शीतता ॥ ४३ ॥
अन्तर्दाहे वहिः शैत्ये छिन्ना क्वाथं कणामधु।
पाययेद्वा श्रृतं क्षीरं शीतं गुड़ सितान्वितम् ॥ ४४ ॥

मध्य में जब पित्त दुष्ट हो और अन्त में कफ और वायु हो तो तब अन्दर दाह तथा शोथ होता है और बाहर स्वेद युक्त शीतता होती है। इस अन्तर्दाह बाहिर शीत ज्वर में गिलोय का काढा मघ तथा मधु मिलाकर पिलावें अथवा गरम दूध ठण्डा करके गुड तथा मिश्री मिलाकर दें ॥ ४३—४४ ॥

बहिर्दाहज्वरमाह—

वाह्ये पित्तं यदातिष्ठेदन्तस्तु कफमारुतौ।
तेनोष्णत्वं शरीरे स्यादन्तः शीतं प्रजायते ॥ ४५ ॥
अन्तः शीते किरातादि पित्तोक्तं पिप्पली युतम्।

बाहिर जब पित्त कुपित होकर रहे तथा अन्दर कफ वायु हो तब बाहिर से शरीर गरम और अन्दर से ठण्डा होता है। अन्दर शीत ज्वर हो तो पित्तज्वर में कहा हुआ 'किरातादि काथ पिप्पली का चूर्ण मिलाकर देना हित होता है ॥ ४३ ॥

रात्रिज्वरमाह—

समौ वात कफौ यस्य हीन पित्तस्य देहिनः ॥ ४६ ॥
तीक्ष्णो वा यदि वा मन्दो जायते रात्रिजोज्वरः।
दिवाकरातप बले व्यायामादि विशोषिते ॥ ४७ ॥
शरीरेनियतं वाता ज्ज्वरस्याद्र्द्ध रात्रिकः।
छिन्ना क्काथः कणा चूर्ण युतो रात्रिज्वरापहः ॥ ४८ ॥

लज्जामूलं शिखाबद्धं रवौ वा चाष्टमी दिने।
मर्दनं चापि दुग्धेन रात्रिज्वर हरं परम् ॥ ४६ ॥

वायु तथा कफ जिसके समानावस्था में हों और पित्त हीन हो तो उस पुरुष को तेज वा मन्द रात्रि में ज्वर हो जाता है। सूर्य की किरणों के बलवान् होने पर व्यायामादि के अधिक करने पर देह में वात के बढ़ जाने से आधी रात में ज्वर होता है। ऐसे ज्वरों में गिलोय का काढ़ा पिप्पली चूर्ण मिलाकर पीने से रात्रिज्वर को हरता है। लज्जावन्ति की जड़ रविवार के दिन अथवा अष्टमी तिथि को शिखा में बांधने से और दुग्ध के साथ मर्दन करने से रात्रि ज्वर को हरने वाली होती है ॥ ४६—४६ ॥

नील्या वा काकमाच्या भृंगराजस्य वा जटा।
कर्णे वद्धा निसन्देहं सद्यो रात्रिज्वरापह ॥ ५० ॥

कृष्णजीरकादिगुटी—

कृष्ण जीरं च द्विपलं कुडवं गुड़पुरातनं।
मरिचं कर्षं दातव्यं गुडिका कर्ष मात्रिका ॥ ५१ ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातः रात्रि सद्यो ज्वरापहा।

नील अथवा मकोय वा भांगरे का मूल लेकर कान में बांधने से शीघ्र ही निःसन्देह रात्रिज्वर का नाश करता है। कालाजीरा दो पल, पुराना गुड पावभर भर एक तोला काली मरिच देकर एक २ तोला की गोली बनाकर प्रातःकाल एक गोली खाये तो शीघ्र रात्रिज्वर को हरती है ॥ ५०-५१ ॥

अर्घादिदानविधि—

गंगा यमुनयोर्मध्ये अपुत्र स्तापसोमृतः ॥ ५२ ॥
रात्रिज्वर विनाशाय दद्यात्तस्मै तिलोदकं।
अर्घं प्रदापयेत्तस्मै मुञ्चेत्तं चज्वरे सुधीः ॥ ५३ ॥
कलशं जल सम्पूर्णं पूपिका पिहितं ततः।
चतुर्मुखं पिष्टदीपं धृत्वारोगी समाचरेत् ॥ ५४ ॥
तिलादि तर्पणं तत्र मन्त्रेणानेन भावयुक्।

गंगा और यमुना के मध्य में विना पुत्र के तपस्वी मरा है उसे

रात्रि ज्वर के नाश के लिये तिलोदक देना चाहिये और उस के लिये बुद्धिमान् व्यक्ति अर्घ प्रदान करें तो उसे रात्रि ज्वर छोड देता है। एक घड़े को जल से भरकर उसके ऊपर पूरी देकर ढांप दे और उस पर चार मुख वाला पिट्ठी का बना हुआ दिया रोगी उस पर धरकर तिल तर्पण उक्त मन्त्र से करे तो रात्रिज्वर से मुक्त हो ॥५२-५४॥

अथरसः

ज्वरारि रसः

रसगन्धकयोर्भागौ शुद्धयो रुभयोरपि ॥ ५५ ॥

षष्टिचा पट्टिकोऽपर नामो रसः

त्रिकटु चित्रकं चैव एकैकं वह्निभृंगयोः।
आकल्लकर भागैकं स्फटिकं टंकणं तथा ॥ ५६ ॥
ब्राह्मण वत्सनाभस्य भागाद्वितय संयुतं।
सारणाख्याहि फेनस्य दत्वापादं विचूर्णयेत् ॥ ५७ ॥
जैपाल बीजनीरेण दिनैकं भावितं कुरु।
दिनानि सप्तसम्भाव्य भृंगराज रसेनतु ॥ ५८ ॥
वल्लमात्रां प्रकुर्वीत गुटिकां तज्जलेनहि।
जैपालभावहीनंतु अपक्क मलजे ज्वरे ॥ ५९ ॥
संपक्व मलजे दद्या जैपाल जलभावितम्।
क्षणेनैवज्वरोयाति मलजातः सुखावहः ॥ ६० ॥
पापड़ीषष्टीमात्रेण ज्वरारिर्नाशये ज्वरान्।
त्रिषष्टि कान्नं दातव्यं पथ्यं दधिसुशीतलम् ॥ ६१ ॥
उत्पन्न परितापेतुक्रिया कार्या सुशीतलः।
देह योगबलं ज्ञात्वा ज्वरारिर्दीयते पुनः ॥ ६२ ॥
दक्ष कोपावसाने तुजनं ज्वर निर्पीडितम्।
सर्वभूतप्रसन्नात्मा ज्वरारि मसृजत्प्रभुः ॥ ६३ ॥
अमोघ वीर्य मेनं तु सुरासुरादि पूजितं।
आराधयति यो वैद्यः सज्वरैर्नाभिभूयते ॥ ६४ ॥

पारा, गन्धक शुद्ध लेकर एक २ भाग, त्रिकटु, चित्रक, भिलावा

शुद्ध, भांगरा, अकरकरा, फटकरी, सुहागा यह सब एक २ भाग सफेद वत्सनाभ २ भाग, अफीम पारे का चौथा भाग देकर चूर्ण करे सातदिन भंगरे के रस से भावना देकर फिर एक दिन जैपाल के बीजों की भावना देना फिर इसकी एक रति मात्रा की गोली वना लेना। यदि अपकमल से उत्पन्न ज्वर हो तो उसमें विना जैपाल के रस का प्रयोग करना। यदि मल पक्व हो गया होतो जैपाल के रस से भावित रस को देना। तो इसके सेवन से चणभर में मल जनित ज्वर शान्त हो जाता है सट्टी के चावल तथा दधि पथ्य प्रयोग करना। इस रस के सेवन करने से यदि अधिक गरमी प्रतीत होतो शीतल क्रिया करनी चाहिये। देह तथा इस योग के बल को देखकर इस ज्वराररिस का प्रयोग करना चाहिये। दत्तपर क्रुद्ध हो जाने के अनन्तर मनुष्यों को ज्वर से पीड़ित जानकर सबभूतों के प्रसन्न करने की इच्छा से भगवान् ने यह "ज्वरारि उत्पन्न किया। नाश न होने वाले वीर्य युक्त इस देवताओं और असुरों से पूजित ज्वरारि का जो वैद्य आराधन करता है उसे ज्वर कभी नहीं कष्ट देता॥ ५५—६४॥

इति श्री ज्वरतिमिर भास्करे शीत दाहादि प्रभेदो नाम दशमोऽध्यायः।

अथैकादशोऽध्यायः।

धातुगतज्वरानाह—

रसासृङ् मांस मेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातवः।
क्रमात्तत्सज्वराणां तु वक्ष्ये लक्ष्म चिकित्सितम्॥ १॥

रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा शुक्र, यह सात धातु देह में होती हैं क्रम से इन में होने वाले ज्वरों के लक्षण तथा चिकित्सा कहता हूं॥ १॥

रसजमाह—

उत्क्लेशो गौरवं दैन्यं भंगोऽगानां विजृम्भनं।
अरोचको वमिःसादो भवति रसगते ज्वरे॥ २॥
रससंस्थे तु सर्वस्मिञ्जयेद्वमन लंघनैः।

उबकाई का आना, देह का भारी होना, अंगों का टूटना, उबासी आना, अरुचि, वमन, चिमचिमायन वात पीडा का होना दीनता हो जाये यह रस ज्वर के लक्षण हैं। इस ज्वर में वमन तथा लंघन देकर जीते ॥ २ ॥

रक्तजमाह--

रक्तनिष्ठीवनं तृष्णा रक्तोष्णं पिड़िकोद्गमः ॥ ३ ॥
दाहगात्र भ्रममद प्रलापा रक्त संस्रुते ।
सेकसंशमन लेप रक्तमोक्षोऽसृजि स्थिते ॥ ४ ॥

रक्त की थूकें आवें, प्यास लगे, लाल और गरम पिडिकायों का उत्पन्न होना, दाह गात्रों में, भ्रम, मद, प्रलाप यह लक्षण रक्त प्राप्त ज्वर में होते हैं। इस ज्वर में सेक करना संशमन द्रव्यों का लेप करना तथा रक्त मोक्ष कराना हित होता है ॥ ३-४ ॥

मांसजमाह—

पिण्डिको द्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्र पुरीषता ।
उष्मान्तर्दाह विक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगेज्वरे ॥ ५ ॥
तीक्ष्णं विरेकश्च तथा कुर्यान्मांस गते ज्वरे ।

पिंडलियों को बटने सरीखी पीड़ा हो, प्यास, मलमूत्र का त्याग हो गरमी तथा अन्दर दाह हो, गात्रों को इधर उधर फेंके, ग्लानि हो यह मांसगत ज्वर के लक्षण हैं इसमें तेज विरेचन कराना हित होता है ॥ ५ ॥

मेदजमाह—

भृशं स्वेद स्तृषा मूर्छा प्रलापःछर्दिरेवच ॥ ६ ॥
दौर्गन्ध्यारोचक ग्लानि मेंदस्थे चासहिष्णुता ।

अस्थिजमाह—

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दि रेवच ॥ ७ ॥
विक्षेपणं च गात्राणा मेतदस्थिगते ज्वरे ।
तीक्ष्णा न्विरेकान्मांसस्थे मेदोघ्नं मेदसि स्थिते ॥ ८ ॥
अस्थिस्थेव तच्छमन मभ्यंग स्वेद मर्द्दनं ।

अत्यन्त स्वेद हो, तृषा, मूर्च्छा, प्रलाप, छर्दि, दुर्गन्धिता, अरुचि, ग्लानि, असहन शीलता यह लक्षण मेदोगत दोष में होते

हैं। हड्डियों का टूटना, कण्ठ में शब्द होना, श्वास, अतिसार, वमन, हाथ पैरों का फैंकना यह अस्थिगत ज्वर में लक्षण होते हैं।

मांसगत ज्वर में तीक्ष्ण विरेचन देना, मेदोनाशक मेदज्वर में अस्थिगतज्वर में उसके शमन के लिये, मालिश कराना पसीना देना तथा मलना हित होता है ॥ ६-८ ॥

मज्जगमाह—

तमः प्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमि स्तथा ॥ ९ ॥
अन्तर्दाहो महाश्वास मर्मच्छेदस्तु मज्जगे।
मज्जगे वातशमनं विशेषाद्वस्ति कर्म च ॥ १० ॥
अथवा भिषजै र्योज्या निरूहः सानुवासनः।

अन्धकार का प्रवेश होना, हिचकी, कास, ठण्डापन, वमन, अन्दरदाह हो, महाश्वास और मर्मों का छेदन हो यह मज्जगत ज्वर के लक्षण हैं इसमें वातनाशक द्रव्यों का प्रयोग हितकर होता है तथा विशेष करके वस्तिकर्म अथवा वैद्यों करके निरूहण तथा अनुवासन करना चाहिये ॥ ९-१० ॥

शुक्रजमाह—

तमसोदर्शनं मर्म छेदनं स्तब्ध शेफतः ॥ ११ ॥
शुक्र प्रवृतिर्मृत्युश्चजायते शुक्र संस्थिते।
उत्तरोत्तर दुःसाध्याः पश्चात्रान्त्यौ तु वर्जयेत् ॥ १२ ॥
मज्जशुक्रे क्रियानोक्ता मरणं चात्र भाषितम्।
रसरक्ताश्रितः साध्यो मेदो मांसगतश्च यः ॥ १३ ॥
अस्थि मज्जगतः कृच्छ्राच्छुक्रस्थोनैव सिध्यति।

तम का दर्शन, मर्मों का टूटना, मूत्रेन्द्रिय का स्तब्ध होना, वीर्य का चलना शुक्रस्थान में ज्वर हो तो मृत्यु हो जाती है। उत्तरोत्तर (अर्थात् रसज्वर रक्तज्वर) इसी प्रकार मांस आदि ज्वर दुःख से सिद्ध होने वाले होते हैं यह पांच। और अन्त के दो (अर्थात् मज्जा शुक्रगत) त्याज्य होते हैं। इन दोनों में कोई क्रिया नहीं कही मरण ही कहा है। रस रक्त में होने वाला तथा मेदा मांसगत भी साध्य होता है और अस्थि मज्जा में होने वाला कष्टसाध्य तथा शुक्र गत सिद्ध नहीं होता ॥ ११-१३ ॥

चिकित्सामाह—

लक्ष्मणोत्सवात्—

दासी दारु कलिंगलोहित लता शम्पाक पाठा शठी ।
शौण्डी धीर किरात कुञ्जरकणा त्रायन्तिका पद्मकैः ॥
वक्रानागर धान्यकाब्द सरला शीघ्राम्बु सिंही शिवा ।
व्याघ्री पर्पट दर्भमूल कटुका छिन्नामृता पुष्करैः ॥ १४ ॥
धातुस्थं विषमं त्रिदोष जनित मैकाहिकं द्व्याहिकं ।
पीतो हन्तिं तृतीयकं ज्वर मथो चातुर्थिकं भूतजम् ॥
मूर्च्छा शीतमदो ग्रदाह सरुचि श्वासं च कासं तथा ।
पाण्डुशोफमति प्रलाप शमनं क्वाथोऽमृतः कल्पितः ॥१५॥

काकजंघा, देवदारु, इन्द्रजौ, मजीठ, अमलतास, पाठा, कचूर, पिपली, ऋषभक, चिरायता, गजपिप्पली, त्रायमाणा, पद्माख, कर्कट सिंहीं, सुण्ड, धनियां, मोथा, सरलकाष्ठ, उशीर (खस) नेत्रवाला कटेरी, हरड़, बड़ी कटेरी, पित्तपापड़ा, दर्भमूल कुटकी, गिलोय, आंवला, पोहकरमूल इनका क्वाथ पीने से धातुगत, विषमज्वर, त्रिदोष से उत्पन्न एकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थक, भूत से पैदा हुआ मूर्छा, शीतमद, अत्यन्तदाह, अरुचि, श्वास, कास, पाण्डुरोग, शोथ, प्रलाप आदि व्याधियों को यह अमृत तुल्य क्वाथ नाश कर देता है ॥ १४-१५ ॥

निम्बादिचूर्णमाह—

निंबपत्र वरा व्योष यवानी लवण त्रयं ।
क्षारो दिग्वह्नि रामेषु त्रिद्विः स्यात्क्रमशोंशकात् ॥१६॥
सर्वमेकी कृतं सर्वं प्रत्यूषे भक्षयेन्नरः ।
एकाह्निकं द्व्याह्निकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरं ॥ १७ ॥
चातुर्थिकं महाघोरं सन्ततं सततंहिवा ।
धातुस्थं च त्रिदोषोत्थं ज्वरं हन्ति च मानसं ॥ १८ ॥

निंवपत्र, त्रिफला, त्रिकटु, अजवायन, तीनो लूण, जौं खार इनको क्रमसे १० भा. २ मा. ३ मा. ३ मा. दो भाग लेकर सब को इकट्ठा करके चूर्ण बनाकर प्रातःकाल खाये तो एकाहिकादि ज्वरों को हरता है ॥ १६-१८ ॥

पिप्पल्यादिमोदकः—

क्षौद्राद्द्विगुणितं सर्पि घृताद्द्विगुणा पिप्पली ।
पिप्पल्या त्रिगुणा धात्री सिता देया चतुर्गुणा ॥ १९ ॥
सितायाः द्विगुणं क्षीरं क्षौद्रेणैव समं क्षिपेत् ।
चतुर्जातकमत्रापि ततः कुर्य्याच्चमोदकान् ॥ २० ॥
रसासृङ् मांसमेदोस्थि गतं नाशयति ज्वरम् ।
श्वासंकासं तथा पाण्डुं वह्नि मान्द्यमरोचकम् ॥ २१ ॥
धातुक्षयं नाशयति धातुपुष्टिं करोति च ।
बलेन्द्रियोदयं कुर्यात्पिप्पली मोदकः सदा ॥ २२ ॥

मधु से दो गुणा घृत, घृत से दो गुणा पिप्पली, पिप्पली से तीन गुणा आंवला, आंवला से चार गुणा मिश्री, मिश्री से दो गुणा दुग्ध तथा मधु के बराबर दालचीनी, इलाची, तेजपत्ता, नाग केसर देकर इनके लड्डू बना लेना इसके सेवन करने से रसादि धातुओं में होने वाला ज्वर नष्ट होता है। और श्वास, कास, पाण्डु रोग अग्निमन्द को तथा अरुचि को, धातुक्षय को नष्ट करता है और धातु की पुष्टि करता है बल तथा इन्द्रियों को बढ़ाता है यह पिप्पली मोदक सदा हितकर होता है ॥ १९–२२ ॥

सुदर्शनचूर्णमाह—

त्रिफला रजनी युग्मं कण्टकारीद्वयं शठी ।
त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धान्य वासकं ॥ २३ ॥
कटुका पर्पटं मुस्तं त्रायमाणं च बालकं ।
निम्बपुष्करमूलं च मधुयष्टी यवासकं ॥ २४ ॥
यवानीन्द्रयवा भार्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रिजा ।
वचात्वक् पद्मकोशीर चन्दनातिविषा बला ॥ २५ ॥
शालपर्णी पृष्टपर्णी विडंगं तगरं तथा ।
चित्रको देव काष्टं च चव्यं पत्रपटोलजम् ॥ २६ ॥
जीवकर्षभकौ चैवलवंगं वंशलोचनं ।
प्रपुण्डरीकं काकोली पत्रकं जाति पत्रकम् ॥ २७ ॥

तालीस पत्रं चैतानि समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्व चूर्णस्यचाधांशं प्रक्षिपे द्भुनिंबकम् ॥ २८ ॥
एतत्सुदर्शनं चूर्णं दोषत्रय निवर्हणं ।
ज्वरान्वैसकलान्हन्ति नात्रकार्या विचारणा ॥ २६ ॥
पृथग्द्वन्द्वागन्तुकांश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ।
सन्निपातभवां श्चापि मानसा नपि नाशयेत् ॥ ३० ॥

सुदर्शन चूर्ण—त्रिफला, हलदी, दारु हलदी, दोनों कटेरी, कचूर, त्रिकटु, पिपला मूल, मूर्वा, गिलोय, धनियां, वांसा, कुटकी, पित्तपापड़ा, मोथा, त्रायमाणा, नेत्र वाला, निंब, पोहकरमूल मुलठी, जवासा, अजवायन, इन्द्रजौ, भार्गी सुहांजने के वीज फटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, खस लाल चन्दन, अतीस, खरेंटी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, वायविडंग, तगर, चित्रक, देवदारु, चाभ, परवल पत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, तवाशीर नीलोफर काकोली, तेजपत्ता, जावित्री, तालीसपत्र यह सब औषध समभाग लेना और चूर्ण करना सब चूर्ण से आधा भाग चिरायता डाल कर मिलाना यह सुदर्शन नामक चूर्ण तय्यार होता है यह तीनों दोषों को दूर करता है सब प्रकार के ज्वरों को हरता है इस के प्रयोग करने में कुछ विचार नहीं करना चाहिये, एक दोषज द्वि दोषज, आगन्तुज, धातुस्थ, विषम, सन्निपात से होने वालों का तथा मानसिक ज्वरों का भी नाश करता है ॥ २३-३० ॥

फल श्रुतिः-

शीतज्वरं तथैकान्ह प्रभृतीन्विषम ज्वरान् ।
प्राकृतं वैकृतं चैव सौम्यं तीक्ष्णमथापि वा ॥ ३१ ॥
नानादोषोद्भवं चैव वारिदोषं तथैव च ।
भृशं तन्द्रा भ्रमं मोहं पाण्डुहृद्रोग कामलाम् ॥ ३२ ॥
त्रिकपृष्ठ कटि जानु पार्श्वशूलं च नाशयेत् ।
शीतैर्वाद्भिः पिबेच्चूर्णं सर्व ज्वर निवृत्तये ॥ ३३ ॥
यथा सुदर्शनं चक्रं सर्व दानव नाशनम् ।
चूर्णं मेतत्तथा सर्व ज्वराणां नाश कारकम् ॥ ३४ ॥

शीतज्वर को, एकाहिकादि विषमज्वरों को, प्राकृत और वैकृत, सौम्य तथा तीक्ष्ण ज्वरों को, नाना दोषों से होने वाले और जल दोष से होने वाले ज्वरों को नष्ट करता है। अत्यन्त तन्द्रा, भ्रम, मोह, पाण्डुरोग, हृदय का रोग, कामला त्रिक की हड्डी की, पीठ की, कमर की, जानु की, पसली की शूल को नष्ट करता है। ठण्डे जल से पिया हुआ चूर्ण सब ज्वरों की शान्ति के लिये होता है जैसे सुदर्शन चक्र सब दैत्यों को नष्ट कर देता है इसी प्रकार यह चूर्ण सब ज्वरों को नाश करने वाला है ॥ ३१-३४ ॥

षोडशांशचूर्णमाह—

किरात सैन्धवं तिक्ता छिन्नोग्राऽभया घना ।
त्रायन्ती नागरं व्याघ्री ग्रंथिकं पर्पटं कणा ॥ ३५ ॥
शठी पटोलं वासाह्वं चूर्णोयं षोडशांशकः ।
जीर्ण ज्वरे च विषमे सन्निपाते तु धातुगे ॥ ३६ ॥
कासे श्वासेऽरुचौ शूलेमूत्रकृच्छ्रे हृदामये ।
विषेप्लीह्नि वमौ शस्तौ मूढ वातानुलोमनः ॥ ३७ ॥
ग्रहणी शोष शोफार्शो वस्तिशूल प्रवाहिकां ।
हन्त्यतीसार शीर्षार्त्ति त्रिकपृष्ठ कटी ग्रहान् ॥ ३८ ॥
पीतमक्षमितं कोष्ण जलैः सर्वज्वरापहम् ।

चिरायता, सैन्धवलवण, कुटकी, गिलोय, वचा, हरड़, मोथा, त्रायमाणा, सुण्ड कटेरी, पिपलामूल, पित्तपापड़ा, पिपली, कचूर, परवल, बांसा यह सोलह औषधियों का चूर्ण षोडशांशक जीर्ण ज्वर में, विषमज्वर में, सन्निपात में, धातुगत में, कास, श्वास अरुचि में, शूल में, मूत्रकृच्छ्र और हृद्रोग में, विष में, प्लीहरोग में, वमनमें हित होता है प्रतिलोम वायु को अनुलोम करता है ग्रहणीरोग, शोष, शोथ, बवासीर, बस्तिशूल, प्रवाहिका (मरोड़) अतिसार, शिरोरोग, त्रिक. पीठ, तथा कमर की पीडा को हरता है। यह चूर्ण गरम जल से एक तोला पिया हुआ सब ज्वरों को नाश करता है।

पीयूषसुन्दरीगुटिकामाह—

छिन्नासत्वशिवाजाजी कृष्णा कच्छुराभया ।
सार्कशाणमिता कार्या गुडैर्वा मधुना गुटी ॥ ३९ ॥

धातुस्थान् विषमाजीर्णा ज्ज्वरानेकाहिकादिकान् ।
कास श्वासाग्नि मांद्यं च हन्ति दुग्धानुपानतः ॥ ४० ॥
ज्वरश्चिकित्सितः सम्यग्धातुस्थोप्युग्र वेगवान् ।
पथ्यौ षधैश्च संयाति विरुद्धंसेवते न चेत् ॥ ४१ ॥

गिलोय का सत, आंवला, जीरा, मद्य, धमासा, हरड़ अर्कमूल इन द्रव्यों को पीसकर ४ मासे की गोली गुड में अथवा मधु से बना ले तो इसे दुग्ध के साथ पीने से धातु गत ज्वरों को विषम तथा अजीर्ण ज्वरों को एकाहिकादियों को कासादिरोगों को हरती है। भली प्रकार उग्र वेग वाले धातु गत ज्वरों की चिकित्सा पथ्य तथा औषधों के सेवन करने से ज्वर शान्त हो जाते हैं यदि इसमें कुपथ्य न सेवन किया जाये ॥ ३६-४१ ॥

इति श्री ज्वरतिमिरभास्करे धातुगतज्वर प्रभेदो
नामेकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

जीर्णज्वरमाह—

नशाम्यति ज्वरो यस्य पक्षाहा द्वात्रिसप्तकात् ।
मन्द वेगानुबद्धस्तुह्यतीवतनुतांगतः ॥ १ ॥
देहधातु बलत्वेन सजीर्ण ज्वर उच्यते ।
प्लीहाग्निसादं कुरुते वक्ष्येतस्य चिकित्सितम् ॥ २ ॥

जिस व्यक्ति का ज्वर दो सप्ताह से अथवा तीन सप्ताह से शान्त न हो मन्द वेग से युक्त हो देह, धातु, बल से जो अत्यन्त सूक्ष्मता को प्राप्त हो गया हो तथा जो प्लीहा की वृद्धि तथा अग्नि मान्द्य कर दे वह पुराणज्वर कहाता है उसकी चिकित्सा को कहता हूं ॥ १-२ ॥

दोषाणां यदभिव्यक्तिस्तरुणेपि भवेज्ज्वरे ।
लंघयेत् ततः पश्चाद्यथोक्तं कारयेत् क्रियाम् ॥ ३ ॥
दौर्बल्यादेव धातूनां ज्वरोजीर्णोऽनुवर्तते ।
वल्यैः संबृहणै स्तस्मादाहारै स्तमुपाचरेत् ॥ ४ ॥

दोषों की अभिव्यक्ति (अर्थात् ज्ञान वा प्रकटता) तरुण ज्वर में भी हो जाती है इस लिये उसे लंघन देकर पीछे जैसी क्रिया कही गई है वैसी चिकित्सा करे। धातुओं के दुर्बल हो जाने से ज्वर जीर्ण भाव को प्राप्त होता है इस लिये बलकारक तथा धातुओं के बढ़ाने वाले आहारों से उसका उपचार करे॥ ३-४॥

अथाष्टादशाङ्गः—

द्राक्षामृता शठी शृंगी मुस्तकं रक्तचन्दनं।
नागरं कटुका पाठा भूनिंबं च दुरालभम्॥ ५॥
उशीरं पद्मकं धान्यं बालकं कण्टकारिका।
पुष्करं पिचुमन्दश्चाष्टादशाङ्ग मिदं शुभम्॥ ६॥
जीर्णज्वरारुचिश्वास कास श्वयथु नाशनम्।

मुनक्का, गिलोय, कचूर, काकड़ासिंही, मोथा, लालचन्दन, सुण्ठ, कुटकी, पाठा, चिरायता, धमासा, खस, पद्माख, धनियां, नेत्रबाला, कटेरी, पोहकरमूल, निंबपत्र यह अठारह औषधियों का काढ़ा शुभ है इसके सेवन से पुराणज्वर, अरुचि, श्वास कास, शोथ नष्ट होती है। ५—६॥

पिप्पली चूर्ण संयुक्तः क्वाथः छिन्नरुहोद्भवः॥ ७॥
जीर्ण ज्वर कफध्वंसी पञ्चमूली कृतोऽथवा।

गिलोय के काढ़े में मघ का चूर्ण मिलाकर अथवा पञ्चमूल (अर्थात् बिल्व, अरलु, स्योनाक, पाटला, खम्भारी) इनका काढा पुराने ज्वर और कफ को नाश करता है॥ ७॥

अमृतायाः कषायं तु शृतं चैव सुशीतलं॥ ८॥
मधुपाद युतः पीतो जीर्णज्वर हरः परः।
त्रिफला पिचुमन्द त्वक् मधुकं बृहती द्वयम्॥ ९॥
समस्तरदलैः क्वाथः स घृतो ज्वर कासहा।
पिवेतोये रोहितकं पथ्या पर्पटकैः शृतम्॥ १०॥
ज्वरप्लीहोदर श्वास यकृत्गुल्मोग्निमान्द्यजित्।
धान्य शुण्ठी समं चूर्णं तृष्णादाहं च नाशयेत्॥ ११॥
क्वाथः छिन्नरुहोद्भूतो निहन्ति विषमज्वरम्।

जीर्णज्वरं रात्रिजं वा तृतीयक चतुर्थकान् ॥ १२ ॥

गिलोय का काढ़ा बनाकर ठण्डा करके चौथा हिस्सा शहत मिलाकर पिया हुआ जीर्ण ज्वर को हरने वाला होता है।

त्रिफला, निंब की छाल, मुलठी, दोनों कटेरी, मसूर के पत्ते इनका काढा घृत मिलाकर पीने से ज्वर तथा कास को हरता है। जो मनुष्य रुहेड़ा, हरड़, पित्तपापड़ा से बना हुआ क्वाथ पीता है उसके ज्वर, प्लीहोदर, श्वास, यकृत् के रोगों तथा गुल्म अग्निमन्द को जीतता है। धनियां, सुण्ड इन दोनों का समान भाग चूर्ण तृष्णा और दाह का नाश कर देता है। गिलोय का काढ़ा पीने से विषमज्वर को, पुराने ज्वर को, रात्रि में होने वाले ज्वर को अथवा तृतीयक और चतुर्थक को हरता है ॥ ९–१२ ॥

दुग्धप्रयोगमाह—

क्षीणकफे ज्वरे जीर्णे स्वल्प दोषे पिपासिते।
पित्तानिले बद्धवर्चे रूक्षे दीने तथा कृशे ॥ १३ ॥
दाहार्तेषु पयो योज्यं तन्नवेविषवद्भवेत्।

कफ के क्षीण होने पर, जीर्ण ज्वर में, थोड़े दोष होने पर, प्यास लगने पर पित्त तथा वायु के ज्वर में, मल बन्ध जाने पर, रूक्ष पुरुष को, मलिन कान्ति वाले दीन पुरुष को, कृश को, दाह से पीड़ित में दुग्ध प्रयोग करना हित होता है वही दुग्ध नवीन ज्वर में विष के तुल्य होता है अर्थात् नये ज्वर में अहित होता है ॥१३॥

संस्कृतं शीत मुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेवच ॥ १४ ॥
विभज्य कालं प्रजीत तथा स्वैरौषधैः शृतम्।

संस्कार किया हुआ ठण्डा वा गरम अथवा धारोष्ण (उसी समय दोहन किया हुआ) काल विभाग से यथादोष के विपरीत औषधियों से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पीवे ॥ १४ ॥

पयः शुण्ठी स खर्जूरं मृद्वीका शर्करा घृतम् ॥ १५ ॥
शृतशीतं मधुयुतं तद् दाह ज्वर नाशनम्।

क्षीरविधौ परिभाषामाह—

द्रव्यादष्ट गुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ १६ ॥
क्षीरावशेषं कर्त्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः।

दुग्ध, सुण्ड, खजूर,मुनक्का,खाण्ड(चीनी) तथा घृत इन सब को औट करठण्डा करे और इसमें शहत मिलाकर पीवे तो प्यास,दाह, ज्वर के हरने वाला यह दुग्ध होता है। दुग्धपाक करने की विधि कहते हैं—जितनी औषधी हो उससे आठ गुणा अधिक दुग्ध और दुग्ध से चार गुणा अधिक जल डालकर पकाना जब दूध शेष रह जाये तो पीवे यह क्षीरपाक की विधि है ॥ १५-१६ ॥

वृश्चीव बिल्व वर्षाभूः पयश्चोदक मेव च ॥ १७ ॥
त्रिकण्टकं बला व्याघ्री गुड़ नागर साधितं ।
वर्चोमूत्र विबन्धार्शो शोफ ज्वर हरं पयः ॥ १८ ॥
गुड़ विल्व कणाभार्गी श्वदंष्ट्राभिः शृतं पयः ।
श्वयथु ज्वर विण् मूत्र विबन्धाय प्रयोजयेत् ॥ १९ ॥

श्वेत इटसिट, बिल्वमूल, इटसिट, दुग्ध, जल, गोखरू, खरेंटी, गुड, सुण्ड इन सबमें सिद्ध करके दुग्ध पीने से मलमूत्र की रुकावट को, बवासीर को, शोथ और ज्वर को हरने वाला दुग्ध है। गुड, बिल्व, मघ, भार्गी, गोखरु इनसे औटाया हुआ दुग्ध शोथ, ज्वर मलमूत्र के रुकने पर प्रयोग करे ॥ १७-१९ ॥

साधितो विल्वपेशीभिः स मूलैरण्डकस्य वा ।
सद्यो हन्ति पयः पीतं ज्वरं स परिकर्तृकम् ॥ २० ॥
कासात्श्वा साच्छ्रिरः शूलात्पार्श्व शूलाच्चिर ज्वरात् ।
मुच्यन्ते ज्वरिणः पीत्वा पञ्चमूली शृतं पयः ॥ २१ ॥
धारोष्णं वा पयः पीत्वा विबन्धानिल वर्चसः ।
जीर्ण ज्वराणां सर्वेषां पयः प्रशमनं परम् ॥ २२ ॥

विल्व की मज्जा वा एरण्ड की जड़ से सिद्ध किया हुआ दुग्ध पीने से ज्वर और गुदा की काटने सरीखी पीड़ा का शीघ्र नाश करता है, कास, श्वास, शिरशूल, पार्श्वशूल तथा पुराने ज्वर को शीघ्र ही नाश करता है। पञ्चमूल से पकाया हुआ दुग्ध पीकर ज्वर से मुक्त हो जाता है।

अथवा उसी काल में दोहा हुआ दुग्ध पीकर वात और मल की रुकावट से शीघ्र मुक्त हो जाता है। सब पुराने ज्वरों को शान्त करने वाला दुग्ध होता है ॥ २०-२२ ॥

कणामधुकमृद्वीका बला चन्दन सारिवा ।
निष्काथ्य पयसापीता जीर्णज्वर विनाशिनी ॥ २३ ॥
श्वेत जयन्त्यामूलं विधिना बद्धं शिखान्तरे हन्ति ।
जीर्ण ज्वरं नराणां खल इव दुरितेन चात्मानम् ॥ २४ ॥

पिपली, शहत, मुनक्का, खरेंठी, चन्दन, अनन्तमूल इन को दुग्ध के साथ पकाकर पीने से जीर्ण ज्वर का नाश होता है। सफेद जयन्ती की जड़ विधिपूर्वक शिखा में बांधी हुई मनुष्यों के पुराने ज्वर को इस प्रकार नष्ट करती है जैसे मूर्ख व्यक्ति अपने खोटे कर्म से अपने आप को नाश करता है ॥ २३–२४ ॥

वमनं स्वेद कालाम्बु कषायैर्लघुभोजनैः ।
यः स्याद तिवलोधातुः सहचारी सगच्छति ॥ २५ ॥
तस्य संशमनं सर्पि र्दीप्तस्येवाम्बुवेश्मनः ।
रूक्षं तेजो ज्वर करं तेजसा रुक्षितस्य च ॥ २६ ॥
यः स्याद तिवलो धातुः स्नेहवद्धः सदानिलः ।
कषायाः सर्व एवोक्ताः सर्पिषा सहयोजिताः ॥ २७ ॥
प्रयोज्या ज्वरशान्त्यर्थं मग्निसन्धुक्षणाय च ।

वमन कराने से, स्वेद करने से, सिद्ध जल कषाय और लघु भोजनों से जो अति बलवान् साथ चलने वाला (अर्थात् अग्नि का सहचारी) धातु सदा गति सदा चलने वाला वायु बढ़कर ज्वर का कारण हो जाता है उसको शान्त करने वाला घृत के सामान और कोई द्रव्य नहीं होता जैसे अग्नि से जलते हुए गृह को जल शान्त कर देता है।

तेज रूक्ष होता है और ज्वर करने वाला होता है तेज से रूक्ष हुए पुरुष का जो धातु अति बलवान् होता है उसका वायु सदा स्नेह से बद्ध होता है उसके लिये जितने कषाय ज्वर नाशक पहिले कहे हैं उनमें घृत मिलाकर ज्वर की शान्ति के लिये तथा अग्नि के बढ़ाने के लिये प्रयुक्त करने चाहियें ॥ २५—२७ ॥

कृष्णाद्यं घृतमाह—

कृष्णांशुमत्यातिविषा कटुका सेव्य चन्दनैः ॥ २८ ॥
धात्री विल्वघनद्राक्षा शारिवाभिश्चसाधितं ।

हन्ति सद्यो घृतं जीर्णज्वर कासं हलीमकम् ॥ २६ ॥
अरुचिं विषमं वह्निं यक्ष्माणं च नवोत्थितम् ।

पिप्पली, मालकंगनी, अतीस, कुटकी, खस, चन्दन, आंवला, विल्व मोथा, मुनक्का, सारिवा इनसे सिद्ध किया घृत शीघ्र ही पुराने ज्वर को कास, हलीमक को, अरुचि को, विषमाग्नि को तथा नवीन राजयक्ष्मा को नष्ट करता है ॥ २८—२६ ॥

वासाद्यंघृतमाह—

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकं ॥ ३० ॥
पक्वातेन कषायेन पयसाद्विगुणेन च ।
पिप्पली मुस्तं मृद्वीका चन्दनोत्पल नागरैः ॥ ३१ ॥
कल्की कृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्ण ज्वरापहम् ।

बांसा, गिलोय, त्रिफला, त्रायमाणा, जवासा, इनसे कषाय पका कर द्विगुण दुग्ध डालकर घृतपाक करना और उसमें मद्य मोथा, मुनक्का, चन्दन, कमल, सुण्ड इनका कल्क डालना इस प्रकार सिद्ध किया हुआ घृत जीर्ण ज्वर का नाश करता है । ग्रन्थकार इसमें घृत से तीन गुणा कषाय डालने को कहता है दूध द्विगुण डालना चाहिये ॥ ३०—३१ ॥

पिप्पलाद्यं घृतमाह—

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुकौषधं ॥ ३२ ॥
कलिंग भूम्यामलकी शारिवातिविषा स्थिरा ।
द्राक्षामलक विल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका ॥ ३३ ॥
सिद्धमेतैर्घृतं सद्योज्वरं जीर्णं व्यपोहति ।
क्षयंकासं शिरःशूलं पार्श्वशूल मरोचकम् ॥ ३४ ॥
अंगाभिताप मग्निं च विषमं सानियच्छति ।
पिप्पल्यादि घृतं काश्यं तन्नक्षीरेणपच्यते ॥ ३५ ॥

पिप्पली, चन्दन, मोथा, खस, कुटकी, सुण्ड, इन्द्रयव, भूमी आंवला शारिवा, अतीस, पृष्ठपर्णी, दाख, आंवला, विल्व, त्रायमाणा कटेरी इनसे सिद्ध किया घृत शीघ्र ही जीर्ण ज्वर, क्षय, कास, सिर दर्द, पार्श्वशूल, अरुचि, अंगों के ताप को, विषमता को नष्ट करता

है पिप्पल्यादि घृत को काढे से बनाना दूध से नहीं पकाना ।

पञ्चकोलघृतमाह—

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पालिकैः पयसा सह ।
सर्पिः प्रस्थं शृतं प्लीह विषम ज्वर गुल्म नुत् ॥ ३६ ॥

पिपली, पिपलीमूल चव्य, चित्रक सुएड इनकी पञ्चकोल संज्ञा है इनसे लवण मिलाकर १ पल पृथक सब लेकर दुग्ध के साथ सेर भर घृतपाक करना यह घृत प्लीहा को विषमज्वर तथा गुल्म का नाश करने वाला है ॥ ३६ ॥

लघुपिप्पलीघृतमाह—

मागधी चूर्ण कुड़वं तस्मादष्ट गुणं हविः ।
जले चतुर्गुणे सिद्धं ज्वरघ्नं प्लीह नाशनम् ॥ ३७ ॥

पिप्पली का पाव भर चूर्ण और उससे आठगुणा घी डालकर चार गुणा जल के साथ सिद्ध किया हुआ ज्वरनाशक तथा तिल्ली का नाश करता है ॥ ३७ ॥

विषाद्यंघृतमाह—

विषा व्याघ्री गुडूचीनां पत्रमूल फलाङ्कुरान् ।
रस कल्कै र्घृतं पक्कं हन्तिकास ज्वरारुचिम् ॥ ३८ ॥

अतीस, कटेरी, गिलोय, इनके पत्र, मूल, फल, अङ्कुर, रस लेकर तथा इन्ही के कल्क से घृत पकाया हुआ कास, ज्वर, अरुचि को नाश करता है ॥ ३८ ॥

गुडूच्याद्यंघृतम्—

गुडूची रस कल्काभ्यां त्रिफलायारसस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहाज्वरच्छिदम् ॥ ३९ ॥

गिलोय के रस तथा कल्क से और त्रिफला के रस से, मुनक्के के काढे से और खरेटी के रस से सिद्ध किया हुआ स्नेह ज्वर को हरता है ॥ ३९ ॥

कुलत्थाद्यंघृतम्—

कुलत्थ कोल त्रिफला दशमूल यवान्पचेत् ।
द्विपलान् सलिल द्रोणे पूतेऽस्मिन चकान् क्षिपेत् ॥ ४० ॥
पञ्चकोलक सप्ताह्वा वयस्था हिंगुतुम्बरुः ।

शठी पुष्करमूलार्कमूलान्यतिविषावचा ॥ ४१ ॥
किरात तिक्तकं मुस्तं कर्कटाख्या दुरालभा ।
नक्तमालमुभे पाठे कटुका शिग्रुतेजनी ॥ ४२ ॥
सोमवल्कं द्विरजनी कटुकी कण्टकारिका ।
पटोलनिंबगोजिह्वा केतकी मदनाह्वयः[1] ॥ ४३ ॥
लवणानि पलांशानिचारा[2] श्चार्धं पलोन्मिता ।
प्रस्थं चाज्यस्य तत्सिद्धं दीपनं कफवातनुत् ॥ ४४ ॥
हृत्प्लीह ग्रहणी गुल्म कास श्वासार्शसांहितं ।
जीर्णज्वराभिभूतानां ज्वरिणा ममृतोपमम् ॥ ४५ ॥
जीर्णे घृते च भुञ्जीत मृदुमांसरसौदम् ।

कुलत्थी, बेर, त्रिफला, दशमूल जौ, इन औषधियों को दो २ पल लेकर १६ सेर जल में पकाकर छान लेने पर एक २ तोला पञ्चकोल, सप्तपर्ण, हरड़, हींग, धनियां कचूर, पोहकरमूल, आक की जड़, अतीस, वच, चिरायता, मुस्तक, काकड़ासिंही, धमासा, करञ्ज पाठा, कौड़, सुहांजना, तेजबल की छाल, कायफल, दोनों हलदी, पीली कुटकी कटेरी, परवल के पत्ते, निंब, गोजी, क्योड़ा, मैनफल, पांचों लवण एक पल, सजीखार, जौखार, आध पल डालना और घृत १ प्रस्थ (अर्थात् १ सेर) डालकर सिद्ध करने से दीपन तथा कफवात को हरने वाला जीर्णज्वर से पीड़ितों के लिये तथा अन्य ज्वरों से युक्त व्यक्तियों के लिये अमृत के तुल्य है हृद्रोग, तिल्ली के रोग, ग्रहणी, गुल्म, कास, अर्श के लिये हित होता है। इसके पच जाने पर नरम मांसरस के साथ चावल खाने चाहियें ॥ ४०-४५ ॥ इति घृतानि।

अथ क्षीरवृक्षाद्यं तैलम्—

क्षीरवृक्षासनारिष्ट जम्बू सप्तदलार्जुनैः ॥ ४६ ॥
शिरीष खदिरा स्फोतामृतवल्ल्याटरूषकैः ।

---

१ इत्यत्र जटा इति वा पाठः ' अ, पुस्तके + तेन जटामांसी ग्राह्यः ।
२ चोरार्धपलोन्मितान् इति वा पाठः तेन ' चोरनामकं द्रव्यं ग्राह्यम् ।

कटुका पर्पटोशीर वचातेजोवती घनैः ॥ ४७ ॥
साधितं तैलमभ्यङ्गा दाशु जीर्णज्वराञ्जयेत् ।

वट गूलर, पीपल, पारिस पीपल, पिलखन इन पांचों का छिलका अथवा केवल इनमें से एक की छाल, विजयसार, नीम, जामन, सप्तपर्ण, अर्जुन, सरोह, खैर, अपराजिता, गिलोय, अडूसा, कौड़ पित्त-पापड़ा, खस, वच, तेजबल, मोथा, इनसे सिद्ध किया हुआ तैल मालिश करने से पुराने ज्वरों को जीतता है ॥ ४६-४७ ॥

प्रह्लादनं तैलम्—

यवार्ध कुडवं पिष्ट्वा माञ्जिष्ठा द्विपलं तथा ॥ ४८ ॥
अम्ल प्रस्थ शतोन्मिश्रं तैल प्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत्प्रह्लादनं नाम तैलं दाह ज्वरा पहम् ॥ ४९ ॥

जौं ८ तोला पीस कर मजीठ ८ तोला डाल सौ प्रस्थ अम्लद्रव्य अर्थात् कांजी मिलाय १ सेर तैल पका यह तैल प्रह्लाद नाम वाला दाह तथा ज्वर का नाश करता ॥ ४८—४९ ॥

षट् चरण तैलम्—

लाक्षामधुकमञ्जिष्ठा मूर्वा चन्दनसारिवा ।
तैलं षट् चरणं नाम ह्यभ्यंगा ज्ज्वर नाशनम् ॥ ५० ॥

पीपल की लाख, मुलठी, मजीठ, मूर्वा, चन्दन, अनन्तमूल, इन छः द्रव्यों का तैल षट् चरण नाम वाला मालिश करने से ज्वर का नाश करता है ॥ ५० ॥

षट् तक्र तैलम्—

सुवर्चिकानागरकुष्ठ मूर्वा लाक्षा निशा लोहित यष्टिकाभिः ।
तैलं पचेत्षड्गुण तक्र सिद्धमभ्यञ्जनाच्छीघ्र विदाहनुत् स्यात् ५१

सज्जी खार, सुण्ड कुष्ठ, मूर्वा, लाक्षा, हरिद्रा, मजीठ इन में छः गुणा तक्र देकर तैल पाक किया हुआ मालिश करने से ज्वर के दाह को शीघ्र हरता है ॥ ५१ ॥

अंगारकं तैलम्—

लाक्षा हरिद्रे माञ्जिष्ठा मूर्वा चैवेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ५२ ॥
आरनालाढ़केनात्र तैल प्रस्थं विपाचयेत् ।

तैल मंगारकं नाम सर्वज्वर विमोचणम् ॥ ५३ ॥

लाख. दोनों हलदी, मजीठ, मूर्वा, तुम्मे की जड़, बड़ी कटेरी, लवण कुठ, रासना, जटामांसी, शतावर, इन में ४ सेर कांजी डालकर सेर भर तैल पकावे यह अंगारक नाम तैल सब ज्वरों का नाश करता है ॥ ५२-५३ ॥

महा लाक्षादि तैलम्—

लाक्षा प्रस्थं क्वाथयित्वा चतुः प्रस्थमिते जले ।
पादशेषं जलं नीत्वा तैल प्रस्थे विनिक्षिपेत् ॥ ५४ ॥
तैलाच्चतुर्गुणं मस्तु गोदुग्धं चात्र निक्षिपेत् ।
शतपुष्पा साश्वगन्धा हरिद्रा देवदारु च ॥ ५५ ॥
रेणुका कटुका मूर्वा कुष्ठं च मधुयष्टिका ।
मञ्जिष्ठा पद्मकोशीर बला मांसी प्रियंगुभिः ॥ ५६ ॥
मुस्तं च चन्दनं रास्ना प्रत्येकं कर्षमात्रकं ।
कल्की कृत्य क्षिपेत्तैले ततो मृद्वग्निनापचेत् ॥ ५७ ॥
सिद्धं तैलं वस्त्रपूतं शुभे पात्रे निधापयेत् ।
तस्याभ्यंगात्प्रशाम्यन्ति सर्वेपि विषमज्वराः ॥ ५८ ॥
कासश्वास प्रतिश्याय त्रिक पृष्ठ कटिग्रहाः ।
वात पित्तमपस्मार यक्षराक्षसभूतजाः ॥ ५९ ॥
कण्डू शूलांग दौर्गन्ध्य मंगस्फोटादिका रुजाः ।
गर्भिणी पुष्टिमाप्नोति गर्भश्चसुखमेधते ॥ ६० ॥

पीपल की लाख १ सेर को ४ सेर पानी में काढ़ा करके जब १ सेर रस शेष रहे तो उसमें १ सेर तिल का तैल डाल देना चाहिये और तैल से चार गुना दही का पानी और गौ का दुग्ध डालना फिर सौंफ, असगन्ध, हलदी, देवदारु, रेणुका, कुटकी, मूर्वा, कुष्ठ, मुलहठी, मंजीठ, पद्मकाष्ठ, खस, खरेंटी, जटामांसी, प्रियंगु, मोथा चन्दन, रास्ना, यह सब एक तोला प्रत्येक लेकर कल्क करके तैल में डालकर हलकी आग देकर पकाये, फिर सिद्ध हो जाने पर कपड़े से छानकर अच्छे बरतन में रख दे। इसकी मालिश करने से सब प्रकार के विषमज्वर, कास, श्वास, प्रतिश्याय, त्रिक, पीठ,

और कमर की पीड़ा, वात तथा अपस्मार यक्ष राक्षस भूत से होने वाले ज्वर, खारिश, शूल, अंगों की दुर्गन्ध, स्फोटादियों की पीड़ा दूर होती है गर्भिणी को मलने से पुष्ट करता है और गर्भ सुखी होता है ॥ ५४-६० ॥

लघुलाक्षादितैलम्—

लाक्षारससमं तैलं प्रस्थं मस्तु चतुर्गुणं ।
अश्वगन्धानिशादारु कौन्ती कुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ ६१ ॥
लाक्षाहरिद्रा मञ्जिष्ठा कल्कै स्तैलं विपाचयेत् ।
षड् गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ ६२ ॥

लाख के रस के बराबर १ सेर तैल तथा चार गुणा दही का पानी असगन्ध, हलदी, देवदारु, प्रियंगु, कुठ मोथा, चन्दन, लाख दारुहल्दी मजीठ, इनके कल्क से तैल पकाये छः गुणा कांजी देकर तो यह तैल दाह तथा शीत ज्वर का नाश करता है ॥६१-६२॥

महाज्वराङ्कुशोरस—

रसतो द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यं च टंकणं ।
रस तुल्यं विषं योज्यं मरिचं पञ्चधाविषात् ॥ ६३ ॥
कट्फलं दन्ति वीजं च प्रत्येकं मरिचोन्मितं ।
ज्वरां कुशो रसो ह्येष चूर्णयेद्याम मात्रकम् ॥ ६४ ॥
माषेकेन निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम् ।

पारा से दूनी गन्धक, गन्धक के तुल्य सुहागा तथा विष पारे के तुल्य तथा विष से पांच गुणा मरिच, कायफल, जमालगोटे के वीज यह दोनों मरिच के बराबर इनको एक प्रहर घोटकर ज्वराङ्कुश नाभरस तय्यार होता है यह शीघ्र जीर्ण ज्वर तथा त्रिदोष ज्वर को हरे ॥ ६३-६४ ॥

रसः—

रसं गन्धं विषं ताम्रं जैपालं गुग्गुलुस्तथा ॥ ६५ ॥
गुटी बलासिता क्षौद्र युक्ता सर्व ज्वरापहा ।

पारा, गन्धक, विष, ताम्र, जमालगोटा, गुगुल, खरैटी, मिश्री, शहत इन से बनाई हुई गोली सब ज्वरों को नाश करती है ॥६५॥

रसहिंगुल जैपाल वृद्धया दन्त्यम्बु मर्दितः ॥ ६६ ॥

द्वौयामौ ज्वरनाशाय गुञ्जैका सितया सह ।

पारा, शिंगरफ, जैपाल बीज इन तीनों को क्रम से बढ़ाकर (अर्थात् १. २. ३ भाग लेकर जमालगोटे की जड के पानी से दो पहर तक मर्दन करके १ रत्ति मिश्री के साथ ज्वर के नाश करने के लिये दे। इस रस में पारे के स्थान पर यदि रससिन्दूर डाला जाये तो अच्छा होगा।

इति श्री ज्वरतिमिरभास्करे जीर्णज्वर चिकित्सानाम-
द्वादशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

शोधनस्यलक्षणमाह—

स्थानान्निष्कासना द्वापि वहिरभ्यन्तराश्रितान् ।
समेत्य शोधयेद्दोषान् देहे संशोधनं मतम् ॥ १ ॥
नशाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरे कुर्वीत शोधनम् ।
वमनैश्च विरेकैश्च वस्तिभिश्च यथाक्रमम् ॥ २ ॥
ज्वरानुपाचरेद्धीमान्कफ पित्ताऽनिलोद्भवान् ।
संसृष्टैः सन्निपतितैरेकानेकोल्वणैः समैः ॥ ३ ॥
ज्वरान्दोषैः क्रमापेक्षी यथोक्तै रौषधैर्जयेत् ।
स्नेहस्वेदाव कृत्वैव यस्तु संशोधनं पिबेत् ॥ ४ ॥
दारु शुष्कमिवारामे देहस्तस्य विनश्यति ।

बाहिर तथा देह के भीतर स्थित हुए दोषों को स्थान से निकाल कर देह का शोधन करने को शोधन कहा है। जो उक्त प्रकारों से ज्वर शान्त न हो तो ऐसे ज्वर में शोधन करे। अर्थात् कफपित्त और वात से होने वाले ज्वरों को क्रम से वमन, विरेचन तथा वस्ति द्वारा चिकित्सा करे। मिले हुए दोषों से, सन्निपात से, एक दोष से, अनेक वृद्ध दोषों से तथा समदोषों से होने वाले ज्वरों को क्रम की अपेक्षा से यथादोष को हरने वाली औषधियों से जीते स्नेह तथा स्वेद देने के बिना ही जो व्यक्ति शोधन औषधी पीता है उस पुरुष की देह बाग में सूखे हुए वृक्ष की तरह नाश को प्राप्त हो जाती है ॥ १-४ ॥

पञ्चकर्माणाह—

पाचनं स्नेहनं स्वेदं वमनं रेचनं क्रमात् ॥ ५ ॥
पञ्चकर्म तथान्येद्वे शिरानस्यं यथोचितं ।

पाचन करना, स्नेह पिलाना, स्वेद करना, वमन देना, विरेचन करना क्रम से यह पांच कर्म होते हैं तथा दो और भी हैं अर्थात् शिरा से रक्त निकालना तथा नसवार देना इन्हें यथादोष वा यथाकाल प्रयुक्त करना चाहिये । ५ ॥

पाचनम्—

क्षुद्रा शुण्ठी स धान्याकं क्वाथः स्यात् पाचने हितः ॥ ६ ॥

छोटी कटेरी, सुण्ड, धनियां इनका क्वाथ पाचन में हित होता है

स्नेहनम्—

छागं यूषं घृतं वाथ मुद्गयूषं घृतौदनम् ।
भक्षयेद्वा पिबेद्रात्रौ सघृतं सैन्धवं बुधः ॥ ७ ॥

बकरे के मांस का यूष और घृत अथवा मूंगी का यूष और घृत चावल मिलाकर खाये अथवा रात्रि में लवणयुक्त घृत पीवे तो अच्छा स्नेहन होता है ॥ ७ ॥

स्वेदनम्—

सर्पाक्षी सैन्धवं रास्ना यष्टी प्रति पलंपलं ।
सक्तुकस्य पलान्पञ्च दधि तैल घृतैः सह ॥ ८ ॥
सर्वैश्चोष्णी कृतः स्वेदो ज्वर मूर्धशिरोर्त्तिनुत् ।

सरहट बूटी, लवण, रासना मुलठी, इनको एक २ पल तथा सक्तु के पांच पल अर्थात् २० तोला, दही, तैल और घृत के साथ सबको गरम कर पसीना देने से मस्तक तथा सिर की पीड़ा और ज्वर को हरता है ॥ ८ ॥

वमनम्—

आमाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम् ॥ ९ ॥
सन्तर्पणोत्थे वमनं पिप्पली लवणाम्बुना ।
अपक्वं वमनं दोषान्पाच्यमानं विरेचनम् ॥ १० ॥
निर्हरेद्वमनस्यान्तः पाकं न प्रतिपालयेत् ।
शर्करा माक्षिकाम्भोभिर्दाह तृष्णोल्वणे ज्वरे ॥ ११ ॥

आमाशय में दोष के जाने पर बलवान् मनुष्य के बल की रक्षा करता हुआ तर्पण से बढ़े हुए दोष में पिपली तथा लवण के पानी से अपक्व दोष को वमन देकर तथा पच्यमान दोष को विरेचन से निकाले वमन हो जाने के पीछे दोष पाक की प्रतीक्षा न करे। चीनी मधु तथा जल से जिस ज्वर में दाह तथा तृष्णा बढ़ी हुई हो उस में वमन कराये ॥ ६-११ ॥

ज्वरे प्रच्छर्दनं शस्तं मद्यैर्वा तर्पणेन वा ।
कृष्णा मदन सिन्धूत्थ कल्कं क्षौद्रसमन्वितम् ॥ १२ ॥
पाययेन्मधुक क्वाथ मेतद्वमनमुत्तमं ।
कुमारी तैल कर्षैकं पीत्वा कोष्ण जलेन तु ॥ १३ ॥
विषमं तु ज्वरं हन्ति वमनेन चिरन्तनं ।
देवदाली फलानां तु चूर्णं तैलेन पेषयेत् ॥ १४ ॥
गुटिका गुड़ संयुक्ता वमनं कुरुते भृशम् ।

ज्वर में मद्य से वमन करना हित होता है अथवा तर्पण हित होता है। पिप्पली, मैनफल, लवण इनका कल्क मधु से मिलाकर मुलठी के काढ़े के साथ पीवे तो यह उत्तम वमन है। कुमारी तैल एक तोला गरम जल से पीकर वमन करने से चिरकाल के विषमज्वर का नाश करता है। घग्गर बेल के फलों का चूर्ण तैल के साथ पीसे और गुड़ के साथ गोली बनाकर खावे तो अत्यन्त वमन करती है।

वमनविधिमाह—

स्निग्धं स्विन्नतरं सम्यग् जानुमात्रासने स्थितम् ॥ १५ ॥
कण्ठमेरण्ड नालेन संस्पृशन्वामयेद् भिषक् ।

विरेचनविधिमाह—

स्निग्ध स्विन्नायवांताय प्रदातव्यं विरेचनम् ॥ १६ ॥
अन्यथा योजितं ह्येतत् ग्रहणी दोषकृन्मतं ।

स्नेह देकर तथा स्वेदन करके वमन योग्य मनुष्य को जो जानु मात्र आसन पर बैठा है उसके कण्ठ को एरण्ड की नाल से स्पर्श कराता हुआ वैद्य वमन कराये। आगे विरेचन का प्रकार कहते हैं—

स्निग्ध तथा स्वेद युक्त व्यक्ति को तथा वमन लेने के अनन्तर

१ शमन मिति वा पाठः ।

विरेचन देना चाहिये, इससे विपरीत दिया हुआ विरेचन ग्रहणी दोष को करने वाला माना है ॥ १५-१६ ॥

पित्तेन स्यान्मृदुःकोष्ठः क्रूरो वात कफाश्रयात् । १७ ॥
मध्यो मध्यम दोषत्वान्मात्रा योज्यानुरूपतः ।
पक्के तु शिथिले दोषे ज्वरे वा विष मादते ॥ १८ ॥

पित्त से मृदुकोष्ठ होता है और वायु से क्रूर कोष्ठ तथा कफ से मध्यकोष्ठ होता है और समदोषों से मध्यम कोष्ठ होता है इस लिये जैसा कोष्ठ हो उसके अनुकूल ही मात्रा का प्रयोग करना चाहिये। पके हुए तथा शिथिल दोष में अथवा विषम ज्वर से रहितज्वर में विरेचन की मात्रा का प्रयोग करना ॥ १७-१८ ॥

त्रिफलाद्योमोदक—

मोदकस्त्रिफलाश्यामा नीलिका गुड़ कल्पितः ।
मोदक स्त्रिसुगन्धाढ्यो रेकात्सर्वज्वराञ्जयेत् ॥ १९ ॥
त्रिफलां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ।
ज्वराद्विमुच्यते पीत्वा मृद्विकाभिः सहाभयां ॥ २० ॥
मधुका रग्वध द्राक्षा तिक्ता पाठा फलत्रिकैः ।
स पटोलैः कृतः क्वाथो रेचनं स्याज्ज्वरापहम् ॥ २१ ॥

त्रिफला, तिरवी, नीली, तथा गुड और दालचीनी, इलाची, तेजपता मिलाकर मोदक बनाय तो यह विरेचन से सब ज्वरों को जीतता है त्रिफला अथवा त्रायमाणा को दूध के साथ ज्वर वाला पीवे। मुनक्का तथा हरड़ का क्वाथ पीकर ज्वर से मुक्त हो जाता है। मुलठी, अमलतास, मुनक्का, कुटकी, पाठा, त्रिफला, परवल इनका काढ़ा करके पीने से ज्वर का नाश होता है ॥१९-२१॥

त्रिवृतेन्द्रिवरा दारु कटुकारग्वधैः कृतः ।
यावशूक युतः क्वाथो मलभेदी ज्वरापहः ॥ २२ ॥

त्रिवृतादिगुटी—

त्रिवृत् कृष्णा हरीतक्यास्त्रिचतुपञ्चभागिकः ।
गुटिका गुड़ तुल्यांशा विड्बन्धस्यगदापहा ॥ २३ ॥
पटोलाऽरग्वधं तिक्ता विशाला त्रिफला त्रिवृत्।

स क्षार सैन्धवोपेतः क्ाथो रेकैः ज्वरापहः ॥ २४ ॥
विरेके चाति संवृत्ते वमनं कारयेद् भिषक् ।
विरेकार्थौषधं पीतं सम्यङ्नो यदि रेचयेत् ॥ २५ ॥
पिवेदुष्णाम्भसः तत्र सैन्धवंदोषशान्तये ।

तिरवी आदि औषधों का किया हुआ काढ़ा जौंखार युक्त पीने से मल को भेदन करता है और ज्वर का नाश करता है।

तिरवी, पिपली, हरड़ अर्थात् हरड़ ५ भाग, पिपली ४ भाग तिरवी ३ भाग लेकर सबके बराबर गुड मिलाकर गोली बनाकर खाने से मल के रुकने की व्याधि दूर होती है। परवलादि द्रव्यों से काढ़ाकर जौखार और लवण मिलाकर पीने से ज्वर का नाश करता है।

विरेचन के अधिकतर होने से वमन कराना चाहिये।

विरेचन की औषधी पीने से यदि विरेचन न हो तो गरम पानी तथा लवण मिला कर दोष शान्ति के लिये पीवे तो हित होता है॥

सारण सुन्दरोरसः—

सूतं गन्धं समं शुद्धं सप्तधा भावयेत्क्रमात् ।
स्नुह्यर्क दुग्धैः श्रीखण्ड द्वय श्यामाभयारसैः ॥ २६ ॥
समं जैपालजं चूर्णं देयमेकत्रचूर्णयेत् ।
गुडेनाष्ट गुणोदेयो वल्लयुग्मोष्ण वारिणा ॥ २७ ॥
मलः पूर्वं जलं पश्चात्ततश्चामः शनैः शनैः ।
उदराच्च विनान्त्राणि सर्वं निर्याति किल्किषम् ॥ २८ ॥
जाते विरेके संशुद्धे पथ्ये दध्योदनं हितम् ।
जयेज्ज्वरादिकान् रोगान् रसः सारणसुन्दरः ॥ २९ ॥

शुद्ध पारा, गन्धक बराबर भाग लेकर कज्जली बना लेना फिर थूहर और आक के दूध तथा चन्दन दोनों प्रकार की तिरवी और हरड़ इन के रस की भवाना देना और बराबर का जैपाल वीज शुद्ध डाल कर इकट्ठा चूर्ण कर आठ गुणा गुड़ मिला कर गोली २ रति की बना कर गरम पानी से देना, इस के देने से पहिले मल और पानी निकलता है पीछे आम शनैः २ निकलती है पेट से विना आन्त्रों के सभी दोष निकल जाता है॥

विरेचन हो जाने पर तथा देह के शुद्ध होने पर पथ्य के लिये दही और चावल खाने के लिये देना हित होता है। यह सारण सुन्दर रस ज्वरादि सब रोगों को जीतता है ॥ २६–२६ ॥

रेकज्वरारि रसः—

सैन्धवेन युतं वज्री क्षीर मग्नौविपाचयेत्।
द्विवल्लगुटितं पीतं रेकाज्ज्वर विनाशनम् ॥ ३० ॥

सैन्धवलवण को थूहर के दुग्ध की भावना देकर उसे संपुट कर अग्नि में फूंक देना इसकी २ रत्ति की मात्रा पीने से विरेचन होने से ज्वर नाश हो जाता है ॥ ३० ॥

लाक्षादि गुटि—

लाक्षैला हेमजानांतु गुटिका वल्लद्वयोन्मिता।
जलैः पीता मलापातं कृत्वा हन्ति ज्वरोदयम् ॥ ३१ ॥

पीपल की लाख, इलाची, चोक इनसे बनाई हुई २ रति की गोली जल से पीने से मल को निकालकर ज्वर को नाश करती है।

अथ नस्यविधि माह—

जीर्णज्वरेकफे वृद्धे दद्यान्मूर्धविरेचनं।
शिरोगौरव शूलघ्नं मिन्द्रिय प्रतिबोधनम् ॥ ३२ ॥
मधुना वाथ तैलेन ज्वरघ्नेन प्रयोजयेत्।
हिंगु सैन्धव संयुक्तं नस्यं स्यादनु बंधनम् ॥ ३३ ॥
विश्वा वा सगुडा वाथ शर्करा घृत केसरं।

नस्ये विवर्जनीयमाह—

भुक्त वत्यथ स्नाते नस्यं योज्यं न कर्हि चित् ॥ ३४ ॥
कृते नस्ये शिरः स्नानं क्रोधादींश्चविवर्जयेत्।
हृत दोषो भ्रमार्त्तस्तु लिह्यात् क्षौद्र सिताऽभयां ॥ ३५ ॥

पुराने ज्वर में कफ के बढ़ जाने पर मूर्ध विरेचन देना चाहिये। नस्य देने से सिर का भारीपन और शूल का नाश होता है। तथा इन्द्रियों को अपने २ विषय में ज्ञान होती है। वहनस्य मधु से अथवा ज्वर नाशक तैल से प्रयुक्त करे। हींग, लवण से युक्त की हुई नस्य दोष नाशक होती है। सुण्ड अथवा गुड़ अथवा चीनी, घृत, और

केसर इनकी नस्य देना भी हित होती है।

भोजन करके, स्नान करने पर नस्य कभी नहीं प्रयुक्त करनी चाहिये। नस्य करने पर शिर का स्नान और क्रोध आदियों को छोड़ देना चाहिये। दोषों के निकल जाने पर भ्रम से पीड़ित मनुष्य को मधु, मिश्री, और हरड़ चटानी चाहिये ॥ ३२—३५ ॥

वस्ति प्रयोगमाह—

स्नेह वस्ति निरूहौ तु योज्यौ वातविकारिषु ।
नोचितः क्षीण कुष्टार्शः छर्दि मेहोदरादिषु ॥ ३६ ॥
कल्कै मंदन मुस्ताभिः पिप्पल्यामधुकस्य च ।
वत्सकस्य च संयुक्तां वस्ति दद्याज्ज्वरापहाम् ॥ ३७ ॥
प्रियंगु मदनं मुस्तं मधुकं स सिताह्वयं ।
कल्कः सर्पि गुड़क्षौद्रै ज्वरघ्नो वास्तिरुत्तमः ॥ ३८ ॥

स्नेहवस्ति तथा निरूहवस्ति यह दोनों वातविकार युक्त रोगी को देनी चाहिये। क्षीण रोगी को कुष्ठ तथा बवासीर में, छर्दि में प्रमेहरोग तथा उदररोगों में यह हित नहीं होती। मैनफल, मोथा से पिपली और मुलठी, कुडा इनसे दी हुई वस्तिज्वर को नाश करने वाली होती है। प्रियंगु, मैनफल, मोथा, मुलठी, सफेद सुहांजना इनका कल्क घृत गुड़ तथा मधु से युक्त की हुई वास्ति उत्तम तथा ज्वर नाशक होती है ॥ ३७-३८ ॥

शुद्ध मार्गे हृते दोषेसुप्रसन्नेषु धातुषु ।
गताङ्ग शूलः लघ्वङ्गः सद्यो भवति विज्ज्वरः ॥ ३९ ॥

वस्ति के देने से मार्गों के शुद्ध हो जाने पर दोषों के निकल जाने पर पुरुष के अंगों का शूल चला जाता है और शरीर हलका होकर शीघ्र देह ज्वर रहित हो जाती है ॥ ३० ॥

निरूह वस्तिमाह—

ज्वर क्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहेण हरेन्मलान् ॥ ४० ॥
पक्वाशयमति दोषे निरूहं सानुवासनम् ।
सरुजेनीरुजे कार्यं सोदावर्त्ते निरुहणम् ॥ ४१ ॥
आरग्वधमुशीरञ्च मदनस्य फलानि च ।

पयर्यश्चतस्रो मधुकै र्निंयूहमुपकल्पयेत् ॥ ४२ ॥

ज्वर से क्षीण हुए रोगी के लिये वमन तथा रेचन देना नहीं चाहिये इस लिये इच्छानुकूल दुग्ध से उसके मलों को निकाले। पक्वाशय में अधिक दोष होने पर निरूह तथा अनुवासन वस्ति हित है। पीड़ा युक्त वा पीड़ा रहित में उदावर्त्त साथ हो तो निरूहवस्ति करनी चाहिये। अमलतास, खस मैनफल, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और मुलठी आदि से क्राथ बनाकर निरूह वस्ति देना ॥ ४०–४२ ॥

पटोलारिष्ट पत्राणि सोशीरं चतुरंगुलं।
ह्रीवेर रोहिणी तिक्ताश्वदंष्ट्रा मदनानि च ॥ ४३ ॥
स्थिराबला च तत्सर्वं पयसार्धोदकं शृतं।
क्षीरावशेषं निर्यूहं संयुक्तं क्षौद्र सर्पिषा ॥ ४४ ॥

निरूहकल्पनाविधिमाह—

कफपित्तानिलोत्थेषु विकारेषु यथाक्रमम्।
एकादश द्वौ च षट् च कषायस्य पलामता ॥ ४५ ॥
स्नेहस्यैक चतुः षट् च चत्वारो मधुनस्तथा।
पल द्वयं तु कल्कस्य कर्षःस्यात्सैन्धवस्य च ॥ ४६ ॥
रसक्षीराम्ल मूत्राणामेकैकं च क्षिपेत्पलं।
निरूहकल्पनामात्रा कथितैषा महर्षिणा ॥ ४७ ॥

परबल, निंब इन दोनों के पत्र, खस, अमलतास, नेत्रबाला, कुटकी, भखड़ा, मैनफल, पृष्टपर्णी, खरेंटी इन सब औषधियों को दुग्ध में डालकर दूध से आधा पानी डाल दे फिर इनको पकाले जब दूध शेष रह जाये तो मधु और घृत मिलाकर प्रयोग करना। कफ पित्त और वात से उत्पन्न विकारों में यथाक्रम ११ पल कफ में दो पल पित्त में छः पल वात में कषाय की मात्रा डालना और स्नेह की मात्रा कफ में एक पल, पित्त में चार पल तथा वात में छः पल डालना और चार पल मधु की मात्रा और दो पल कल्क की मात्रा और इसमें एक तोला लवण की मात्रा देनी तथा रस, दुग्ध और मूत्र की एक २ पल मात्रा देनी चाहिये यह सब निरूह की मात्रा महर्षियों ने कही है ॥ ४३–४७ ॥

अथानुवासन वस्तिमाह—

कटि पृष्ट गुदार्त्तस्य दीप्ताग्नेरनुवासनं।
ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्त दृढ़ामये ॥ ४८ ॥
रूक्षबद्धपुरीषाय प्रदद्यादनुवासनं।
पटोल पिचुमन्दाभ्यां गुडूच्यामधुकेन वा ॥ ४६ ॥
मदनैश्चश्रृतः स्नेहो ज्वरघ्नः सानुवासनः।
पटोल मदनारिष्ट गुडूची मधुकैः शृतम् ॥ ५० ॥
श्वदंष्ट्रा मदनं शृंगी मधुकारिष्ट वासकैः।
अश्वगन्धादि तैलस्य कार्षकैराढकं पचेत् ॥ ५१ ॥
अनुवासनिकं तैलं सर्वज्वर विनाशनम्।

कमर, पीठ, गुदा की पीड़ा से युक्त दीप्ताग्नि वाले पुरुष को अनुवासन हित होती है। पुराणे ज्वर में, क्षीण रोगी में, चिरकालिक रोगी में रूक्ष और बद्ध मल वाले के लिये अनुवासन वस्ति देनी चाहिये। परवल, नींम, गिलोय, मुलठी अथवा मैनफल से किया हुआ काढ़ा स्नेहयुक्त अनुवासन वस्ति द्वारा प्रयोग किया हुआ ज्वर नाशक होता है परवल, मैनफल, नींम, गिलोय, मुलठी इनसे बना काढ़ा और भखड़ा, मैनफल, काकड़ासिंही, मुलठी, नींम, वासा, असगन्ध इन औषधियों को एक २ तोला लेकर ४ सेर तेल पकाये। यह अनुवासन वस्ति योग्य तैल सेवन करने से सब ज्वरों का नाश करता है ॥ ४८-५२ ॥

वर्त्ति प्रयोगमाह—

उदरस्य समाध्माने उदरं सरुजं दिहेत् ॥ ५२ ॥
दारुहैमवती कुष्ठ शताह्वा हिंगु सैन्धवैः।
अम्ल पिष्टैः सुखोष्णैश्च पवनै रूर्ध्वमागतैः ॥ ५३ ॥
ऊर्ध्वगे पवने चैव ह्याध्मानं यदि जायते।
बद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्त्तिं निधापयेत् ॥ ५४ ॥
श्यामा त्रिवृत् पिप्पली कुष्ठमाषा फलत्रिकम्।
नीलिनी सप्तला चैव शतपुष्पा शतावरी ॥ ५५ ॥

उदर के फूल जाने पर पीड़ा युक्त उदर को देवदारु, वच, कुठ,

सौंफ, हींग तथा सैन्धवलवण से कांजी में पीसकर कुछ गरम करके वायु के ऊर्ध्व गमन में उदर पर लेप करे। ऊपर को प्राप्त वायु में यदि अ ध्मान हो जाये तो जिसका मलमूत्र रुक गया हो ऐसे पुरुष को नीचे लिखे द्रव्यों से गुदा में वर्ति धारण कराये। काली निशोथ तिरवी, पिप्पली, कुठ, मांइ, त्रिफला, नील के पत्ते, सप्तला (थूहर) और सौंफ, शतावर इन द्रव्यों को पीसकर गुदा में वर्ति दे ॥ ५२–५५ ॥

त्वगनागदन्त्या गुड सैन्धवेन वचाफले मूत्र समासुपिष्टा।
वर्तिःकृता त्र्यगुंल पर्वदीर्घा स्वांगुष्ठ माना यव सन्निभा च ॥ ५६ ॥
स्नेहान्विताभ्यक्त गुदे प्रणीता दोषानधो निर्हरति प्रसह्य।

दालचीनी, नागदौन, गुड, लवण, वच, त्रिफला, गोमूत्र इनको लेकर भली प्रकार पीसकर वर्ति तीन पर्व लम्बी अपने अंगूठे के बराबर और जौं के समान बनाकर घृत या तैल से भिगोकर गुदा में दी हुई दोषों को शीघ्र नीचे निकाल देती है ॥ ५६ ॥

गृहधूम गुड़ सर्पि लवणं[२] कांजिकैः सह।
पिष्ट्वा विरचिता वर्त्तिः स्विन्नानां मलनाशिनी ॥ ५७ ॥
त्रिवृताकाञ्चनी चूर्णं गुडेन च घृतेन च।
वर्तिः कृता गुदे क्षिप्ता मलान्सम्यग्विनिर्हरेत् ॥ ५८ ॥

घर का धुंआं, गुड, घृत, लवण इनको कांजी के साथ पीसकर वर्ति बनाय स्वेद दिये हुए पुरुष को देने से मल का नाश करने वाली होती है। तिरवी, हलदी इनका चूर्ण गुड और घृत के साथ वर्ति बनाकर गुदा में रखी हुई मलों को भली प्रकार निकालती है ॥ ५७–५८ ॥

पक्वदोषानिर्हरणे दोषमाह—

पक्वोह्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययं।
विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलवद् व्यापदोपि वा ॥ ५९ ॥

पक्व दोषों को यदि न निकाला जाये तो वह देह में ठहरे हुए अत्यन्त क्लेशकारक होते हैं अथवा विषमज्वर को कर देते हैं और

---

१ दोषाश्च सद्यो विनिहन्तिप्रमिति वा पाठः।

२ राज केति वा पाठः।

वैसे ही मल को रोकने से जो रोग उत्पन्न होते हैं उन्हें कर देते हैं।

दोषाकदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः ।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ६० ॥
शीतोष्ण स्निग्धरूक्षाद्यै ज्वरो यस्य न शाम्यति ।
शाखानुसारी तस्याशु मुञ्चेद्वा क्रमाच्छिराम् ॥ ६१ ॥
विषमो वा पुराणो वा नयात्येभिरुपक्रमैः ।
तदाक्लोम्नि यकृत् + प्लीह्नि वन्हिकर्म प्रयोजयेत् ॥ ६२ ॥

लंघन तथा पाचनादि से जीते हुए दोष कभी कोपको प्राप्त हो जाते हैं परन्तु जो संशोधित (अर्थात् वमन विरेचन से शुद्ध किये) हों उनका फिर कोप नहीं होता ।

ठण्डी, गरम, तथा स्निग्ध वा रूक्ष आदि चिकित्सा करने से जिसका ज्वर शान्त नहीं होता वह शाखा अनुसारी हो जाता है उसकी शिरा क्रम से छुड़ानी चाहिये ।

विषमज्वर अथवा पुराना ज्वर इन उपक्रमों से जो शान्त न हो तो उसके क्लोम, यकृत् वा प्लीहा में अग्नि कर्म करना चाहिये ।

अगदानाह—

वीजं पलाशजं गुञ्जा निशादन्ति भवं फलम् ।
क्षार द्वय वाब्धिशोषं कन्दं चामर संज्ञकम् ॥ ६३ ॥
रसोनं टंकणं चूकं तुत्थकं दरदं विषम् ।
भागोत्तर मिदं कृत्वा गोमूत्रेण सुभावितम् ॥ ६४ ॥
योजयेन्निबुकद्रावैर्ज्ञात्वामय बला बलम् ।
ज्वरान्सर्वान्निहन्त्याशु सन्निपातमहोत्कटान् ॥ ६५ ॥
श्लेष्मणः सम्भवान् रोगां स्तथा वै सर्व वातजान् ।
अमोघ वीर्यो रोगेष्व गदोयं गरुड़ो पमः ॥ ६६ ॥

ढाक के बीज, रतीयां, हलदी, जैपाल के बीज, जौंखार, सज्जीखार, समुद्रशोष, अमरकन्द, लहसन, सुहागा, चोक, नीलाथोथा, हिंगुल, मीठा तेलिया इन सब द्रव्यों को क्रम से उत्तरोत्तर अधिक लेकर गोमूत्र से भावना देकर फिर निंबु का रस देना फिर इसको व्याधिका बलाबल देखकर प्रयोग करें तो यह सब ज्वरों को शीघ्र

नाश करता है जो अत्यन्त उत्कट सन्निपात है उनका भी नाश करता है कफ से होने वाले और सब वातविकारों को हरता है यह रोगों में अमोघवीर्य है यह अगद गरुड़ के समान है ॥६३-६६॥

विष द्वयं च जैपालं तुत्थकोषण सादरं ।
सर्जीक्षार समायुक्तं गदोऽयं ज्वर स्वल्पजित् ॥ ६७ ॥
हरिद्राधात्री नवसार तुत्थमरिचं क्षारोग्रकूलं विषं ।
तुल्यांशं मृदितं सुनिम्बुक रसे सम्भावितं सप्तशः ।
तच्चेन्द्रो फलजै रसै रपि सकृद्रोहीत पित्तेन वा ।
आलेपादगदः समीरण रुजां शून्यत्व शल्यापहः ॥ ६८ ॥
रजनी सादरं तुत्थं खण्डं निम्बुकजैः रसैः ।
गदोऽयं सुकुमारेषु चारितोऽखिलरोगहा ॥ ६९ ॥

दोनों विष (अर्थात् सिंगिया विष और ब्राह्मणविष) और जमालगोटा, नीलाथोथा, मरिच, नवसादर, सज्जीखार, मिलाकर प्रयोग करने से यह अगद थोड़े में ही ज्वर को जीतता है ।

हलदी, आंवला, नसादर, नीलाथोथा, मरिच, सज्जीखार, दन्तिबीज, मीठा तेलिया, यह सब बराबर लेकर निंबु के रस से मर्दन कर सात बार भावना देना फिर तुम्मे के फलों के रस की एक बार और एकबार रोहू मछी के पित्त से भावना देना इस अगद के लेप करने से वात की पीड़ाओं को तथा शून्य भाव को दूर करता है ।

हलदी, नवसादर, नीलाथोथा, खण्ड, इनको नीम्बु के रस से मर्दन कर प्रयोग करने से बालकों के सब रोगों को जीतता है॥६७-६९॥

अभ्यंगा लेप सेकादी ज्ज्वरे जीर्णे त्वगाश्रिते ।
कुर्यादञ्जन धूमांश्च गण्डूष कवल ग्रहान् ॥ ७० ॥
विभज्य शीतोष्ण करान् यथादोषं प्रकल्पयेत् ।

त्वचा में स्थित हुए दोषों के तथा जीर्णज्वर में मालिश लेप तथा सेकादियों को करे तथा अञ्जन, धूम्रपान, गंडूष धारण और कवलादियों का प्रयोग शीतोष्ण दोषों के भेद को जानकर प्रयोग करें॥७०॥

कुम्भदानमाह—

कलशमरुणमम्ब सर्पिषा सम्भृतं वा-

मधु जल गुड़ तिलै स्तण्डुल द्रोण संस्थम्
सितासित युगेनावेष्टितं वांश वृत्तं
श्रुत विमल तमाय ब्राह्मणाय प्रदद्यात् ॥ ७१ ॥
सर्पि र्यवास्तिलै होमः सोम चूडस्य तुष्टये।
सुवर्णं दक्षिणां यच्छन् मन्त्रमेतदुदीरयेत् ॥ ७२ ॥

मन्त्रः—

महेश देव देवेश वासुदेव परात्पर।
कुम्भेनानेन दत्तेन ज्वरः क्षिप्रं प्रणश्यतु ॥ ७३ ॥
सततं सन्निपातं तृतीयक चतुर्थकौ।
पाक्षिकं मासिकं चापि सांवत्सरिकमेव च ॥ ७४ ॥
नाशयेतामसुं क्षिप्रं वासुदेव महेश्वरौ।
कलश मरुणमीदृशं प्रदाय क्षिति विबुधाय शुचिश्रुतान्वयाय।
तदहनि तिलमाष लोहदानं विदधीताथ दुग्धपानम् ॥ ७५ ॥

उत्तम ताम्र का घट लेकर उस में घी, वा शहत, जल गुड़ वा तिल भर कर १६ सेर चावलों के ऊपर जो रखा हो उसे काले तथा सफेद वस्त्रों से लपेट कुलीन सदाचारी तथा निर्मल बुद्धि वाले ब्राह्मण को देना चाहिये, पीछे घृत, जौं, और तिलों से शंकर की प्रसन्नता के लिये हवन करके सोना दक्षिणा में देता हुआ पुरुष आगे कहे हुए मन्त्रों को उच्चारण करे " महेशादितः महेश्वरान्तः " यह मन्त्र कहा है ॥ इस प्रकार पृथ्वी के देवता पवित्र तथा उत्तम कुल में उत्पन्न ब्राह्मण को यह ताम्रमय घट देकर उसी दिन तिल माष, लोह दान करे और आप दुग्ध पीवे तो सततादि ज्वर सब नष्ट होजाते हैं। ७१—७४ ॥

अथ मकरदानमाह—

दद्यादुद्य ज्ज्वर विरतये राजतं वापि ताम्रं।
गद्याणानां सुपरिघटितं त्रिंशता वा पलानां।
माद्यन्मूर्तिं मकर ममलं रत्न लांगूलजिह्वं-
कान्तं भास्वत् कनक नयनं कृष्ण वस्त्रा वृतांगम् ॥ ७६ ॥
अभिनव घृत पूर्णं कांस्य पात्र द्वयं स्यात्।

तस्यात्पुच्छोदकभृति पृथौ ताम्रपात्रे स्थितस्य ।
अत्याचार प्रणय निधये निर्धनाय द्विजाय ।
स्तुत्यानत्यावसुवितरणैः साधुसन्तोषिताय ॥ ७७ ॥
जुहुया द्वैष्णवैर्मन्त्रै माहेशैश्च शुभे दिने ।
ददत्पुराण घटितं मन्त्र मेनमुदीरयेत् ॥ ७८ ॥
नमो महेश देवेश वासुदेव परात्पर ।
मकरस्यास्य दानेन ज्वरः क्षिप्रं प्रणश्यतु ॥ ७९ ॥
एकान्तरं सततं च तृतीयक चतुर्थकौ ।
पाक्षिकं मासिकं चापि सांवत्सरिकमेवच ॥ ८० ॥
नाशयेतामम्मुं क्षिप्रं वासुदेव महेश्वरौ ।

बढ़े हुए ज्वर की निवृत्ति के लिये चान्दी अथवा ताम्बे की १५ तोले अथवा ३० पलों की बड़ी सुन्दर मकर की मूर्ति बनाय जिस की पूंछ में रत्न और जिह्वा स्वर्ण की और नेत्र भी स्वर्ण से निर्माण कर काले कपड़े से उसे ढक दें और नवीन दो कांसी के पात्र घृत से भर कर पास रखे और उस की पूंछ को तांबे के पात्र में जल डाल कर उस में रखे फिर वेद जानने वाले सदाचार युक्त नम्रभाव से युक्त निर्धन ब्राह्मण की स्तुति तथा उस को प्रणाम कर के अधिकतर धन से सन्तुष्ट कर। विष्णु तथा महेश के मन्त्रों से शुभ दिन में हवन करे फिर नीचे लिखे मन्त्र को उच्चारण करता हुआ दे दे॥ "नमो महेशादि" उक्त मन्त्र पढ़े॥ ७९–८० ॥

इति श्री ज्वरतिमिरभास्करे शोधनादि प्रभेदो नाम त्रयोदशोऽध्यायः।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

अन्येऽप्यजीर्ण दृष्ट्यसृङ्मलजा गर्भिणी भवाः ।
सूतिकाबालविस्फोट शीतला जनिता ज्वराः ॥ १ ॥
क्रिमिजः कालजश्चैव वक्ष्ये तेषां चिकित्सम् ।

और भी अजीर्ण से, दृष्टिदोष से, रक्त से, मल से, गर्भ से, सूतिका को, बालकों को, विस्फोट से, शीतला से उत्पन्न होने वाले ज्वर और कृमियों से, काल की विकृति से हो जाते हैं उनकी चिकित्सा कहते हैं।

अजीर्णजनितज्वरमाह—

विट्को विरसोद्गारश्छर्दिः पीड़ा तथोदरे ॥ २ ॥
भवन्त्येतानि चिह्नानि विष्टब्धेऽजीर्णजेज्वरे ।
अजमोदा हरीतक्यौ तथा सौवर्चलं समम् ॥ ३ ॥
कर्चूरेण समांशेनाजीर्ण ज्वर नाशनम् ।

दस्त लग जाना, मुख की विसरता, डकार आना, वमन, पेट में पीड़ा का होना यह लक्षण विष्टब्ध हो जाने वाले अजीर्ण ज्वर में होते हैं। उसमें अजमोद, हरड़, सौंचललवण, तथा कचूर समभाग लेकर चूर्ण बनाकर खाने से अजीर्ण से होने वाले ज्वर को नाश करता है ॥ २–३ ॥

दृष्टिजमाह—

जृम्भोद्गारौ व्यथा भेद स्त्वशक्तिर्वमि दृष्टिजे ॥ ४ ॥
एतानि यस्यचिह्नानि सोऽपि दृष्टि भवोज्वरः ।
हिंगुमरिच पिप्पल्यौ किरातं शुण्ठी संयुतम् ॥ ५ ॥
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतं दृष्टिज्वर विनाशनम् ।

जम्भाई का आना, डकारका आना, पीड़ा, भेद होना, (अंगों का टूटना) बलनाश वमन का होना यह लक्षण जिस ज्वर में हो वह दृष्टि से होने वाला ज्वर होता है। उसमें हींग, मरिच पिपली, चिरायता, सुण्ड इनका चूर्ण गरम पानी के साथ खाये तो दृष्टि ज्वर का नाशहो।

रक्तजमाह—

अंगभंगोमुखे श्वासो गात्रस्थैर्याविरक्तता ॥ ६ ॥
तृष्णा मूर्च्छा तथाऽध्मानं लक्षणं रक्तजेज्वरे ।
द्राक्षाटरूषो बृहती हरिद्रा धान्याभयारेणु कृतः कषायः ।
क्षौद्रेणमिश्रो विनिहन्ति नूनं रक्तोद्भवं शूलयुतं ज्वरं च ॥ ७ ॥
रोहितं देवकाष्टं च वरुणं शिग्रुरेवच ।
हरिद्रा पिप्पलीमूलं क्राथो रक्त ज्वरं जयेत् ।
पल्लवानि करीरस्य मधुसाम्मिलितानि च । *
शोणित प्रभवस्तापः पीतैरेभिः प्रशाम्यति ॥ ८ ॥

---

* इत्याधिकं ख. पुस्तके ।

अंगों का टूटना मुख में श्वास, गात्र स्तब्ध तथा नेत्रों में लाली का होना तृष्णा, मूर्च्छा, तथा अफारा यह लक्षण रक्त से उत्पन्न ज्वर में होते हैं मुनक्का बांसा, कटेरी, हलदी, धनिया, हरड़, रेणु (अर्थात् पित्तपापड़ा) इनका किया हुआ काढ़ा रक्त से होने वाले ज्वर को जीते जो शूल युक्त हो। रूहढे की छाल, देवदारु, वरने की छाल और सुहाजने की छाल, हरिद्रा, पिपलीमूल इनसे बनाया हुआ क्वाथ पीने से रक्तजनित ज्वर को हरता है॥६-८॥

करीर वृक्ष के पत्तों का काढ़ा मधु मिलाकर पीने से रक्त से उत्पन्न ज्वर को दूर करता है ॥ ४ ॥

मलजनितमाह—

शोथ दाहौ प्रलापश्च भ्रमो मूर्छा शिरो व्यथा।
हिक्का छर्दिश्च शूलं च लक्षणं मलजे ज्वरे ॥ ९ ॥
कटुका पिप्पली मूलं मुस्ताश्चैवहरीतकी।
कृतमाल कृतः क्वाथो मलज्वर विनाशनः ॥ १० ॥

मुख का सूखना, दाह, प्रलाप और भ्रम, मूर्च्छा, शिर में पीड़ा, हिचकी वमन का आना, और शूल यह लक्षण मलज्वर में होते हैं। उसमें कौड़, पिपलीमूल, मोथा, हरड़, अमलतास इनसे किया हुआ कषाय मलज्वर का नाश करता है॥ ९-१० ॥

गर्भिणीज्वरमाह—

दोषैर्वातादिकागन्तुमानसै रुपतापजैः।
ज्वरोभवति गर्भिण्याः सातुयत्नाच्चिकित्सिता ॥ ११ ॥
चन्दंनसारिवा रोध्रे मृद्वीका शर्करान्वितम्।
क्वाथो कृत्य प्रदातव्यं गर्भिण्याज्वरशान्तये ॥ १२ ॥
मधुकं चन्दनो शीर सारिवा पद्म यष्टिकैः।
क्षौद्रोत्पलयुतः क्वाथोगर्भिण्या ज्वरनाशनः ॥ १३ ॥

वात, पित कफ आदि दोषों करके तथा मानसिक दुःख से और आगन्तु व्यथा से गर्भिणी को ज्वर हो जाता है उसमें रक्त चन्दन सारिवा, लोध, इनका क्वाथ करके शक्कर मिलाकर देने से गर्भिणी के ज्वर को नाश करता है। मुलठी, चन्दन, खस, सारिवा पद्माख, कमल इनके क्वाथ में शहद् मिलाकर देने से गर्भिणी के

ज्वर को नाश करता है ॥ ११-१३ ॥

ह्रीवेरारलुरक्त चन्दन बला धान्याक वत्सादिनी।
मुस्तोशीर यवासपर्पट विषा क्वाथं पिबेद् गर्भिणी।
नानावर्ण रुजातिसारकगदे रक्त स्रुतौ वा ज्वरे।
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः स्तन्यामये चूत्तमः॥१४॥

नेत्रबाला, अरलु, रक्तचन्दन, खरैटी धनिया, गिलोय, खस, जवासा, पित्तपापड़ा, अतीस, इनका क्वाथ गर्भिणी पीये तो नाना प्रकार की पीड़ा में अतिसार रोग में, रक्तस्राव में अथवा ज्वर में हित होता है यह योग मुनियों से पहिले स्तन्य रोगों में उत्तम कहा गया है।. १४ ॥

धन्वयासामृतोशीर क्वाथो वा ज्वर नाशनः।
पिबेद्विश्वमजा क्षीरैर्नाशये द्विषमज्वरम् ॥ १५ ॥
आम्रजम्बू त्वचा क्वाथो लेहयेल्लाजसक्तुभिः।
अनेनलीढ़ मात्रेण गर्भिण्या ग्रहणीं जयेत् ॥ १६ ॥
कुशकाशोरुबुकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च।
भृतं दुग्धंसिता युक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ १७ ॥

धमासा, गिलोय, खस, इनका काढ़ा ज्वरनाशक होता है। अथवा सुण्ड को बकरी के दुग्ध के साथ पीवे तो विषमज्वर को नाशता है। आम, जामन, इनकी छाल से काढ़ा करके लाजा से मिलाकर चटाने से ही गर्भिणी के ग्रहणी रोग को जीतता है। कुशा की जड़, काश तृण की जड़, एरण्ड की जड़ तथा भखड़े की जड़ इनको कूटकर दूध में पकाय मिश्री डालकर पीने से गर्भिणी की पीड़ा को शीघ्र हरता है॥ १५-१७ ॥

सेकावगाहनोलेपः शस्यते तत्र शीतलः।
रूक्षैर्मुद्गादि यूषैश्चाप्यश्नीयाच्छालितण्डुलान् ॥ १८ ॥

सेक तथा स्नान और लेप गर्भिणी के लिये शीतल ही हित होते हैं तथा रूक्ष मूंगी आदि का यूष शालि चावलों के साथ खाना चाहिये ॥ १८ ॥

सूतिकाज्वरमाह—

अंगमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता।

शोथ शूलातिसारौ च सूतिका ज्वर लक्षणम् ॥ १६ ॥
दीप्यौ रोहिण्याजाजीच वंशत्वक् खदिरं पृथु ।
स्वर्णोतमासनं वालं मिञ्जलाध्याम[1] पूगजम् ॥ २० ॥
काथो मोचरसोपेतः सद्यः सूत्याहित प्रदः ।
दशमूल कृतं तोयं कोष्णं च हविषान्वितम् ॥ २१ ॥
जयेत्पीतं सूतिरुजं द्रुतं पथ्याशिनः स्त्रियः ।

अजवायन, अजमोद, कुटकी, जीरा, तवाशीर, खैर, कालाजारी हरिद्रा, विजयसार, नेत्रवाला, समुद्रफल, कतृण, सुपारी, मोचरस इन का काढ़ा शीघ्र सूतिका ज्वर को हरता है" दशमूल का काढ़ा गरम करके घृत के साथ पिलाने से सूतिका ज्वर का नाश करता है" सूतिका ज्वर में अंगों में पीड़ा ज्वर, कांपना प्यास, गात्रों का भारी पन, शोथ, शूल, और अतिसार हो जाता है ॥ २१ । २३ ॥

सहचर मुस्त गुडूची भद्रोत्कट विश्व वालकैः ।
क्वथितं पेयमिदं मधुमिश्रं सद्योज्वरशूलनुत्सूत्या ॥ २४ ॥
देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ।
कट्फलं मुस्तभूनिम्ब तिक्ता धान्य हरीतकी ॥ २५ ॥
गज कृष्णा च दुःस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ।
बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥ २६ ॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धु रामठ संयुतम् ।
काथ मष्टावशेषं तु प्रसूतिं पाययेत्स्त्रियम् ॥ २७ ॥
शूलकासज्वर श्वास मूर्छा कम्प शिरोर्त्तिजित् ।
युक्तं प्रलाप तृड्दाह तन्द्रातिसारिण स्तथा ॥ २८ ॥
निहन्ति सूतिका रोगं वातपित्त कफोत्थितम् ।

वांसा, मोथा, गिलोय, केवटी मोथा, सुण्ड, नेत्रवाला इन से किया हुआ काथ मधुमिला कर पीलाने से शीघ्र ही सूतिका ज्वर को हरता है। देवदारु, वच, कुठ, मघ, सुण्ड, कायफल, मोथा, चिरायता, कुठकी, धनियां हरड़, गजपिप्पली, जवासा, भरवड़ा,

---

1 वेलो मिशिरव धाम पूगजमिति वा पाठः ।

धमासा बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकडासिंही, कालाजीरा इन से समभाग लेकर सेन्धालवण, हींग युक्त कर क्वाथ आठ भाग रख कर स्त्री को पिलाये तो शूल; कास, ज्वरादि रोगों को नष्ट करता है ॥ २४ । २५ । २६ । २७ । २८ ॥

पञ्चमूलस्य क्वाथं वा तप्त लोहेन संयुतम् ॥ २६ ॥
सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वाताघ्निधां सुराम् ।

पञ्च मूल का काढ़ा जो लोहे से तप्त किया गया हो उसे सूतिका रोग के नाश के लिये पीवे अथवा वात नाशक मद्य पीने के लिये दे ॥ २६ ॥

पिप्पली देवकाष्ठं च भद्रमुस्तकमेव च ॥ ३० ॥
अगरुः पिप्पलीमूलं श्लक्ष्णपिष्टं च कारयेत् ।
तक्रेण सहसंयुक्तं पिबेधूमं विचक्षणः ॥ ३१ ॥
एतेन घृतयुक्तेन पीतमात्रेण निश्चितम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ३२ ॥
सूतिकोपद्रवं हन्ति वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ।
यवकोल कुलत्थानां शालि मूलं तथैव च ॥ ३३ ॥
शस्तोऽयं सूतिकातंके यूषः सर्वज्वरापहः ।

पिपली आदि औषधियों को लेकर बारीक चूर्ण करे और तक्र के साथ इसे पीवे और घृत के साथ इसे पीने से ही वातादि ज्वरों को तथा सूतिका के उपद्रवों को नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृत्तादियों को नष्ट कर देता है ।

जौ, वेर, कुलत्थी, शालिमूल इनका यूष सूतिका रोग का नाश करने के लिये हित होता है ॥ ३०-३३ ॥

पञ्चजीरकगुडमाह—

जीरकं हपुषा धान्यशताह्वा बदराणि च ॥ ३४ ॥
यवानी मेथिका हिंगु पत्रिका कासमर्दकम् ।
पिप्पली पिप्पलीमूल मजमोदाथ वाष्पिका ॥ ३५ ॥
चित्रकश्चपलांशानि तथाधान्यं चतुष्पलम् ।
कशेरुकं नागरश्च यष्टी दीप्यक मेव च ॥ ३६ ॥

गुडस्य च शतं दद्याद् घृतं प्रस्थं तथैव च ।
क्षीरं द्वि प्रस्थ संयुक्तं शनैर्मृद्वाग्निना पचेत् ॥ ३७ ॥
पञ्चजीरकमित्येष सूतिकानां प्रशस्यते ।
गर्भाधाने[1] चयानारी बृंहणीये च मारुते ॥ ३८ ॥
विंशति व्यापदो योनौ कासं श्वासं ज्वरं क्षयम् ।
हलीमकं पाण्डुरोगं दुर्गन्धं मूत्र कृच्छ्रताम् ॥ ३९ ॥
हन्ति पीनोन्नतं कुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
उपयोगात्स्त्रियो नित्य मलक्ष्मी मलवर्जिताः ॥ ४० ॥

जीरा, हाऊबेर, धनिया, सौंफ बेर, अजवायन, मेथी, हींगुपत्री कसौंदी, पिप्पली, पिप्पलीमूल, अजमोद, कृष्णजीरा, चित्रक इनको पल २ भर (४ तोला प्रत्येक) लेना तथा धनिया १६ तोले कसेरु, सुण्ड, मुलठी, लालचित्रक, यह द्रव्य चार २ पल लेना (अर्थात् प्रत्येक १६ तोले लेकर) चूर्ण करे तथा गुड सौ पल लेना एक सेर घृत और दो सेर दूध इन सबको मिलाकर मन्दाग्नि से पकाये (अर्थात् पहिले गुड, दूध और घी मिलाकर पकाना जब गाढ़ा होने लगे तो उसमें उक्त द्रव्यों का चूर्ण मिलाये) यह पञ्चजीरक गुड़ सूतिकाओं के लिये हित है यह गुड गर्भ की इच्छा चाहने वाली नारियों के लिये हित है तथा वात शमनकारक है तथा बीस प्रकार के योनिरोगों को तथा कास श्वास क्षय और ज्वर को नष्ट करता है हलीमक, पाण्डुरोग, दुर्गन्धि को तथा मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है इसके निरन्तर सेवन करने से स्त्रियें कठिन कुचों वाली और कमल समान नेत्रों वाली होकर अलक्ष्मी और मल से रहित हो जाती हैं ॥ ३४–४० ॥

सुतिकारोग नाशाय कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ।
स्वेदोपनाहनाभ्यंगः सावगाहः प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

सूतिका रोग नाश करने के लिये वात को हरने वाली क्रिया करनी चाहिये, पसीना देना, लेप करना, मालिश करना और स्नान करना हित कारक होता है ॥ ४१ ॥

---

१ " गर्भार्थिनी या नारी मारुताया च बृंहिता " इति वा पाठः ।

स्तनपीडोद्भवज्वरमाह—

सक्षीरो वाप्य दुग्धोवा दोषः प्राप्त स्तनौ स्त्रियः ।
प्रदूष्य मांस रुधिरे स्तनरोगे ज्वरोभवेत् ॥ ४२ ॥
जलौकाभिर्हरे द्रक्तं न स्तना वुपनाहयेत् ।
पित्तघ्नानि शीतानि द्रव्याणि प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥
व्रण तद्योजयेत्सर्वं गतिं संरक्ष्य पाटयेत् ।
लेपो विशाला मूलेन हन्ति पीड़ांस्तनोत्थिताम् ॥ ४४ ॥

दुग्धयुक्त अथवा विनादुग्ध के स्तनों में दोष प्राप्त हो कर मांस तथा रुधिर को दूषित कर के स्तन रोग में ज्वर होता है उस का जलौका से रक्त निकलना चाहिये उपनाहस्तनों में न करे पित्त नाशक जो शीत द्रव्य हो स्तनज्वर में प्रयोग करे व्रण की तरह स्तन की चिकित्सा करे और उसकी गति की रक्षा कर के उसे चीरादे और इद्रायण की जड़का लेप पीड़ा नाश के लिये करे॥४२ ४४॥

बालज्वरमाह—

गुरुभिर्विविधाहारैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ।
क्षीरंधात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ ४५ ॥
शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ।
महतां ये ज्वराः प्रोक्ताः तेऽपि बाले भवन्ति हि ॥४६॥
यथादोषो चितं कार्यं भैषज्यं लघुमात्रया ।
क्षीरपस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः ॥४७॥
आत्मन्यन्नाशनै देयमौषधं भिषगुत्तमैः ।
मात्रयालंघये द्धात्रीं शिशोर्नोक्तं विलंघनम् ॥ ४८ ॥
सर्वं निर्वायते बाले स्तन्यं न प्रतिवार्यते ।
स्तन्याभावे पयः छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ ४९ ॥

अनेक प्रकार के गुरु भोजनों से दुष्ट हुए दोषों से धात्री के दुग्ध के दूषित होने से कुमार को नाना रोग हो जाते हैं। बालक की अधिक तथा न्यून पीड़ा को उसके रोने से जानें (अर्थात् यदि बालक अधिक रोता हो तो अधिक पीडा जानें और

यदि थोड़ा रोता हो तो थोड़ी पीड़ा जाने बड़ों को जो रोग कहे हैं वह बालकों को भी होते हैं। जैसा दोष हो उसी के अनुकूल ही औषध देना परन्तु लघुमात्रा से देना केवल दूध पीने वाले बाल को यदि कोई रोग हो तो धात्री को औषध पान कराना। दूध तथा अन्न खाने वाला बाल हो तो दोनों को औषधी दें। और अन्न खाने वाले केवल बालक को ही औषधी उत्तम वैद्य दे॥ धात्री को मात्रा से लंघन कराये परन्तु शिशु को कभी लंघन न दे। बालक यदि रोगी हो जाये तो उसे सब कुछ खाना बन्द कर दें परन्तु दूध कभी बन्द न करे। दूध का यदि अभाव हो तो उसे बकरी का दूध अथवा उसी गुण वाले गौ के दूध को पीने को दे ॥४६—४६॥

मृत्पिण्डे नाग्निवर्णेन क्षीरसिक्तेनसोष्मणा।
स्वेदये दुत्थितांनाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति । ५० ॥

मिट्टी के ढेले को अग्नि से तपा कर लाल कर और उस पर दुग्ध से सिक्त करके उस की गरमी से उठी हुई नाभि को स्वेदन करने से शोथ शान्त हो जाती है ॥ ५० ॥

यथा रोगं स्तनौ लिह्यादौषधैः पाययेच्छिशुम्।
भद्रमुस्ताभया निम्बपटोलमधुकैः कृतः ॥ ५१ ॥
क्राथोः सोष्मस्तु बालानामशेष ज्वर नाशनः।
लाजा यष्टी तथामांसी मधुकै श्चूर्णितैः समैः ॥ ५२ ॥
मधुयुक्तैः शिशोर्लेहः सर्वज्वर विनाशनः।
बृहतीफलमूलत्वक् कृष्याग्रन्थिक सम्भवः ॥ ५३ ॥
तुगा क्षीरीयुतः क्वाथः पीतोहन्ति शिशोर्वमिम्।
मूर्च्छा श्वासं ज्वरं कास मतिसारं चपीनसं ॥ ५४ ॥
हरिद्रा द्वय यष्ट्याह्वसिंही शक्रयवैः कृतः।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तनदोष जित् ॥ ५५ ॥

जैसा दोष हो उस के नाशक करने वाली औषधी को स्तन को लेप कर बच्चे को पीलाये। नागरमोथा, हरड़, निंब, परवल मुलठी इन से किया हुआ कषाय गरम ही बालक को पिलाये तो सब रोग नाश हो जाते। धानकालावा, मुलठी तथा जटामांसी मुलठी इनका समभाग लेकर चूर्ण करे और शहद से मिलाकर

बालक को चटाये तो सर्व ज्वर नाश हो जाते हैं। बड़ी कटेरी के फल, छाल, तथा मूल, मघ, पिपलामूल और तबाशीर मिलाकर या क्वाथ बनाकर पीने से बच्चों की कैः, मूर्च्छा, श्वास, ज्वर, कास, तथा अतिसार और पीनस को दूर करता है।

हल्दी, दारुहल्दी, मुलठी, कटेरी, इन्द्रजौ से किया हुआ काढ़ा शिशुयों के अतिसार तथा स्तनदोष को जीतता है ॥५१-५५॥

धातकी बिल्वधान्यक रोध्रेन्द्रयवबालकैः।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातिसारवान्तिजित् ॥ ५६ ॥
ह्रीवेरं शर्करा क्षौद्रं पीतं तण्डुल वारिणा।
शिशो रक्तातिसारघ्नं तृड्वमिज्वरनाशनम् ॥ ५७ ॥

धावे के फूल, बिल्व, धनिया, लोध, इन्द्रजौ, नेत्रबाला इनसे शहत में बनाई चटनी बालकों के ज्वर, अतिसार, और वमन को जीते। नेत्रबाला, चीनी, शहत मिलाकर चावलों के पानी के साथ पीने से बच्चों के रक्तातिसार, प्यास ज्वर का नाश हो जाता है।

शृंगीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनां।
कासज्वर छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकं वातिविषां तथैकाम् ५८
मुस्तातिविषावासा कणाशृंगीरजो लिहन्।
मुच्यते मधुना बालः कासैः पञ्चभिरुच्छ्रितैः ॥ ५९ ॥
हिंगुपलाश चूर्ण सैन्धव माक्षिक संयुतम्।
लीढं विनाशयत्याशु शिशूनां मुद्धतां व्यथाम् ॥ ६० ॥

काकड़ासिंगी, मोथा, अतीस, इनका चूर्ण कर शहत के साथ बालक को चटाये तो कासज्वर, छर्दि को दूर करता है अथवा अतीस के चूर्ण को मधु के साथ चटाने से भी लाभ होता है। मोथा, अतीस, बांसा, पिप्पली, काकड़ासिंही इनका चूर्ण मधु मिला कर चाटने से पांच प्रकार की बढ़ी हुई कास का नाश करता है। हींग, पलाश और लवण इनका चूर्ण मधु से चाटे तो बालकों की बढ़ी हुई पीड़ा को शीघ्र नष्ट करे ॥ ५८-६० ॥

धूपमाह—

पलंकषा वचा कुष्ट गजचर्माविचर्म च।
निंबपत्रं समाक्षीकं सर्पि र्युक्तं तु धूपनम् ॥ ६१ ॥

ज्वर वेगं निहन्त्याशु बालानां तु विशेषतः ।
सर्पत्वक् सितयारिष्ट पल्लवं तेजनी वचा ॥ ६२ ॥
रसोनहिंगुवजालोम शृंगी मरिच माक्षिकैः ।
धूपःसर्व ग्रहघ्नोऽयं कुमाराणां ज्वरापहः ॥ ६३ ॥
कृष्णा दुरालभा द्राक्षा कर्कटाख्यमत्वगाह्वयः ।
चूर्णितामधुसर्पिर्भ्यां लीढाघ्नन्ति शिशोगदम् ॥ ६४ ॥
कासं श्वासं सतमकं ज्वरं चापि नियच्छति ।

गुग्गुल, वच, कुठ, हाथी का चर्म भेड़ का चर्म, नीम के पत्ते शहत और घृत मिलाकर धूप देने से बालकों के ज्वर के वेग का शीघ्र नाश करता है । सर्प की केंचुली, चीनी, निंब के पत्ते, तेजपत्र वच, लहसन, हींग, बकरी के लोम, काकड़ासिंही, मरिच शहत इनसे बना धूप शिशुओं के सब ग्रहों का तथा ज्वरों का नाश करता है । मघ, धमासा, दाख, शृंगी, वंशलोचन इनका चर्ण मधु और घृत के साथ चाटने से बच्चों के रोगों को हरता है । कास, श्वास तमक श्वास और ज्वर को भी दूर करता है ॥ ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५॥

विस्फोटकज्वरमाह

दोषास्त्वचं समाश्रित्यासृङ्मांसास्थि प्रदूष्य च ॥ ६५ ॥
देहे घोरांश्चविस्फोटान् कुर्वन्ति ज्वर पूर्वकान् ।
तत्रादौ लंघनं कार्यं वमनं पथ्य भोजनम् ॥ ६६ ॥
केवलानिलवीसर्प विस्फोटाभिहते ज्वरे ॥ ६७ ॥
सर्पिष्पानं हिमालेपा सेको मांस रसौदनम् ।
कर्याद्यथास्वमुक्त च रक्तमोक्षादि साधनम् ॥ ६८ ॥

दोष त्वचा को आश्रय बना कर और रक्त मांस अस्थि इन को दूषित करके देह में ज्वर पूर्वक घोर विस्फोटों को करते है ॥ वहां पहिले लंघन कराना चाहिये तथा वमन और हित भोजन देना चाहिये । दोष और बल को देख कर चिकित्सा करनी चाहिये । केवल वायु के विसर्प तथा विस्फोट से होने वाले ज्वर में घृत पान शीत लेप, तथा सेक करना योग्य होता है तथा मांस रस और चावल खाने को देना । जैसा दोष हो उसी के अनुसार ही रक्त

मोक्षण करना हित होता है। (अर्थात् वात के विस्फोटक में शृंग (सींग से) से, पित विस्फोट में जलौका से और कफ विस्फोट में तुम्बी (कूज्जे लगा कर रक्त निकालना चाहिये) ॥ ६६ ६७ ६८ ॥

पटोलामृत भूनिम्बवासकारिष्ट पर्पटैः ।
खदिराब्द युतैः क्वाथो विस्फोट ज्वरशान्तये ॥ ६९ ॥
कुण्डली पिचुमन्दाम्बु खदिरेन्द्रयवाम्भसा ।
विस्फोटक ज्वरान्हन्ति वायुर्जलधरानिव ॥ ७० ॥

अमृत वृष पटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमथ सवेत्रं निंबपत्रं हरिद्रे विविधविषविसर्पं कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तज्वरंच

परवलादि औषधियों को लेकर काढ़ा कर पिलाये तो विस्फोट ज्वर शान्त हो जाता है। कुण्डली (गिलोय) निंब, मोथा, खैर, इन्द्रजौ इनका क्वाथ पीने से विस्फोट ज्वर को इस प्रकार नष्ट करता है। जैसे वायु मेघों को उड़ा देता है॥ गिलोय, वांसा, परवल, मोथा, सप्तपर्ण खैर, बेतसवृक्ष की छाल नीमपत्र, हलदी, दारुहलदी इनका काढ़ा पीने से अनेक प्रकार का विष विसर्प, कुष्ठरोग, विस्फोट, कण्डु, पिड़का और शीतपित तथा ज्वर को दूर करता है ॥ ६९—७१ ॥

दशाङ्गलेपमाह—

शरीषयष्टिनतचन्दनैला मांसी हरिद्रा द्वय कुष्ठ वालैः
लेपोदशाङ्गः सघृतः प्रयोज्योविसर्प कण्डूज्वर शोफहारी ॥ ७२ ॥

सरीहं के बीज, मुलहठी, तगर इलाची लालचन्दन, जटामांसी हलदी, दारुहलदी कुठ, नेत्रबाला, यह दशाङ्गलेप घृत के साथ प्रयुक्त किया हुआ विसर्प, कण्डु (खारिश) ज्वर, शोथ को हरने वाला होता है ॥ ७२ ॥

शीतलाज्वरमाह—

कफपित प्रकोपाद्वा भवेत्क्रुद्ध ग्रहेक्षणात् ।
ज्वरः पूर्वापरो नाम लोके शीतालिका मतः ॥ ७३ ॥
भिद्यते बहुधाभेदै र्वक्ष्यतेऽत्र चिकित्सितम् ।
शीतला दोष सन्तापे जाते मधुविमिश्रितम् ॥ ७४ ॥
निवृत्तिं कुरुते क्षिप्रं पीतं पर्युषितं जलम् ।

पित्त श्लेष्म विसर्पोत्था क्रियाचात्र प्रशस्यते ॥ ७५ ॥

कफ तथा पित के कुपित होने से अथवा दुष्ट ग्रह की दृष्टि से पूर्वा पर नामवाला ज्वर लोक में शीतला नाम से माना जाता है। वह अनेक प्रकार के भेदों वाला होता है उसकी चिकित्सा यहां कहते हैं। शीतला दोष के सन्ताप के उत्पन्न हो जाने पर शहत मिला कर वासी जल पिया हुआ शीघ्र ज्वर को शान्त करता है। पित्त कफ विसर्प कि जो चिकित्सा कही है वह भी यहां हित होती है॥ ७३। ७४। ७५ ॥

तत्रादौतर्पणं कार्यं लाजाचूर्णैः सशर्करैः।
भोजनं तिक्त यूषैश्च प्रतुदानां रसेन च ॥ ७६ ॥
सेकाभ्यंग प्रदेहाश्च कार्यास्तिक्तेन सर्पिषा।
कोष्ण स्नेहोपनाहाश्च वहिरंतश्चसर्वतः ॥ ७७ ॥
गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाड़िमैं सह।
पाक काले च दातव्यं भेषजं गुड़ संयुतम् ॥ ७८ ॥
तेनपाकं व्रजत्याशु नच वायुः प्रकुप्यति।

वहां पहिले तर्पण लाजा चूर्ण तथा चीनी से करना चाहिये। और तिक्त रस वाले द्रव्यों से यूष तथा प्रतुदजीवों (गृध्रश्येन कादि) के मांस के रसों से तर्पण करे। तिक्त औषधियों से सिद्ध किये हुए घृत से सेक, मालिश और लेप करना चाहिये। थोड़े गरम स्नेह और उपनाह (लेप) बाहिर अन्दर हमेशा करे। गिलोय आदि द्रव्यों से गुड़ मिलाकर पाक काल में औषध देना चाहिये इससे दोष शीघ्र पाक को प्राप्त हो जाते हैं और वायु भी कुपित नहीं होती ॥ ७६—७८ ॥

पटोली कुण्डली मुस्त वृषधान्य यवासकैः ॥ ७९ ॥
भूनिम्ब कटुकारिष्ट पर्पटैश्च शृतं जलम्।
मसूरीं शमयेदामं पक्वश्चैनं विशोधयेत् ॥ ८० ॥
नातः परतरं किञ्चिच्छीतलादि ज्वरापहम्।
निंबपर्पटकं पाठा पटोलं कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥
वासा दुरालभा धात्री चोशीरं चन्दनद्वयम्।

एषनिंबादिकः ख्यातो योगः शर्करयान्वितः ॥ ८२ ॥
मसूरीं सर्वजां हन्ति वाऽस्थिजां सर्व देहजाम् ।
शूलाध्मानपरीतस्यज्वरवीसर्प सम्भवाम् ॥ ८३ ॥
उत्थितां प्रविशन्तीं तु पुनस्तां बाह्यतोनयेत् ।

परवल गिलोय आदि औषधियों का काढ़ा पीने से आम (अपक) मसूरी (पिड़का) को शमन करता है यदि यह पक जाये तो शोधन करना चाहिये। शीतला ज्वर के नाश के लिये इससे परे और औषधी नहीं है। निंब, पित्त-पापड़ा आदि औषधियों का यह योग निम्बादिकेनाम से प्रसिद्ध है इसको चीनी मिलाकर सेवन करे तो सन्निपातिक पिड़का जो चाहे अस्थितथा सारेदेह में पैदा होने वाली हों उन्हें भी नष्ट करता है। पीड़ा, अफारा से युक्त को तथा ज्वर और विसर्प से उत्पन्न हुई अन्दर चली गई शीतला को बाहिर निकालने का यत्न करना चाहिये। ७६—८३ ॥

पटोलमूलारुण तण्डुलीयकं पिबेद्धरिद्रामलकल्क संयुतम् ।
मसूरी विस्फोट विसर्पशान्तयेतद्देवरोमन्ति वमिज्वरापहम् ॥ ८४ ॥

सुषवी पत्रजायासहरिद्राचूर्ण संयुतम् ।
रोमन्ती ज्वरवीसर्प मसूरी शान्तये पिबेत् ॥ ८५ ॥
विल्वपत्र रसेनैव मूर्छितः पारदेश्वर ।
हिलमोची रसेनैव पीतोमधुसमायुतः ॥ ८६ ॥
मसूरीं सर्वजां हन्ति अस्थिजां सर्वदेहजां ।
शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वा युता ॥ ८७ ॥

परवलमूल, तिरवी, चौलाई की जड़, हलदी, आंवला इनका कल्क पीवे तो, मसूरी, विसर्प और विस्फोट शान्त हो जाते हैं रोमों में होने वाली पिड़का तथा वमन, ज्वर को नाश करता है सौंफ, तेज पत्र, जवासा, इनमें हलदी का चूर्ण मिलाकर पीवे तो रोमान्त पिड़का ज्वर, विसर्प और मसूरी शान्त होय। पारद की भस्म (अर्थात् रस सिन्दूर) को विल्व पत्र के रस से और हिल मोचिका के रस में मधु मिला कर पीवे तो मसूरी जो तीनों दोषों से उत्पन्न हो और अस्थियों में होने वाली तथा सर्व देह गत पिड़-कायों का नाश करता है। जो व्यक्ति शूल आध्मान से युक्त हो और

वायु से कांपता हो उसके लिये भी हित होता है ॥ ८४—८७ ॥

धान्वमांसरसः शस्त ईषत्सैन्धव संयुतः ।
दाडिमाम्लरसैर्यूषः पेयस्तस्या रुचौ हितः ॥ ८८ ॥
पिवेदम्भस्तथाशीतं भावितं खदिरासनैः ।
कुर्याद् व्रणविधानं च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम् ॥ ८९ ॥
जप होमोपहारैश्चदानस्वस्त्ययनादिभिः ।
तथा घण्टां द्विजान्गाश्च शिवं गौरीं च पूजयेत् ॥ ९० ॥
अगदानि विषघ्नानि रत्नानिच[१] भिषग्वरः ।
धारये द्वाचयेद्वापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ ९१ ॥
विषवातस्ययेनैषां न भवन्ति गदानृणां ।
व्रण शोथ हरैर्योगैर्वातरोगहरैस्तथा ॥ ९२ ॥
दुष्टव्रणेषु तेष्वेवं जलौकाभिर्हरेदसृक् ।

जांगल जीवों का मांस रस थोड़ा सा लवण मिला कर सेवन करना हित होता है खट्टे अनार के रस से बना यूष उसकी अरुचि में हित है। खैर तथा विजयसार से भावना दिया हुआ ठण्डाजल पीवे। और व्रण की विधि करे तथा तैल आदियों को देर तक छोड़ दे। जप, होम, वलि तथा स्वस्ति वाचन कराये। शीतला देवी का घण्टा तथा ब्राह्मण, गौ; शंकर तथा गौरी का पूजन करे। विष का नाश करने वाले अंगद और रत्नों को श्रेष्ठ वैद्य धारण कराये अथवा गरुड़ संहिता को वाचे ऐसा करने से विष तथा वात के रोग मनुष्यों को नहीं होते। और व्रण के सुखाने वाले तथा वात रोगों के हरने वाले योगों का प्रयोग करे। दुष्ट व्रणों में से जोकों द्वारा रक्त निकाले ॥ ८८—९२ ॥

क्रिमिज्वरमाह—

ज्वरोविवर्णताशूलं हृद्रोगं छर्दनंभ्रमः ॥ ९३ ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्चाक्रिमिजे लक्षणानिवै ।

ज्वर, वर्ण त्वचा तथा मुख का बदल जाना शूल, हृद्रोग, छर्दि और भ्रम, भोजन में इच्छा न हो, अतिसार आदि यह लक्षण निश्चय

---

१ रत्नानि इत्यत्र "रोगघ्नानि" इति वा पाठः ।

से क्रिमियों से होने वाले ज्वर के हैं ॥ ९३ ॥

चिकित्सामाह—

पलाशबीजं पिचुमन्दशिग्रुकल्यम्बुदादारुविडंग तोयं ।

कषाय एषां विहितः सुखेन क्रिमिज्वरं हन्ति न संशयोऽत्र ९४॥

पलाश के बीज, निम्ब, सुहांजना, बहेड़ा, मोथा, देवदारु, विडंग नेत्र वाला इनका कषाय बनाया हुआ सुख से क्रिमिज्वर का नाश करता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९३ ॥

भक्तद्वेषमाह—

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वाच भोजनम् ।

द्वेषमायाति योजन्तुर्भक्तद्वेषं स उच्यते ॥ ९४ ॥

भोजन को मन में चिन्ता करके, भोजन को देखकर और सुन कर द्वेष मनुष्य को हो जाये वह भक्त द्वेष कहाता है ॥ ९५ ॥

कालज्वरमाह—

गतागतानिधमनी चापल्यं कुरुते भृशं ।

ऊर्ध्वश्वासः कान्तिनाशः स्वेदोगात्रोऽतिशीतता ॥९६॥

वैकल्य मिन्द्रियाणां च ज्वरे वै काल सम्भवे ।

चिकित्सामाह—

गोभूहिरण्य दानानि सप्तधान्यानि शक्तितः ॥ ९७ ॥

विधाय दद्यातुरं श्राद्धं सर्वदेयं द्विजातये ।

षड्ब्दं द्वादशाब्दं वा कार्यं पाप विशुद्धये ॥ ९८ ॥

देह में गमन करने वाली धमनीयें अत्यन्त चपलता से गति करती होंश्वास हो, कान्ति का नाश हो, पसीना आवे, गात्र अधिक ठण्डे हो जायें, इन्द्रियें विकल हो जायें यह लक्षण काल ज्वर में जानें गौ, पृथ्वी, स्वर्ण तथा सप्तधान्य आदियों का दान यथा शक्ति करना चाहिये और आतुर श्राद्ध छः वर्ष या बारह वर्ष तक पाप शुद्धि के लिये करके सब ब्राह्मण को दे देना चाहिये ॥ ९६—९८ ॥

द्राक्षा चैवगुडूचीच मुस्तापर्पटकं तथा ।

कुटकी च समः क्वाथः कालज्वर विनाशनः ॥

रसाये पूर्व मुद्दिष्टा महाभैरव कादयः ।

देयास्ते मृत्युनाशाय निष्पापायातुरायवै ॥

दाख, गिलोय मोथा, पित्तपापड़ा तथा कुटकी इनको समभाग लेकर काढ़ा करके देने से काल ज्वर का नाश करता है। जो रस महा· भैरवादि पहिले ज्वर नाशक कहे हैं वे यहां निष्पाप रोगी के लिये देने चाहिये।

इति श्री कायस्थ्य चण्ड कृते ज्वरतिमिरभास्करे द्वादशप्रभेदोनाम। चतुर्दशोऽध्यायः।

अथपञ्चदशोऽध्यायः ॥

नक्षत्रादिजनितज्वरमाह—

आधान जन्मनिधने प्रत्यहाख्यविपत्करे।
नक्षत्रे व्याधिरुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय च ॥ १ ॥

आधानेति—आधान अर्थात् जन्मनक्षत्र से दशम नक्षत्र, निधन अर्थात् जन्मनक्षत्र से सप्तमनक्षत्र, प्रत्यह-अर्थात् जन्म से पंचम नक्षत्र, विपत्करं-अर्थात् जन्मनक्षत्र से तीसरा नक्षत्र इन में व्याधि उत्पन्न हुई २ क्लेश के लिये या मरण के लिये होती है ॥ १ ॥

नन्दायां मरणं नक्र वृष कुम्भ तुलाभिधां
मीनेधनुषि भद्रायां जयायां कन्यकायुगे ॥ २ ॥
रिक्तायां कर्कटे मेषे पूर्णायामलिसिंहयोः।
जन्माध्यष्टार्कगे चन्द्रे त्रुठिते रोगिणोमृतिः ॥ ३ ॥

नन्दातिथियों में यदि मकर, वृष, तुला राशि में चन्द्रमा हो तो मृत्यु होती है भद्रातिथि में (द्वितिया सप्तमी, द्वादशी, में यदि मीन वा धन राशि का चन्द्रमा हो तो तब भी मृत्यु जानना। जया तिथि में (तृतीयाष्टमी त्रयोदशी) कन्या तथा मिथुन का चन्द्रमा हो तो मृत्यु होय। रिक्तातिथि में (चतुर्थी नवमी चतुर्दशी) कर्क तथा मेष का चन्द्रमा होय तौ भी मरण होता है। पूर्णा में (पञ्चमी दशमी पूर्णिमा) वृश्चिक तथा सिंह का चन्द्रमा हो तो मृत्यु होती है ॥ और जन्म लग्न से यदि आठवें अथवा बारहवें चन्द्रमा होये तो अथवा चन्द्रमा क्षीण हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है ॥ १—२ ॥

आधाना द्दशमं जन्म दशमं कर्म जन्मभात्।
कर्मभाद्दशमं मृत्युः कुर्यादेवु न किंचन ॥ ४ ॥

रवौ विलग्ने रवि भौमवारे रिक्ता तिथौ चन्द्र बले च हीने।
केन्द्र त्रिकोणेषु गतैश्चपापैः स्नानं हितं रोग विमुक्तकानां ॥५॥

आधान से यदि दशमजन्म लग्न होय, जन्मराशि से यदि दशम-कर्म लग्न होय और कर्म स्थान से दशम मृत्यु स्थान हो तो इनमें औषधि आदि का प्रयोग न करे। सूर्य यदि लग्न में न हो और रवि-वार या मंगलवार में तथा रिक्ता तिथी में और चन्द्रबल के हीन होने पर केन्द्र तथा त्रिकोण में पापी ग्रह हों तो रोग युक्त पुरुष के लिये स्नान करना हित होता है। ४-५॥

ब्राह्मणादिनामाख्यान्—
ज्वरानाह—

अथकालकरं वक्ष्ये ब्राह्मणादि चतुर्विधं।
रौद्रःविप्रश्चमाहेन्द्रः क्षत्रिया विट्ज्वरेश्वरः ॥ ६ ॥
शूद्रश्चकालगम्भीरस्तेषां लक्षण मुच्यते।
तीक्ष्णवेगक्षुधालौल्यं शुचिद्वेष्टो घृत प्रियः ॥ ७ ॥
मूत्रं च किंशुकाभासं पाठशीलोति जल्पकः।
बहुश्वासी तृषा क्रान्तो नरो रौद्रज्वरार्दितः ॥ ८ ॥
स्नानं होमं जपं कृत्वा तस्यशान्तिः प्रपद्यते। इति विप्रः।

इसके अनन्तर काल संज्ञक चार प्रकार के ब्राह्मणादि ज्वरों को कहते हैं। रौद्रनामक ब्राह्मण ज्वर होता है, माहेन्द्र नाम वालाक्ष-त्रिय, ईश्वर संज्ञक वैश्य, और काल गम्भीर नामक शूद्रज्वर कहा है इनके लक्षण कहते हैं। तीक्ष्ण वेग वाला भूख का लोभी पवि-त्रता का द्वेषी, घृत का प्यारा, इसमें मूत्र कुसुम्भे के फूल के रंग की कान्ति वाला होता है। पाठ करने वाला, अधिक बोलने वाला, बहुत श्वास युक्त, तृष्णा से व्याकुल मनुष्य रौद्र ज्वर से पीड़ित होता है। उसके लिये स्नान, होम, जप आदि को करे तो उसकी शान्ति होती है ॥ ६-८॥

क्षात्रियज्वरमाह—

तीव्रं ज्वर तृषार्तश्च रक्तता मूत्र नेत्रयोः ॥ ९ ॥
कुरुते युद्धवार्ता चोत्तिष्ठति बलेन यः।
सावष्टम्भी महाश्वासी क्षुद्द्वेषी मधुगन्धवाक् ॥ १० ॥

मुखे स्वेद युतो यस्तु माहेन्द्रज्वर पीडितः ।
ग्रह होमं जपं दानं महेशस्तवनं चरेत् ॥ ११ ॥ इति क्षत्रियः

ज्वर तीव्र वेग युक्त हो, तृषा से पीडित मूत्र तथा नेत्र लाल हों युद्ध की वार्ता करे और जो बल से उठे मल की रुकावट हो, महा-श्वास युक्त हो भूख न लगे, मीठी गन्ध आवे तथा मुख मीठा होय स्वेद युक्त हो वह महेन्द्र ज्वर से पीड़ित होता है । इसमें ग्रहहोम, जप, दान तथा शंकर का पूजन आदि करे तो शान्त हो जाता है ।

वैश्यज्वरमाह—

मध्यवेगी स्वप्नशीलः पीतता मूत्रनेत्रयोः ।
हृदुष्णं शीततान्यत्र कंठेस्वेदोति विह्वलः ॥ १२ ॥
मौनी च बहु मूत्री च नरोज्वरेश्वरार्दितः ।
दैव व्यपाश्रयं कर्म तच्छान्त्यै कारयेद्बुधः ॥ १३ ॥

ज्वर का मध्य वेग हो, निद्रा अधिक हो मूत्र तथा नेत्र पीले हो जायें, हृदय उष्ण हो, अन्यत्र शीत हो, कंठ में स्वेद हो अति व्याकुल हो जाय, बोले नहीं और मूत्र अधिक आवें वह ज्वरेश्वर से पीडित मनुष्य जानना इस ज्वर की शान्ति के लिये देवता को बलि आदि तथा जप होमादि कर्म कराना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

शूद्रज्वरमाह—

वहिश्शीतोन्तरुष्णश्च दन्त जिह्वादयोऽसिताः ।
हृच्छूल श्चातिसारी स्यादुन्मादी मत्स्यगंधधृक् ॥ १४ ॥
प्रणयी क्रोधनो भीरुरन्ने च विकलेन्द्रियः ।
ज्वरोऽयं कालगम्भीरो तेनाविष्टोनजीवति ॥ १५ ॥

बाहर शीत और भीतर गरमी होय तथा दान्त तथा जिह्वा आदि काले हो जायें, हृदय में शूल हो, दस्त आवें, पागल हो जाये तथा मछली के समान गन्ध धारण करे । प्रणयी (अर्थात् प्रेम युक्त) हो, क्रोधी, अन्न से डरने वाला और विकल इन्द्रियों वाला हो । यह कालगम्भीर नामक ज्वर है इससे युक्त पुरुष जीवित नहीं रहता ॥ १४-१५ ॥

एकोत्तरं मृत्यु शतं ब्रवते वेद वादिनः ।
एकं तु काल रूपेण शेषास्त्वागन्तवोमताः ॥ १६ ॥

औषधीभिरनेकाभिर्नश्यन्त्यागंतवोगदाः ।
विविधौषधि संयोगात्कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ १७ ॥
ज्वरःप्राणहरो यस्मात्तस्मात्तस्य विशेषतः ।
तस्यां तस्यामवस्थायां कुर्यात्तत्तद्धिषाग्जतम् ॥ १८ ॥

एक सौ एक मृत्यु वेदवादी कहते हैं उनमें से एक कालरूप है और सौ आगन्तुज मृत्यु होती हैं। अनेक औषधियों के करने से आगन्तुज मृत्यु नष्ट हो जाती हैं परन्तु नाना औषधियों के प्रयोग से भी काल मृत्यु शान्त नहीं होती। जिससे ज्वर प्राणों के हरने वाला होता है इस लिये विशेष करके उसकी उस २ अवस्था में उसकी वैसे २ ही औषधी करनी चाहिये ॥ १६-१८ ॥

ज्वरमुक्तस्यलक्षणमाह—

स्वेदोलघुत्वं शिरसः कण्डूःपाकोमुखस्यच ।
क्षवथुश्चान्न लिप्साच ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ १९ ॥
लक्षणं ज्वरमुक्तस्य तथोक्तोऽत्रक्रियाक्रमः ।

ज्वरमुक्ते वर्ज्यानि—

ज्वरमुक्तो न सेवेतयावन्नबलवान् भवेत् ॥ २० ॥
शीततोय दिवास्वप्न क्रोधव्यायाम योषितः ।
गुर्वसात्म्य विदाह्यन्नं यश्चान्यज्ज्वरकारकम् ॥ २१ ॥
विरुद्धान्यन्नपानानि स्नानं चक्रमणानि च ।
उद्मन्थ मवश्याय मातपं च विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

पसीने का आना, शिर का हलका हो जाना तथा कण्ड और मुख का पकना छींक का आना, अन्न खाने की इच्छा हो, यह ज्वर जिसको छोड़ गया हो उसके लक्षण हैं। ज्वर मुक्त के लक्षण तथा उसकी चिकित्सा कही है अब ज्वर मुक्त पुरुष जब तक बल प्राप्त न करले तब तक आगे कहे हुए कर्म को सेवन न करे। जैसे ठण्डा जल, दिन का सोना, क्रोध का करना, व्यायाम, स्त्री सेवा, तथा गुरु, अहित और विदाही अन्न इनका सेवन और भी जो ज्वर करने वाले आहार विहार आदि विरुद्ध अन्न तथा पान स्नान करना, घूमना, जल का अवगाहन (जल क्रीडा) तथा घृत से

आलोडन किये हुए सत्तू तथा अवश्याय (ओस) और धूप इन को छोड़ दे ॥ १६-२२ ॥

पुनरावर्तितज्वरे हेतुमाह—

अबलो भजते यस्तु पुनरा वर्तते ज्वरः ।
प्रत्यावृत्तो दहे देहं शुष्क काष्ठ मिवानलः ॥ २३ ॥
तस्मात्कार्यः परीहारो ज्वरमुक्तेन जन्तुना ।
गुर्वभिष्यन्द्य सात्म्यान्न भोजनात्पुनरागतः ॥ २४ ॥
लंघनोष्णोपचारादि विधिपूर्वोक्तमाचरेत् ।
किराततिक्तकंमुस्तातिक्तापर्पटकादयः ॥ २५ ॥
घ्नन्तिपीतानिचाभ्यासात्पुनरावार्त्तिनंज्वरम् ।

पूर्वोक्त त्याज्य आहारादियों को जो अबल पुरुष सेवन करता है उसे फिर ज्वर हो जाता है। पुनः ज्वर आया हुआ देह को ऐसे जलाता है जैसे सूखी लकड़ी को अग्नि जलाता है। इस लिये ज्वर जिस व्यक्ति को छोड़ गया हो वह अवश्य परिहार (परहेज) करे। गुरु, अभिष्यन्दी, तथा असात्म्य अन्नों के सेवन करने से पुनः आये हुए ज्वर में लंघन और उष्ण उपचारादि पूर्वोक्त विधि से करने चाहिये चिरायता मोथा, कुटकी, पित्तपापड़ा आदि का पिया हुआ क्वाथ अभ्यास से पुनः आने वाले ज्वर का नाश करता है ॥२ -२ ॥

मनोभिरामाविषयावचनं हृदि लक्षणम् ॥ २६ ॥
करुणार्द्रमनः शुद्धं सर्वं ज्वर निवारणम् ।
मातरं पितरं देवान्वैद्यान्विप्रान् हरिंहरम् ॥ २७ ॥
पूजयेच्छीलयेद्दान दमसत्य दया जपान् ।
धारयेचशुचिमूर्ध्नि मणि रत्न महौषधम् ॥ २८ ॥
आर्या वलोकितापर्ण शवरीमपराजिताम् ।
प्रणमेदार्यं तारांच सर्वज्वर निवृत्तये ॥ २९ ॥
विष्णु सहस्र मूर्धानं चराचर गुरुं विभुम् ।
स्तुवन्नाम सहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ ३० ॥

मन के अनुकूल सब विषय और वचन भी हृदय के तुल्य ही होने चाहिये। दया से भरा हुआ मन शुद्ध हो तो सब ज्वरों का

निवारण करने वाला होता है। माता, पिता, देवता, वैद्य, ब्राह्मण, विष्णु तथा शंकर इनका पूजन करे तथा दान करे इन्द्रियों का दमन (अर्थात् विषयों से रोकना) सत्य बोलना, दया करना, जप करना और पवित्र मणिरत्न, तथा दिव्यौषधीयों का मस्तकादि पर धारण करना तथा श्रेष्ठ पुरुषों से देखी हुई (अर्थात् पूजा की हुई) पार्वती तथा अपराजिता और तारा का पूजन और प्रणाम करने से सब ज्वर शान्त हो जाते हैं (अर्थात् सब ज्वरों की शान्ति के लिये उनका पूजन करे) हजार सिर वाले विष्णु जो चराचर जगत का स्वामी है उसके सहस नाम का पाठ किया हुआ सब ज्वरों का नाश करता है ॥ २६–३० ॥

इति श्रीज्वरतिमिरभास्करे नक्षत्रादिज्वर प्रभेदो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।

अथ षोडशोऽध्यायः।

उपद्रवानाह—

व्याधेरुपरि यो व्याधिर्भवत्युत्तर कालजः।
उपक्रमविघाती च स उपद्रव उच्यते ॥ १ ॥
तृषाभार्या श्वास कासौ सुतौ हिक्कावमीसुते।
अतिसारो भवेद् भ्राताऽरुचि र्भगिनी मता ॥ २ ॥
भागिनेयो विवन्धःस्यादग्निसादश्च वान्धवः।
मूर्च्छाचेटी स्वका ह्येते ज्वरस्योपद्रवाः दश ॥ ३ ॥

रोग हो जाने पर जो ऊपर से अन्य व्याधि पीछे से हो जाये और चिकित्सा को नाश करने वाली हो उसे उपद्रव कहते हैं। ज्वर के दश उपद्रव होते हैं जो ज्वर के कुटुम्बी बनकर रहते हैं जैसे तृषा स्त्री होती है श्वास तथा कास पुत्र और हिक्का वमी कन्या होती हैं। अतिसार भाई, अरुचि बहिन मानी है। भानजा विबन्ध होता है, और बान्धव अग्निसाद होता है। मूर्च्छा चेटी होती है यह सब ज्वर के दश उपद्रव हैं ॥ १–३ ॥

ज्वरे शान्ते प्रशाम्यन्ति सद्यः सर्वेप्युपद्रवाः।
ज्वरं मुक्त्वा चिकित्सेच्च बलवन्त मुपद्रवम् ॥ ४ ॥

अपक्कमल सम्पातो भवेद्यदि कुवैद्यतः ।
तदा कष्टमवाप्नोति रोगी प्राण विनाशनम् ॥ ५ ॥
च्यवमानं ज्वरोत्कृष्ट मुपेक्षेत मलं पुरः ।
अति प्रवर्तमानं तु पाचयन्संग्रह नयेत ॥ ६ ॥
पक्कोपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्टे कृतास्पदः ।
ज्वरातिसारयो रुक्तं भेषजं यत्पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥
न सम्मिलितयोः कार्य मन्योन्यं वर्धते यतः ।
अतस्तौ प्रतिकर्त्तव्यौविशेषोक्त चिकित्सितैः ॥ ८ ॥

ज्वर के शान्त हो जाने पर सभी उपद्रव शीघ्र शान्त हो जाते हैं यदि बलवान् उपद्रव हो तो ज्वर को छोड़कर उसकी चिकित्सा करे। कच्चा मल यदि मूर्ख वैद्य से निकाला जाये तो रोगी के प्राणों का नाश करने वाला दुःख प्राप्त होता है। ज्वर से अधिक निकलते हुए मल को पहिले त्यागे (अर्थात् उसे रोके) यदि अधिक मल निकलता हो तो उसे पाचन करके रोक दे। पक मल भी यदि कोष्ठ में हो तो वह दोष भी विकारी हो जाता है। ज्वरातिसार में जो भिन्न २ चिकित्सा कही है वह दोनों ज्वर तथा अतिसार के मिलने पर नहीं करनी चाहिये क्योंकि एक दूसरे को बढ़ाती हैं। इस लिये उनकी चिकित्सा विशेष जो कही है वही करनी चाहिये ॥४-८॥

पंचमूली तुसामान्या योज्यापित्ते कनीयसी ।
पंचमूली तुमहती वात श्लेष्माधिकेमता ॥ ९ ॥
लंघनं चोभयोरुक्तं मिलित कार्यशेषतः ।
ज्वरातिसारयोः पेयां पिवेत्साम्लांकृतांनरः ॥ १० ॥

लघु पञ्चमूल (अर्थात् शालपर्णी पृष्टपर्णी, दोनों कटेरी, गोखरू,) इनकी योजना पित्त के ज्वरातिसार में करना चाहिये क्योंकि दोनों को बराबर लाभदायक है। तथा बृहत्पञ्चमूल (अर्थात् विल्व, अरनी, पाटला, खम्भारी, स्योनाक) यह महा पञ्चमूल वात श्लेष्म में कहा है। लंघन ज्वरातिसार में करना योग्य है यतः यह दोनों के मिलाने से कार्य करने वाला है। ज्वरातिसार में अम्लयुक्त बनाई हुई पेया मनुष्य को पीलानी हित होती है ॥ ९ । १० ॥

पृष्टपर्णी बलाविल्व नागरोत्पल धान्यकैः ।
धातकी क्वाथ संसिद्धां विश्वभेषज संस्कृताम् ॥ ११ ॥
दाडिमाम्लयुतां पेयां ज्वरातिसारशूलिने ।
पाठेन्द्रयवभूनिम्ब मुस्तापर्पटकाऽमृताः ॥ १२ ॥
जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषधाः ।
नागरातिविषा मुस्ताभूनिम्बामृत वत्सकैः ॥ १३ ॥
सर्वज्वरहर क्वाथः सर्वातिसार नाशनः ।

पृष्टपर्णी आदि औषधियों के काथ से सिद्ध तथा सुण्ड से मिलि हुई तथा अनारदान के अम्लरस से युक्त पेया ज्वरातिसार को जो शूल युक्त हो उसके लिये हित है । पाठा आदि औषधियों का काथ सुण्ड मिला कर पीने से ज्वर सहित अतिसार को जीतता है सुण्ड आदि द्रव्यों का काढ़ा सब प्रकार के ज्वरों को तथा सब प्रकार के अतिसारों को नाश करने वाला होता है ११-१३

पञ्चमूली बलाविल्व गुडूची मुस्त नागरम् ॥ १४ ॥
पाठाभूनिम्बह्रीवेर कुटज त्वक् फलं भृतम् ।
हन्ति सर्वज्वरान् शोफं वमिं तृष्णारुचिं तथा ॥ १५ ॥
स शूलोपद्रवश्वासं कासं हन्यात्सुदुस्तरम् ।
विडंगातिविषा मुस्तं दारुपाठा कलिंगकः ॥ १६ ॥
मरिचेन समा युक्तो ज्वरातिसारशोफनुत् ।
ह्रीवेराति विषामुस्तं विल्वनागर धान्यकम् ॥ १७ ॥
पिबेत्पिच्छा विबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ १८ ॥

पञ्चमूलादि ओषधियों का क्वाथ सर्व ज्वरों को तथा शोथ वमि, तृष्णा और अरुचि को नष्ट करता है जो शूल उपद्रव सहित हो और श्वास, कास, जोवड़ा दुस्तर हो उसे भी नष्ट करता है । विडंग, अतिविषादि औषधियों का काढ़ा मरिच युक्त पीने से ज्वरातिसार और शोथ को हरता है ।

ह्रीवेर (अर्थात् नेत्र वाला) आदि औषधियों का काढ़ा पिच्छ-युक्त मलरोध नाशक है तथा शूल और आमदोष का पाचन करने

वाला और रक्त युक्त अतिसार को जो ज्वर युक्त हो अथवा ज्वर रहित हो उसे भी नष्ट करता है ॥ १४–१८ ॥

गुडूच्यतिविषा धान्य शुण्ठी विल्वाब्द बालकैः ।
पाठा च निंब कुटज चन्दनो शीर पर्पटैः ॥ १९ ॥
पिबेत्कषायं स क्षौद्रं ज्वरातिसार शान्तये ।
हृल्लासा रोचक छर्दिः पिपासादाह नाशन ॥ २० ॥
क्वाथेन दशमूलस्य स विश्वंमाक्षिकं पिबेत् ।
ज्वरे चैवातिसारे च स शोफे ग्रहणी गदे ॥ २१ ॥

गुडूची आदि औषधियों का कषाय मधु युक्त सेवन किया हुआ ज्वरातिसार की शान्ति के लिये होता है तथा जी का मचलाना, अरुचि, छर्दि और पिपासा तथा दाह के नाशक दशमूल के काढे को मधु तथा शुण्डी मिलाकर पीवे तो ज्वरातिसार में तथा शोथयुक्त ग्रहणी रोग में हित होता है ॥ १९–२१ ॥

वमनप्रतीकारमाह—

क्वाथो गुडूच्या समधुः सुशीतः पीताः प्रशान्तिवमनस्य कुर्यात् ।
विण्मक्षिकाणां मधुना वलीढ़ा स चन्दना शर्करया न्विताच २२
लाजा माक्षिक वैदेही दधित्थ रसमिश्रिताः ।
लिहन्निह नरो नित्यं वमिं जयति वेगतः ॥ २३ ॥
स गुड़ो वमजः क्वाथः श्रावणिकासमाक्षिकः ।
वमिं च हरते शीघ्रं मूर्च्छां वा तण्डुलाम्बुना ॥ २४ ॥

गिलोय का काढ़ा शीत कर के मधुयुक्त कर के पीने से वमन की शान्ति को करता है । मक्खियों का मल चन्दन और चीनी से और मधु से मिलाकर चाटने से वमन को शान्त करता है ॥ लाजा, मधु, मद्य, कपित्थ के रस में मिला कर सेवन करने से अत्यन्त वेग युक्त वमन का नाश होता है । पित्तपापड़े का काढ़ा मधु के साथ पिया हुआ और मुण्डी का काढ़ा शहत के साथ चावल का जल पीने से शीघ्र मूर्छा और वमन को हरता है ॥ २२–२४ ॥

---

१ स क्षौद्र श्रीफलस्य वा इति वा पाठः ।

हिक्कामाह—

नीरेण सिन्धूत्थ रजोऽतिसूक्ष्मं नस्येन नूनं विनिहन्ति हिक्काम् ।
मयूरपिच्छस्य मषी स कृष्णामध्वन्विता वा कटुकासधातुः॥२५॥
शृङ्गी पथ्याकणा लाजा भार्गी शुण्ठी समांशकैः ।
हिक्कां पञ्चविधां हन्ति लेहोऽयंमधुना युतः ॥ २६ ॥
अष्टावलेहिका वाथ चतुर्भद्रा वलेहिका ।
पूर्वोक्तात्र प्रदातव्या शृङ्गवेर रसैर्युता ॥ २७ ॥

सैन्धवलवण के चूर्ण को अत्यन्त बारीक पानी से पीसकर नसवार लेने से निश्चय ही हिक्का का नाश होता है । मोर की पुच्छ की भस्म बनाकर मघ का चूर्ण तथा मधु के साथ अथवा कुटकी का चूर्ण स्वर्णमाक्षिक तथा मधु के साथ खाने से हिचकी को दूर करता है । काकड़ासिंही, मघ, हरड़, लाजा, भार्गी, सुण्ठ इनका समभाग चूर्ण मधु से चटनी बनाकर चाटने से पांच प्रकार की हिचकी का नाश करती है । पहिले कही हुई अष्टावलेहिका और चतुर्भद्रावलेह अदरक के रस से मिलाकर देना हित होता है।

कासोपक्रममाह—

कासे कणा कणामूलं कलिद्रुफलजं रजः ।
स विश्वभेषजं लिह्यान्मधुना वा वृषारसम् ॥ २८ ॥
व्योषोग्रावाष्पिकाभार्गी तिक्ता कटुक रोहिणी ।
किरातखदिरैर्युक्तः कफे कासे ज्वरे हितः ॥ २९ ॥

कासांकुशोरसः—

विषव्योषव्याघ्रीकल कुलिकजातीफलत्वचाऽ
भयाभार्गी शृंगी सुरसमगधामूल मुदिरैः ।
लवंगैलेयैला कलिफल कुमारी रसयुतैः ।
सकर्पूरैः कासां कुश इति रसोऽयं निगदितः ॥ ३० ॥

खांसी में पिप्पली, पिप्पलीमूल, बहेड़े के फल का चूर्ण सुण्ड सहित मधु चाटे अथवा शहत और बांसे का रस चाटे । मघा मिरचा, सुण्ड, वच, हिंगुपत्री, भिंडगी, मूर्वा, कटुकी, चिरायता, खैर से युक्त से किया हुआ कफ में कास में तथा ज्वर में हित है।

मीठा तेलिया, मघ, मिरच, सुएड, कटेरी, शाल की छाल; अश्वकर्ण की छाल, जायफल, हरड़, भिडंगी, शृंगी, काली तुलसी, पिपलामूल, जवासा, लौंग, एलुआ, इलाची, बहेड़ा, इन सब में कचूर मिलाकर घीकुआर के रस से पीसकर गोली बनाय तो यह कासांकुशरस कहा है कासरोग में हित है ॥ २८–३० ॥

श्वासोपक्रममाह—

त्रिकटुशठी घनशृंगी गर्दभशाकं स पौष्करं सपदि ।
श्वासं जयति पयोधर सुधालता पंचमूल जलपीतम् ॥ ३१ ॥
दुरालभा कणाद्राक्षा शृंगी पथ्या वचूर्णितः ।
मधुसर्पिर्युतोलेहः कास श्वासापतन्त्राजित् ॥ ३२ ॥
शृंगी व्याघ्री पटोल्युग्रा व्योष भार्गी सपौष्करैः ।
चूर्णं मूष्णोदकैः श्वासहिक्का कासोर्ध्व वातजित् ॥ ३३ ॥

त्रिकटु, कचूर मोथा, शृंगी, भिडंगी, पोहकरमूल इनका काढ़ा शीघ्र श्वास को जीतता है और मोथा, गिलोय, तथा पंचमूल का काढ़ा भी शीघ्र श्वास को जीतता है । जवासा, मघ, मुनक्का, शृंगी हरड़ का चूर्ण मधु घृत के साथ चाटने से कास श्वास और अपतन्त्र को जीतता है। शृंगी, कटेरी, परवल, वच, त्रिकटु, भिडंगी पोहकरमूल इनका चूर्ण गरम जल से दिया हुआ श्वास, कास, हिचकी और ऊर्ध्ववात को जीतता है ॥ ३१–३३ ॥

अरुचीमाह—

अरुचावति तिक्तकरसै रसकृत्कवलग्रहस्तथाऽम्लरसैः ।
मधुलवणमातुलुंगी फल केसर धारणं वक्त्रे ॥ ३४ ॥

अरुचि में तिक्तरस वाले द्रव्यों तथा खट्टे रस वाले द्रव्यों और मधु, लवण, विजौरे के फलके के रस को मुख में धारण करने से हित होता है ॥ ३४ ॥

तृष्णामाह—

पीतं शीतजलं चौद्रमाकण्ठं वामयेद्भिषक् ।
बटाङ्कुरामय चौद्रं लाजनीलोत्पलै र्दद्दाम् ॥ ३५ ॥
गुटिकां वदने क्षिप्त्वा क्षिप्रं तृष्णां व्युदास्यति ।
अर्धा वर्तितं पानीये सलाजे शीतले मधु ॥ ३६ ॥

नवराजयुतां द्राक्षां पीत्वा पीते तृषां जयेत् ।
क्षीरेक्षुरसमृद्वीका क्षौद्र सीधुगुड़ोदकैः ॥ ३७ ॥
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूष स्तालुशोषप्रणाशनः ।

वैद्य मधु सहित जल मिलाकर कण्ठ तक पीलाकर वमन करादे वट के अंकुर, कुठ, मधु, लाजा, नीलकमल इनकी गोली बनाकर मुख में रखने से तृष्णा को दूर करती है ।

लाजा युक्त आधे जले हुए पानी के ठण्डा हो जाने पर मधु और मुनक्का मिलाकर पीने से तृषा को जीतता है ।

दुग्ध, गन्ने का रस, मुनक्का, मधु, पक्वासव, गुड का जल, इमली की खटाई से गण्डूष करने से तालुशोष नाश होता है ।

मूर्च्छामाह—

मूर्च्छायामिह कृतमालहारहूरा कट्वीभिः सजलदपर्पटाभयाभिः ।
संसिद्धं जलमति शीत मष्टभागं लेह्यो वा मधुत्रिवृतासितामृताभिः
शीताम्भसाक्षिसेकः सुरभिर्धूपः सुमनाश्चशुभाः ।
मृदुताल वृन्त वाताः कदली दल कमल संस्पर्शः ॥ ३६ ॥

मूर्च्छा में यहां अमलतास, मुनक्का, कुटकी, मोथा, पितपापड़ा हरड़ आदि से सिद्ध किया हुआ जल आठवां भाग रखकर पीवे अथवा मधुतिरवी, मिश्री, गिलोय इनको चाटे ।

शीतल जल से नेत्रों में सेककर (छींटे लगाये) सुगन्धित धूप बड़े सुगन्ध वाले पुष्प, कोमल ताल वृक्ष के पत्तों का वायु सेवन कोमल केले के पत्तों तथा कमलों का स्पर्श मूर्च्छा में हितकारक होता है ॥ ३८–६६ ॥

विबन्धोपक्रममाह—

विबन्धेवातजित्कर्म कुर्यादत्रानुलोमनम् ।
मलं प्रवर्तयेदाशु तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः ॥ ४० ॥

मलरोध में वात को जीतने वाला कर्म करना चाहिये और ऐसा कर्म करे जिससे वायु अनुलोम हो जाये । मल को शीघ्र तीक्ष्ण फलवर्त्तियों से निकालने का यत्न करे ॥ ४० ॥

अग्निसादमाह—

सादेज्वरा विरोधेन यथाशास्त्रं विभज्वतां ।

अग्निमान्द्य में ज्वर से जो विरुद्ध चिकित्सा न हो उसका प्रयोग करना चाहिये ।

उपसंहार—

देशे श्री मेदपाटेरसयुग शरभू मानवर्षे दशम्यां ।
शुक्लायामाश्विनस्य त्रिदशगुरुदिने योगिनी पत्तनस्थैः ।
भूयैः श्रीराजमल्लै र्विलसति वसुधा मण्डले कुम्भसूनुः ।
कायस्थश्चण्ड नामा ज्वरतिमिर हरं भास्करं सव्यधत्त ४१

इति श्रीकायस्थ चण्डकृते ज्वरतिमिर भास्करे उपद्रवादि प्रमेदोनाम षोडशोऽध्यायः ।

इति शम् ।

समाप्तम् ।

शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
साध्वीया	साधीयान्	१	२६
स	से	२	५
अर्थत्	अर्थात्	२	५
क्रुद्	क्रुद्ध	२	१२
अंघा	जंघो	२	१७
कुरङ्ग	कुरङ्गों	३	२०
तोता	तोतों	३	२५
उषर	ऊषर	३	२६
हे	है	५	१०
आगन्तुजें	आगन्तुजों	५	३०
होन	होने	६	३
का	को	६	४
निवर्तयन्ति	निर्वर्तयन्ति	,,	६
पंक्ति	पक्ति	,,	२०
पथ्य	पच्य	८	२६
लिङ्गकैः	लिङ्गकः	१०	२५
श्वेत्तेत	इवेत्तेत	११	१५
दोष=	दोषः	११	२
भ्रवौ	भ्रवौ	११	५
पघुर्घुरायते	घुर्घुरायते	१३	७
जिघांसपा	जिघांसया	१५	१३
प्रमेदो	प्रभेदो	१५	२६
परीक्षयेत्	परिक्षयेत्	१६	३
गन्थान्तरे	ग्रन्थान्तरे	१६	८
कर्पुर	कूर्पर	१६	८
ह	है	१८	२५
जन	जिन	,,	२६
ह	है	१६	६
अनतर	अनन्तर	२१	२३
ग्रकृत्यै	प्रकृत्यै	२२	१६
वद्द्शी	वद्धशी	२२	१६
स्याना	स्थाना	२३	६
दस्पेव	दस्येव	,,	७
क्रेध	क्रोध	२४	८
नहीं	नहीं	२५	२८
मिता	मितिवा	२७	३१
कारना	कराना	२८	२६
अर्धराधि	अर्धरात्रि	३०	१८
पन	पान	३३	१४
पूग	यूष	३७	१७
ओर	और	३६	१०
शुकोजो	शुक्रोजो	४१	१२
मर्गा	मुर्गा	,,	२१
देषादियों	दोषादियों	४४	१४
पठनीयाः	पठनीयो	,,	२२
पथ्यंऽग्नौ	पथ्यमग्नौ	,,	२६
सारंसरथ	सारसस्य	,,	२६
चकेरस्य	चकोरस्य	,,	,,
वधे	वन्धे	४७	१७
एषा	एषां	४८	१२
समान्विताम्	समन्वितम्	५०	३२
भषड़ा	भखड़ा	५५	२४
इरसिद्	इटसिट	५६	५
यातादितो	वातार्दितो	,,	६

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
पित्तं	पित्तं	५६	५
मुस्त	मुस्तं	६०	१२
छुन्ना	छिन्ना	६२	१३
हरित	हरति	,,	२८
लालु	तालु	६४	६
वक्तुं	वक्रं	,,	१५
शीतभञ्जा	शीतभञ्जी	,,	२५
नि दानं	निदानं	६५	२
मुखाक्षितु	मुखाक्षिषु	,,	११
कफज	कफजे	६६	१४
कासमयापहम्	कासकफापहम्	६७	२६
श्रृतमम्भोरुहं	श्रृतमम्भोरु	७२	५
पेपा	पेया	७४	२१
अर्थात	अर्थात्	७५	४
चूण	चूर्ण	,,	६
कफवत	कफवात	,,	६
नद्रा	निद्रा	,,	७
वांस	वांसे	,,	६
छुल	छाल	७६	५
जा	जौ	७७	५
परोला	पटोला	,,	१०
कुटंकी	कुटकी	७८	२८
धान्याकं	धान्याकंपर्पटं	७६	२
पूर्वररूपमाह	पूर्वरूपमाह	८०	२२
अकस्मारुछुल	अकस्माच्छूल	८०	२३
किपा	कहा	८४	१०
फलजैद्रवैः	फलजैर्द्रवैः	८६	५
ऊर्ध्वजन्तु	ऊर्ध्वजत्रु	८७	२७
दुष्येति	दुष्यति	६२	२०
पडियमानस्य	पीडयमानस्य	६३	२८

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
आपम्यते	आयम्यते	१००	६
भिषज	भिषजः	१०३	२६
भग्नन्ती	भ्रान्ति	१०४	६
सन्निप तान्	सन्निपातम्	१०५	१०
सन्निपातौ	सन्निपात	,,	१४
भांर्ग्य	भार्ग्य	,,	१६
हिग्वर्द्रक	हिंग्वार्द्रक	,,	२२
हिकां	हिक्कां	,,	२४
देवदार्व्यभया	देवदार्वभया	१०६	१६
हिका	हिक्का	,,	२१
हिक्वां	हिक्का	१०७	१२
पार्श्ववेदनं	पार्श्व वेदनां	,,	१३
भार्गीघनामृत	भार्गीघनाऽमृत	१०७	२५
पुष्करं	पुष्कर	,,	२८
हिकां	हिक्कां	१०८	२
किरातम्	किरातैः	,,	२६
कर्कटाह्वयं	कर्कटाह्वयं	१११	३
कपाता	कंपाता	११३	२६
निम्वुका	निम्बुका	११४	१३
निरंन्तर	निरन्तर	११५	७
चिरयता	चिरायता	,,	३६
पदतलयोः	पादतलयोः	११६	१३
शात	शीत	,,	३०
कंरजः	करंजः	१२१	७
शीताङ्क	शीताङ्ग	१२४	१७
कण्ठक	कण्टक	१३०	१०
जिह्वकः	जिह्वका	,,	१२
अजन्न	अञ्जन	१३४	१६
उनक	उनके	१३७	६
अथ भूतहासमाह	भूतहास	१३८	१७

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
पठः	पाठः	"	३०
अर्थत्	अर्थात्	१५०	७
ज्वरोत्सृष्टस्य	ज्वरोत्सृष्टस्य		
मजेन	मतेन	१५८	२६
सनतन	सन्तत्रेन	१५९	१२
षेडाष्ट	षोडाष्ट	१६३	२७
व्याघ्रीय	व्याघ्रीया	१६६	२५
गृह्णास्यूर्ध्व	गृह्णात्यूर्ध्व	१६७	२६
ऊध्वकायं	ऊर्ध्वकायं	१६८	५
लीनत्वासूक्ष्म	लीनत्वात्सूक्ष्म	"	२५
धूहमाह	धूपमाह	१६९	२३
तद्धूव	तद्भ्रूवं	१७०	१२
चम्पकं	चम्पक	"	१३
रपहतवकरे	रपहतावकरे	१७१	७
जह्नि	जहि	१७२	४
सस्ताङ्गो	स्रस्ताङ्गो	१७५	२६
मधुकं मधुकं	मधुकं	१७७	७
मद्य	मद्य	१७८	५
वृष	वृष्य	"	१६
चोटों	चोरों	१८०	१०
चव्य	चव्यं	"	१०
सश्वासाग्नि	सच श्वासाग्नि	"	२५
लक तुलसी	लाल तुलसी	१८४	३०
मतीवचः	मतीव्र च	१८८	२५
पित्त से	पित्त	१८९	६
चूण	चूर्ण	१९०	२४
भवति	भवत्	१९३	२६
संशमन लेप	संशमनो लेपः	१९४	६
जीवर्कमकौ	जीवकर्षभकौ	१९७	२८
सालह	सोलह	१९९	२२
पुञ्जीत	युञ्जीत	२०२	२३
च्छिद्रः	छिद्रः	२०३	२०
वयस्था	वयस्या	२०६	३१
काथपित्वा	क्वाथयित्वा	२०९	८
त्रितृता	त्रिवृता	२२०	१७
उपक्रमों	उपक्रमों	२२१	१६
गर्भार्थिती	गर्भार्थिनी	२३०	३०
व्रण	व्रणे	२३१	७
कर्याद्यथा	कुर्याद्यथा	२३४	२३
विस्फेट	विस्फोट	"	२३
विधाती	विघाती	२४५	१७

हमारे अपने प्रकाशित अत्युत्तम वैद्यक ग्रन्थ

१ चरक संहिता—अनेक ग्रन्थों के टीकाकार आयुर्वेदाचार्य पं० जयदेव जी विद्यालंकार कृत सरल, सुबोध तथा विस्तृत हिन्दी टीका सहित संपूर्ण पुस्तक लगभग ४० [illegible] में समाप्त हुई है सुन्दर बढ़िया तीन जिल्दें बंधी हैं। यह टीका अत्यन्त उपादेय है, तभी धड़ाधड़ बिक रही है—मूल्य संपूर्ण पुस्तक का केवल १६ रु०।

२ रसेन्द्रसार संग्रह—सचित्र-श्रीयुत कविराज विद्याधर जी विद्यालंकार कृत सरल भाषाटीका सहित-पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अति उपयोगी है। द्वितीयावृत्ति भी समाप्त होने को है मूल्य ४)

३ भैषज्य रत्नावली—सुप्रसिद्ध कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र द्वारा संशोधित, परिवर्द्धित तथा आयुर्वेदाचार्य पं० जयदेव जी विद्यालंकार कृत सरल हिन्दी टीका सहित-यह टीका सब टीकाओं से बढ़िया तथा ज्यादा प्रयोगों सहित है द्वितीयावृत्ति बहुत परिवर्द्धित की गई है। मूल्य भी केवल ७) रु०

४ योगरत्नाकर—कविराज श्रीविद्याधर जी विद्यालंकार कृत सरल हिन्दी टीका सहित बहुत बढ़िया ग्रन्थ है-दो जिल्दों में समाप्त हुआ है मूल्य १०) रु०

५ नवनावनीतक—१५०० वर्ष का प्राचीन ग्रन्थ-सुप्रसिद्ध टीकाकार पं० सदानन्द जी कृत हिन्दी टीका सहित मूल्य ३) रु०

६ गुणों का खजाना—स्वा० परमानन्द कृत-सरल हिन्दी में अनेक फकीरी नुस्खे हैं मूल्य २) रु०

७ स्वस्थवृत्त—चरक संहितान्तर्गत-हिन्दी टीका सहित ॥)

८ व्याधिविज्ञान—कविराज डाक्टर आशानन्द जी पञ्चरत्न वाइस प्रिंसिपल दयानन्द आयुर्वैदिक कालेज लाहौर ने बड़े परिश्रम से सरल हिन्दी में लिखी है पुस्तक विद्यार्थियों के बड़े काम की चीज़ है। अनेक विद्यालयों में पढ़ाई जाती है अनेकों रंगीन तथा सादे चित्र सहित प्रथमावृत्ति समाप्त होने को है। दो भागों में संपूर्ण मूल्य ७॥=) विद्यार्थियों से ६॥) नेट

इनके अतिरिक्त हमारे यहां हर प्रकार के आयुर्वैदिक ग्रन्थ बड़ी रिआयत से मिलते हैं—सूचीपत्र बिना मूल्य भेजते हैं:—

मोतीलाल बनारसीदास

अध्यक्ष—पंजाब संस्कृत पुस्तकालय सैदमिट्ठा, लाहौर।